उ० प्र० हि० ग्रं० अ० प्रकाशन—181

भारतीय कला परिचय

लेखिका
श्रीमती कुसुम दास
बी० एस-सी०, ललित कला में नाइनल डिपलोमा, ललित कला में
पोस्ट डिपलोमा, ड्रॉइंग एवं चित्रकला में एम० ए०

उत्तर प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ

प्रकाशक :
मधुव्रत दीक्षित
उत्तर प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी
लखनऊ

●

शिक्षा एवं समाज कल्याण मंत्रालय,
भारत सरकार की विश्वविद्यालयस्तरीय
ग्रंथ योजना के अंतर्गत प्रकाशित ।

●

पहली बार 1977
प्रतियां 1100
मूल्य 12 50

●

मुद्रक :
बाबूलाल जैन फागुल्ल
महावीर प्रेस,
भेलूपुर, वाराणसी–1

प्रस्तावना

शिक्षा आयोग (1964-66) की संस्तुतियों के आधार पर भारत सरकार ने 1968 में शिक्षा संबंधी अपनी राष्ट्रीय नीति घोषित की और 18 जनवरी 1968 को संसद् के दोनों सदनों द्वारा इस संबंध में एक संकल्प पारित किया। उस संकल्प के अनुपालन में भारत सरकार के शिक्षा एवं युवक सेवा मंत्रालय ने भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षण की व्यवस्था करने के लिए विश्वविद्यालय-स्तरीय पाठ्य पुस्तकों के निर्माण का एक व्यवस्थित कार्यक्रम निश्चित किया। उस कार्यक्रम के अंतर्गत भारत सरकार की शत प्रतिशत सहायता से प्रत्येक राज्य में एक ग्रंथ अकादमी की स्थापना की गयी। इसे राज्य में भी विश्वविद्यालय-स्तर की प्रामाणिक पाठ्य पुस्तकें तैयार करने के लिए हिंदी ग्रंथ अकादमी की स्थापना 7 जनवरी, 1970 को की गयी।

प्रामाणिक ग्रंथ निर्माण की योजना के अंतर्गत यह अकादमी विश्वविद्यालय-स्तरीय विदेशी भाषाओं की पाठ्य पुस्तकों को हिंदी में अनूदित करा रही है और अनेक विषयों में मौलिक पुस्तकों की भी रचना करा रही है। प्रकाशन ग्रंथों में भारत सरकार द्वारा स्वीकृत पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया जा रहा है।

उपर्युक्त योजना के अंतर्गत वे पाण्डुलिपियाँ भी अकादमी द्वारा मुद्रित करायी जा रही हैं जो भारत सरकार की मानक ग्रंथ योजना के अंतर्गत इस राज्य में स्थापित विभिन्न अभिकरणों द्वारा तैयार की गयी थी।

प्रस्तुत ग्रंथ की लेखिका श्रीमती कुसुम दासजी हैं जिन्होंने भारतीय कला के संबंध में गभीरतापूर्वक विचार किया है। इस बहुमूल्य सहयोग के लिए हिंदी ग्रंथ अकादमी इनके प्रति आभारी है।

मुझे आशा है कि यह पुस्तक विश्वविद्यालय के कला के छात्रों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगी और इस विषय के विद्यार्थियों तथा शिक्षकों द्वारा इसका स्वागत अखिल भारतीय स्तर पर किया जायगा। उच्चस्तरीय अध्ययन के लिए हिंदी में मानक ग्रंथों के अभाव की बात कही जाती रही है। आशा है कि इस योजना से इस अभाव की पूर्ति होगी और शिक्षा का माध्यम हिंदी में परिवर्तित हो सकेगा।

हजारी प्रसाद द्विवेदी
अध्यक्ष,
शासी मंडल,
उ० प्र० हिंदी ग्रंथ अकादमी

भूमिका

अपने विद्यार्थी जीवन में, जब मैं गवर्नमेंट कॉलेज ऑफ आर्ट एण्ड क्रॉफ्ट्स, लखनऊ में शिक्षा ले रही थी, उस समय एक विद्यार्थी के रूप में मैंने अनुभव किया कि 'कला-इतिहास' पर मुख्यतः कला के विद्यार्थियों के लिए हिंदी में कोई एक पुस्तक उपलब्ध नही है जो उनकी आवश्यकताओं और उनके पाठ्यक्रम के अनुरूप हो। इस कमी को मैं निरंतर अनुभव करती रही। उसी समय मुझे यह विचार आया कि यदि कभी ईश्वर की कृपा से मुझे अवसर प्राप्त हुआ तो मैं इस दृष्टि से एक पुस्तक अवश्य लिखूँगी।

इस विषय पर मेरा ध्यान पुन आकर्षित हुआ जब मैं महिला महाविद्यालय (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय), वाराणसी में 'चित्र-कला' विभाग में अस्थाई पद पर एक प्रवक्ता के रूप में नियुक्त हुई, और मुझे विद्यार्थियों को 'कला-इतिहास' पढ़ाने का अवसर प्राप्त हुआ।

भारतीय कला विद्यालयों एव विश्वविद्यालयों में चित्रकला के अध्ययन में कला इतिहास का महत्व बढ रहा है। अत उस दिशा में किया हुआ यह मेरा अल्प सा प्रयत्न, साथ ही अपने सीमित ज्ञान से विद्यार्थियों की इस आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु यह पुस्तक मैं प्रस्तुत कर पा रही हूँ। आशा है कि विद्यार्थियों को इस विषय के अध्ययन में यह पर्याप्त मात्रा में सहायक होगी।

भारतीय कला इतिहास को मैंने इस पुस्तक में मुख्य 12 कालखण्डों में विभाजित किया है। हर एक काल खण्ड के कला इतिहास को भिन्न-भिन्न अध्याय के रूप में मैंने प्रस्तुत किया है।

जिन हिन्दी पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग इस पुस्तक में मैंने किया है उनका अँग्रेजी प्रतिशब्दों के साथ सकलन परिशिष्ट मे शब्दावली में किया गया है।

मैं आचार्य डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी जी की बहुत ही आभारी हूँ, जिन्होंने मेरे इस प्रयत्न में मुझे प्रोत्साहित किया और जिनकी कृपा से यह पुस्तक प्रकाशित हो पा रही है।

मैं श्री दिनकर कौशिक जी (Dean, Faculty of Fine Arts, Vishva-bharati, Shantiniketan, West Bengal) की भी आभारी हूँ जिन्होंने मुझे समय-समय पर अपना बहुमूल्य समय देकर मुझे इस पुस्तक को लिखने में प्रोत्साहित किया।

मैं उन सभी लेखकों एवं प्रकाशकों की कृतज्ञ हूँ, जिनकी पुस्तकों का मैंने सहायक साहित्य के रूप में उपयोग किया है।

मैं उन सभी मित्रों एवं पूज्य पिता जी (डा० शिवनाथ खन्ना) के प्रति विशेषरूप से आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने इस पुस्तक के लिखने में मुझे सहायता एवं प्रोत्साहन दिया, साथ ही अपना अमूल्य सुझाव देकर ग्रंथ लेखन में सहायता दी। मैं श्री आर० सुब्रह्मन्यम जी की भी आभारी हूँ, जिन्होंने इस पुस्तक की भाषा सुधारने में मेरी मदद की है।

अन्त में मैं 'उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी', जिनके प्रयत्नों के फलस्वरूप इस पुस्तक का प्रकाशन हुआ, के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करना अपना परम कर्तव्य समझती हूँ।

मैं आशा करती हूँ कि कला के विद्यार्थी इस पुस्तक को अपनायेंगे, और अगर उन्हें अपने विषय के पठन-पाठन में इस पुस्तक से सहायता मिल सके, तो मेरा यह प्रथम प्रयास सफल होगा।

'भारतीय कला परिचय' पुस्तक की सफलता के बाद यदि फिर मुझे समय प्राप्त हुआ तो मैं पाश्चात्य कला इतिहास एवं पाश्चात्य आधुनिक चित्रकला इतिहास पर हिंदी में पुस्तक लिखने का प्रयत्न करूंगी, जिससे कला विद्यालयो के कला इतिहास का पूर्ण पाठ्यक्रम का समावेश हो सके। साथ ही विद्यार्थियो को इस विषय को लेकर कठिनाइयों का सामना न करना पडे।

इस पुस्तक में अभी मैं अधिक चित्र न दे पाई हूँ, परन्तु मैं आशा करती हूँ कि जब इसका दूसरा सस्करण छपेगा तो मैं उसमें अधिक चित्र दे सकूंगी।

यदि पाठकों एव विषय-विदों से पुस्तक की त्रुटियों के सबंध में कोई निर्देश या सुधार की दृष्टि से कोई भी सुझाव मिलेंगे, तो मैं उनका हार्दिक स्वागत करूंगी, क्योंकि मुझे विश्वास है कि ये आगामी संस्करण में सहायक होंगे।

अन्त में मैं अपने सभी गुरुजनो एव विषय विदो से प्रार्थना करती हूँ कि इस पुस्तक एवं इसकी त्रुटियों को मेरा प्रथम प्रयास जानकर क्षमा करेंगे।

बसन्तपंचमी
24-1-1977

श्रीमती कुमुम दास

विषयक्रम

●

भारतीय कला परिचय

अध्याय 1

प्रस्तावना

कला एव चित्रकला का बहुत निकट का सबंध हमारी सभ्यता तथा समाज से रहा है, क्योंकि कला के द्वारा ही हमें भिन्न-भिन्न युगों के समाज की सभ्यता का पता चलता है ।

कला की परिभाषा

टालस्टाय के शब्दों में "कला एक माननीय चेष्टा है, जिसमें मनुष्य अपने जीवन में साक्षात्कार की हुई भावनाओं को ज्ञानपूर्वक कुछ संकेतो के द्वारा प्रकट करता है, उन भावनाओं का दूसरे पर प्रभाव पड़ता है और उनमें उसकी अनुभूति होती है ।" रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शब्दों में कला की परिभाषा यह है कि "जो सत्य है, जो सुन्दर है वही कला है ।" फ्रेंच समालोचक फागुए के विचार से "कला भाव की उस अभिव्यक्ति को कहते हैं जो तीव्रता से मानव हृदय को स्पर्श कर सके ।"

इन सबके कला सबधी विचारो को देखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कला कलाकार की कल्पना की सौंदर्यात्मक अनुभूतियो की अभिव्यक्ति है। साहित्य, सगीत, वास्तुकला, चित्रकला एव मूर्तिकला का जन्म कलाकार की इन्ही कल्पनाओ की अनुभूति की अभिव्यक्ति के कारण होता है ।

चित्रकला की परिभाषा

चित्रकला की परिभाषा सभ्यता के साथ बदलती रही है । श्री देवखरे के शब्दों में "एक रंग द्वारा किसी भी आकृति एवं उसकी लम्बाई, चौड़ाई तथा मुटाई का अवलेखन ही चित्रण कहलाता है ।" श्री रायकृष्ण दासके शब्दों में चित्रकला "किसी एक तल (सतह) पर, जो सम हो—यह समता खमदार भी हो सकती है (जैसे कुम्भ आदि का बाहरी भाग और कटोरी, रकाबी आदि का भीतरी भाग एव लदावदार पाटन आदि)—पानी, तेल या किसी अन्य माध्यम में घोले अथवा सूखे एक वा एकाधिक रंगों की रेखा एवं रगामेजी द्वारा किसी रमणीय आकृति के अकन को और उसी प्रसग में निम्नोन्नत तथा एकाधिक तल और पहलू (= देशकाल) दरशाने को चित्रण कहते हैं, और ऐसी प्रस्तुत वस्तु को चित्र ।" परंतु प्राचीन कलाकारों के अनुसार चित्रकला की परिभाषा "किसी भी रग की रेखा के द्वारा कल्पना की अभिव्यक्ति का एक तल और एक पहलू

दिखाना ही चित्रण होता है।" आधुनिक कला में कला का क्षेत्र प्राचीन कला से बहुत विस्तृत है। आधुनिक काल की चित्रकला जीवन के हर पहलू तथा हर व्यापार में दिखती है। चित्रकला की परिभाषा अपने अनुभव तथा अपने दृष्टि-कोण से भिन्न मतों के रूप में अपनाई गई है जिसको शब्दों में बताना सभव नही है। आधुनिक युग विज्ञान एवं मानसिक बुद्धि के उत्थान का युग है, इसमें नये प्रयोग हो रहे है और नये प्रयोगों के कारण कला की परिभाषा भी नया रूप ले रही है। इस काल में एक के सिद्धांतों का दूसरा खंडन कर रहा है। कोई किसी के मत से सहमत नही है और वे अपने-अपने प्रयोगों के आधार पर कला की परिभाषा दे रहे हैं।

चित्रकला मे रस को बहुत महत्त्व दिया गया है। काव्यशास्त्र के अनुसार चित्रकला मे भी नव रस माने गये है और सफल कलाकृति के लिये चित्र में रसों का रहना नितान्त आवश्यक माना गया है।

प्राचीन युग के पाश्चात्य विद्वानों के विचार से भारतीय कला में चित्रकला (Painting) ऐसी कोई चीज नही थी। इससे पहले की कुछ भारतीय कला पर प्रकाशित पुस्तकों से पता चलता है कि भारत मे सचित्रकला (Pictorial Art) की कमी थी, जिससे इसका अध्ययन आसान हो गया। यह सच है कि कुछ अलकारिक रगीन लघुचित्र (Miniature Painting) अलग-अलग समय मे भारत के भिन्न-भिन्न स्थानो में पाये गये, परंतु पाश्चात्य विद्वानो ने इन्हे फारस तथा चीन के चित्र बताया, एव उन्हे पुस्तको के दृष्टात चित्र (Book-Illustrations) कहा और इन्हें प्रयुक्त कला (Applied Art) का अच्छा उदाहरण माना।

'भारतीय कला' एव 'पाश्चात्य आधुनिक कला' मे बहुत अतर है। ये दो भिन्न विषय है। भारत मे कला कुल या जाति सबंधी अनुभवों को दिखाती है और यह अधिकतर धनोपार्जन हेतु अपनाई गई, साथ ही यह समाज की इच्छाओ पर निर्भर करती थी, जो लोगो ने पसद किया वही कलाकार द्वारा बनाया गया, परंतु पाश्चात्य आधुनिक कला में कलाकार के व्यक्तित्व को प्रमुखता देते हुए विशिष्ट स्वाभाविक योग्यता के चित्र बने। इसी कारण से भारत में कला की अच्छाइयाँ या बुराइयाँ उस समय के समाज की अच्छाइयो या बुराइयो पर निर्भर करती है। किसी भी समय की कला को समझने के लिये हमें उस समय के लोगों के रहन-सहन को देखना होगा। समस्त भारतीय चित्रकला व्यावसायिक शिल्पकारिता पर निर्भर करती है, उसमें मौलिकता तथा नवीनता का सप्रयत्न समावेश नहीं किया जाता। अलग-अलग समय की कला को हम आकृतियों की भिन्नता से पहचान सकते है और साथ ही यह कला उस समय

की वैकल्पिक आवश्यकताओं को दिखाती है। प्राचीन शैलियों की नकल नहीं है, बल्कि इसे आधुनिक जीवन में बहुत महत्त्व दिया गया है। पाश्चात्य लोगों का कला संबंधी दृष्टिकोण केवल एक ही प्रकार का था, उनके विचार से यदि चित्र या शिल्प अकादमिक नियमों (Academic Canons) को मानता है, एवं चित्रों की आकृतियों की शरीर रचना पश्चिमी ज्ञान की पुस्तकों के नियमों पर निर्भर करती है, तो उस समय चित्र कला की महान उत्पत्ति न होकर केवल पाश्चात्य कला की विलक्षण वस्तु ही रह जाती है।

भारतीय कला को कला के क्षेत्र में जापानी कला के पहले से ही स्थान प्राप्त था। इस कारण हम कह सकते हैं कि पूर्वी सभ्यता में भारतीय कला को जापानी कला से पहले महत्त्व दिया गया। उस समय भारत में चित्र केवल चौखटे के अंदर कैन्वस (Canvas) पर न बन कर बौद्ध भित्ति चित्रों (Frescoes) तथा मुगल लघुचित्रों (Miniatures) के रूप में बनाये जाते थे, जिसे भारतीय कला के अंतर्गत माना गया है, साथ ही उन्हें भारतीय कला की उत्पत्ति मे महत्त्व दिया गया है।

पूर्वी एव पश्चिमी दुनिया एक दूसरे से भिन्न होते हुए भी कला की दुनिया में आपस में सबधित है। पूर्वी कलाकार पहले दार्शनिक (Philosopher) है बाद मे कलाकार, परतु पश्चिमी कलाकार पहले कलाकार है तब दार्शनिक (Philosopher)। परतु कुछ वर्षों मे धीरे-धीरे भारतीय कला ने सहानुभूतिक ज्ञान के द्वारा अपना स्थान कला के क्षेत्र मे अलग बना लिया। दोनों सभ्यतायें एक दूसरे से एकदम ही भिन्न हैं इस कारण इनका आपस में संघटन होना कठिन है। दोनो की ही उत्पत्ति, लक्ष्य एवं अत सब भिन्न है। इस कारण दोनों मे भिन्नता दिखाना बहुत आसान है।

पश्चिमी चित्रकला घन की कला (Art of Mass) है, परंतु पूर्वी चित्रकला रेखाओ की कला है। पश्चिमी चित्रकला में प्रकाश, छाया एव रगो को ध्यान में रखा जाता है, और इसमें संकेत को महत्त्व दिया जाता है। पश्चिमी चित्रो में रेखायें विदित नही होती हैं, सीमाकन का आभास मात्र होता है। इसके विपरीत पूर्वी कला मे चित्र की सुन्दरता उसकी आकृतियों की रेखाओं पर निर्भर करती है, और रेखाओं के गुणों के कारण ही पूर्वी चित्रकारों का रेखाओं पर प्रभुत्व माना जाता है। पश्चिमी चित्र पश्चिमी संगीत के समान जातीयता को दिखाते हैं और एक साथ ही बहुत से लोगों को प्रसन्न करते हैं परंतु भारतीय कला (बौद्ध भित्ति चित्रों के अलावा) में लघुचित्रों की परंपरा के कारण जो केवल एक साथ कुछ ही लोगों को आनन्द देते हैं। पश्चिमी लोग संगीत, चित्रकला

तथा अपने धर्म में कर्मकाण्डी है और भारतीय कला अपने में व्यक्तिगत (Individualistic) है।

भारतीय चित्रकला को हम चार मुख्य भागों में बांट सकते हैं

1. बौद्ध भित्ति चित्रकला
2. जैन कला
3. हिन्दू या राजपूत चित्रकला
4. मुगल चित्रकला

1. बौद्ध चित्रकला

बौद्ध चित्रकला में चित्र बौद्ध धर्म के विषयों पर आधारित बनाये गये। बौद्ध कलाकारों का लक्ष्य अपने आदर्शों का जनसाधारण को ज्ञान कराना था और अपने धर्म का चित्रों द्वारा प्रचार करना था। इसी कारण इन्होंने भिन्न-भिन्न स्थानो पर अपने धर्म सबधी भित्ति त्रिश्र बनाये थे जो हमें आज भी दिखते हैं। इसके अच्छे उदाहरण अजन्ता, बाघ इत्यादि के चित्र हैं। बौद्ध तथा राजपूत हिन्दू चित्र भारतीय जीवन के प्रतीक हैं, इनमें धर्म को महत्त्व दिया गया है, और इन चित्रो का मुख्य गुण दैवित्य (Mysticism) एव मनुष्यत्व है। इन्ही गुणों के कारण बौद्ध कला को जनसाधारण में महत्त्व मिला है। परतु इसके विपरीत मुगल चित्र लौकिक (Secular) होते हैं और ये यथार्थता (Realistic) एव क्रातिवृत्तता (Eclectic) से भरे हुए हैं।

2 जैन चित्रकला

जैन चित्रकला का आरभ गुजरात के श्वेताबर कलम से माना गया है। जैन कला को पश्चिमी भारतीय लघु चित्रों की कला या गुजराती कला या अपभ्रंश शैली भी कहा जाता है। इन्ही चित्रों से भारत में पोथी चित्रो की परंपरा का भी प्रारभ माना जाता है। इसमें मुख्यत जैनधर्म से सबंधित पोथी चित्र गुजरात मे 10वी से 13वी सदी तक बने। इनका भी लक्ष्य जैनधर्म का प्रचार करना ही था। ये चित्र ताडपत्रों पर बनाये गये। परतु 12वी सदी में जैनधर्म के चित्र कागज पर भी बने। जैन शैली में वस्त्रों पर भी चित्र बने मिलते है। इस कला में राग-रागिनियो, नृत्य की विविध मुद्राओं का भी चित्रण है, साथ ही कमल इत्यादि का अलंकरण भी दिखता है। ये चित्र चौकोर आकार के बने हैं। साथ ही पोथी चित्र होने के कारण छोटे माप के हैं। इन चित्रों के संयोजन निश्चित हैं, रगो का प्रयोग सीमित है, साथ ही इनमे हमें गीत एवं सजीवता स्पष्ट दिखती है।

3. हिन्दू राजपूत चित्रकला

हिन्दू चित्रकला राजपूत शैली के चित्रो को कहा गया है, जिसका संबंध

राजपूताना एवं पहाड़ी राजपूतों से माना जाता है । इन चित्रों का विषय हिंदू धर्म है इसी कारण इन्हें हिंदू चित्रकला भी कहा गया है । राजपूत चित्रों का आदेश भी बौद्ध चित्रों के समान ही था । इन चित्रों में धर्म के साथ-साथ उस समय की साधारण जनता के रहन-सहन तथा उनके रीति-रिवाजोंका भी चित्रण किया गया है । उनका ध्येय अपने हिन्दू धर्म का सा रण जनता में प्रचार करना था, जिसके कारण भारत में लघुचित्रों (Miniature paintings) की एक नई परपरा का प्रारभ हुआ और इसे ही भारत की सचित्र कला (Picto-rial Art) कहा गया । राजपूत कला को जयपुर तथा काँगड़ा शैलियों में विभाजित कि ा गया है । जयपुर शैली में राजस्थान के हिंदू चित्र आते हैं तथा काँगडा शैली पहाडी राजपूताने के चित्र ।

4 मुगल चित्रकला

मुगल चित्रकला में मुगल शैली के चित्र आते हैं, जो कि भारत में मुगल राज्य से सबधित हैं । इनमें धर्म का कोई स्थान नही है ।

मुगल चित्र यद्यपि कौशल (Technique) में राजपूत चित्रों के ही समान थे परंतु उनका ध्येय एकदम भिन्न था, ये आध्यात्मिक (Spiritual) विचारो पर आधारित न होकर यथार्थ के विवरण पर आधारित थे । मुगल लघु चित्र (Miniature painting) अधिकतर भौतिक होते थे । विशेषकर इसमे छवि चित्र (Portrait) बनाने का प्रचार था जो कि अपनी चरमसीमा पर था । इन चित्रो में बनाने वाले की आंतरिक भावनाओ को बहुत अच्छे प्रकार से व्यक्त किया जाता था । अकबर के समय में चित्रकला को जाति से हटकर महत्त्व दिया गया ।

मुगल कला मे बहुत-सी कलमें या शैलियां मानी गई हैं, क्योंकि इसके बहुत से केंद्र भिन्न-भिन्न स्थानों पर थे, इस कारण प्रत्येक स्थान का प्रभाव इस कला . र भिन्न-भिन्न पडा । इस प्रकार से स्थानीय कला ने मुगल कला से मिल कर एक नई शैली को जन्म दिया, इससे ये शैलिया दिल्ली, लखनऊ, दक्षिणी,ईरानी, काश्मीरी, पटना इत्यादि शैलियो के नाम से विख्यात हुईं। भारतीय कला विशेष कर अज्ञात नाम कला है, इसके अच्छे उदाहरण बौद्ध एवं राजपूत लघुचित्र हैं । केवल कुछ मुगल लघुचित्रो (Miniature Paintings) मे कलाकार का नाम लिखा मिलता है । यह माना जा चुका है कि पहला भारतीय कलाकार होने का श्रेय एक स्त्री को है, जिसका नाम 'चित्रलेखा' था । यह कथा पुराणों के समय की मानी गई है । इसमें चित्रलेखा राजकुमारी ऊषा की दासी थी, जिसने ऊषा के स्वप्न में अनिरुद्ध को देखने के बाद अनिरुद्ध का छविचित्र (Portrait) बनाया

जो कि बहुत सजीव चित्र था। इसलिए चित्रलेखा छविचित्र की योग्य कलाकार मानी गई। इसके बाद भारतीय चित्रकला में किसी भी कलाकार को नाम के द्वारा नही व्यक्त किया गया है, परन्तु 17वी शताब्दी में ऐतिहासिकार तारानाथ ने कुछ कलाकारों का जो बौद्ध चित्रों से संबंधित थे वर्णन किया है, ये चित्रकला एवं मूर्तिकला दोनों में ही बराबर योग्यता रखते थे।

भारतीय चित्रकला की सभी शैलियाँ एक दूसरे से तू।लका के प्रयोग में भिन्न है। भारतीय कला किसी भी व्यक्ति विशेष की कला न होकर उस समय की जाति की कला होती है।

●

अध्याय 2

प्रागैतिहासिक काल

(Pre-Historic Period)

विश्व की सभी प्रागैतिहासिक कलायें मानव के प्रारंभिक एवं आदिम जीवन को प्रकट करती हैं। उनमें मानव के जन्म एवं उत्थान का इतिहास संचित है। ज्यों-ज्यों मानव सभ्यता की ओर बढता गया त्यों-त्यों समय के साथ कला का भी विकास होता चला गया। पुरातत्व विद्वानों ने प्रागैतिहासिक चित्रो के बारे में कोई निश्चित धारणा नही बनाई जिससे यह कहा जा सके कि यह चित्र अमुक चित्रकार द्वारा अमुक गुफा में बनाया गया है, परंतु यह माना जा सकता है कि जैसे-जैसे मानव का विकास हुआ वैसे ही कला का भी विकास हुआ। मानव में चित्रण की प्रवृत्ति उस समय से थी जब वह जंगलों में जंगली रूप में रहता था। जंगली जीवन से हटकर उसने अपने मानसिक विवेक की शांति के लिये चित्रण को अपनाया। उन्होंने अपनी भावनाओ को मूर्तियो एव चित्रों द्वारा कला का रूप प्रदान किया।

यह युग उस समय का माना जाता है जब मानव को धातुओं का ज्ञान भी नही था। वे अपने दैनिक जीवन में अपने हाथों से बनाये कडे पत्थरों के औजारों का प्रयोग करते थे। इस कारण इस युग को पाषाण युग भी कहा गया है। इस समय तक उनके राजनीतिक इतिहास का भी प्रारंभ नही हुआ था। इन चित्रो से हमें पता चलता है कि उस समय किस प्रकार से मानव प्रकृति से लड कर अपना जीवन यापन करता था। ये भी जंगली जानवरों के समान गुफाओं में रहते थे एवं जंगली जानवरों का शिकार करके अपना पेट पालते थे। समस्त संसार के प्रागैतिहासिक कालीन मानव की चित्रित आकृतियाँ उसके सामाजिक जीवन, उसकी सस्कृति, उसकी धारणा, एव उसकी हिंसक प्रवृत्ति को दिखाती हैं। किस प्रकार से इतनी कठिन परिस्थितियों में उस समय के मानव ने अपना जीवन यापन किया होगा, उन्हें अपनी जीविका के लिये शिकार की खोज में अस्थाई तथा असुरक्षित जीवन व्यतीत करना पडा होगा और वे सभ्यता के दौड में कहाँ थे। ये प्राचीन चित्र मोटी, आडी, तिरछी, टेढ़ी तथा अस्पष्ट रेखाओं के द्वारा बनाये गये हैं, ये चित्र उस समय के मानव की विषम अनुभूतियों को व्यक्त करते हैं।

विश्व के सभी प्राचीन कलाकारों ने प्रकृति से प्रेरणा ग्रहण की है। प्रकृति से कलाकारों को केवल तत्त्व ही नही मिले बल्कि अभिव्यक्ति के विभिन्न प्रकार भी प्राप्त हुए। प्राचीन कलाकृतियों के द्वारा हमें मानव एवं पशुओं में भेदभाव का पता चलता है। मानव ने पशुओं के गुणों पर मोहित होकर उनको ऊँचा स्थान दिया और उनका चित्रण देवताओं के साथ किया। आदि मानव ने अपनी कल्पनाओं को चित्रों द्वारा साकार किया और इन्होंने अपना संबंध बाहरी :गत से स्थापित किया। इन्होंने प्रकृति पर विजय प्राप्त करके उससे समन्वय किया और इन भावनाओ को धर्म का रूप दिया।

इन चित्रों का विषय प्रकृति पर विजय प्राप्त करना तथा उसकी स्मृति को बनाये रखना था। उस युग के मानव ने गुफाओं की दीवारों पर भित्ति चित्रों के रूप में युद्ध, धनुष बाण लिये मनुष्य आकृतियाँ, जगली पशुओं का शिकार, नृत्य विषयों का चित्रण किया है। इन चित्रों में पुरुष, स्त्री, पशु तथा पक्षी सभी आकृतियों को बनाया गया है। इसके अतिरिक्त इन चित्रों में अमूर्त भावना को मूर्त रूप भी दिया गया है, जैसे प्राचीन मानव ने अपनी अमूर्त भावनाओं को जादू तथा टोने के रूप में चित्रित करके मूर्त रूप दिया है, साथ ही उन्होने लय को भी चित्रों में स्थापित किया है।

प्राचीन मानव ने इन चित्रों का निर्माण दूसरे को प्रसन्न करने के लिये नही किया था और न ही उनका ध्येय अपने विचारो को दूसरे तक पहुँचाना ही था परतु फिर भी उन्होंने इन चित्रो को बनाया। इनके निर्माण के कई कारण बताये जाते है—

1 ऐसा विचार किया जाता है कि उस समय मनुष्य को रिक्तता का डर था, इस कारण चित्रों द्वारा मनुष्य ने सारी रिक्तता को लौकिक कर दिया। इससे पता चलता है कि प्राचीन मानव दीवालों पर आकृतियाँ बना कर स्थान की रिक्तता को समाप्त कर देना चाहते थे।

2 उन्होंने मुख्यत पशुओ का चित्रण किया है क्योंकि उन्हें हर समय पशुओं का डर बना रहता था। पशु ही उनका भोजन, खेल तथा शत्रु थे। इस कारण प्राचीन मानव ने पशुओं की कल्पना कर उन्हे अपने चित्रों में बनाया होगा।

3 अपनी भावना को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए इन्होंने इन चित्रो को बनाया होगा। इस चित्रण की प्रवृत्ति के भीतर जादू, टोना एवं टोटका भी कारण हो सकता है। पशुओं पर भी उनका जादुई प्रभाव होता था। पशु ही उनके लिये सब कुछ थे इसी कारण उन्होंने विशेषरूप से अपने चित्रों में पशुओं का चित्रण किया है।

4 अपने वातावरण की स्मृति तथा उस पर अपनी विजय का इतिहास बनाये रखना भी चित्र बनाने का एक कारण था।

भारत में ऐसे चित्रों की कई शृंखलाएँ प्राप्त हुई हैं, इनमें तत्कालीन चित्रों की सभी विशेषतायें मिलती हैं, ये उदाहरण बहुत मनोरंजक हैं। ये समस्त भारत में फैले हुए है, परंतु कुछ ही का अभी पता चला है। इनमें शिकार के दृश्यों का चित्रण गुफाओं की दीवारों पर अप्रवीण हाथों से बनाये जान पड़ते हैं। ये चित्र केवल भारत में कला का उद्गम ही नही दिखाते हैं बल्कि पूर्व के मनुष्यमात्र के प्राचीन इतिहास पर भी प्रकाश डालते हैं। ये चित्र मध्य भारत की कैमूर की पहाड़ियों की गुफाओं में बने मिले हैं परंतु उत्तर पाषाण काल (Later Stone Age) के उदाहरण विन्ध्य की पहाड़ियों से प्राप्त हुए हैं। ये चित्र मानिकपुर, होशंगाबाद पर्वत श्रेणियो, रायगढ़ में मंद नदी के पूर्व, मिर्जापुर में सोनकाँठा एव जोगिमारा की गुफा इत्यादि स्थानों से प्राप्त हुए हैं।

रायगढ से प्राप्त प्रागैतिहासिक कला के उदाहरणों में आदि मानव की कला की भावनाओं को व्यक्त करते हुये चित्र प्राप्त हुए हैं। यहां पर चूनेदार बलुआ पत्थर (Sand stone) के पहाड़ों की गुफाओ के द्वार पर कई चित्र बने हैं, ये लाल रंग के हैं। इनमें मनुष्य (चित्र 1) एव पशुओं की आकृतियों को

चित्र – १

बहुत सुदर एवं सजीव ढंग से केवल रेखाओ द्वारा व्यक्त किया गया है (चित्र 3 एवं 4)। इनमें हाथी, घोड़े इत्यादि का विशेषकर चित्रण है। यहां पर एक शिकार के दृश्य में भैंसे को भालों द्वारा बुरी तरह घायल दिखाया गया है एवं वह शिकारियों से घिरा हुआ है। यह चित्र बहुत सजीव जान पड़ता है। कुछ पत्थर के औजार भी इन पहाड़ियों की गुफाओं के द्वार पर पाये गये हैं जो कि इस पाषाण युग का भास कराते हैं। हाँलांकि यहां के बहुत से रेखा चित्र

(drawings) नष्ट हो गये है फिर भी जो हैं वे आदिम कलाकारों की स्वाभाविक कलात्मक देन को व्यक्त करने में सफल हैं।

मिर्जापुर में सोनकांठा की गुफाओ से प्राप्त आद्य चित्र (Archain Painting) बहुत मनोरंजक हैं। यहां पर भी शिकारी दृश्यो का चित्रण अधिक-

चित्र - ३
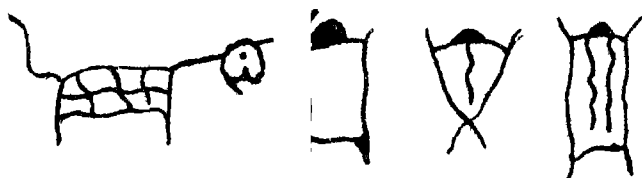
तर किया गया है। गैंडा, सूअर एव साबर के शिकार का चित्रण बहुत सजीव किया गया है, इनमें हाथियों के पकड़ने के दृश्य भी बहुत सुदर चित्रित किये गये हैं तथा इसके दूसरी ओर नृत्य मे मस्त व्यक्तियो का चित्रण है। कही-कही पर लबी चोच वाले पक्षी बनाये गये है। घायल बनैला सूअर तथा मृग को भाले से शिकार करने का दृश्य बहुत सजीव है, एक जगह एक पशु पर कुत्ते टूटे हुए हैं।
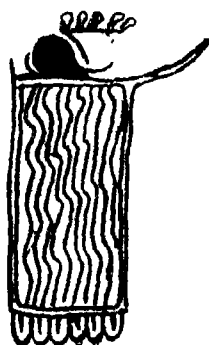
चित्र - ४

इन सभी चित्रो और स्पेन के कासटिलो (Castillo) की गुफाओं के चित्रों में समानता है। ये चित्र आदि मानव द्वारा बनाये माने गये हैं। इन सभी चित्रों का समय निश्चित नही मालूम है, इसके बारे में विद्वानों में मतभेद है, कुछ के अनुसार इस युग का समय आज से 30,000—40,000 वर्ष पूर्व का कहा

गया है परंतु कुछ के मत से यह 10,000-12,000 वर्ष पूर्व का माना गया है। जो भी हो इस युग के पहले के चित्रों का इतिहास आज भी अज्ञात है।
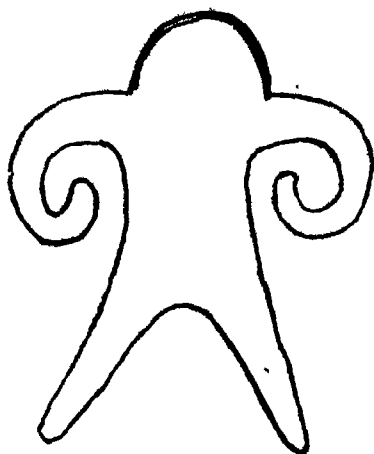
चित्र - 2

शैली की दृष्टि से इन चित्रों की आकृतियाँ 3 प्रकार की है .—

क. आकृतियों में चौडाई और मोटाई नही दिखती है, केवल दो या तीन रेखाओं द्वारा आकृति का प्रदर्शन किया गया है। (चित्र 2)

ख. इनमें आकृतियो के शरीर को पडी हुई समानातर रेखाओ द्वारा भरा गया है।

ग. इनमे आकृतियो के पूरे शरीर को आडी तथा बेडी तिरछी रेखाओं से भरा गया है।

इस पूरे युग को तीन भागों में बाँटा जा सकता है

1 पूर्व पाषाण युग।

2. मध्य पाषाण युग।

3. उत्तर पाषाण युग।

पूर्व एव मध्य पाषाण युग के चित्रों के अवशेष कुछ स्पष्ट नही हैं परतु उत्तर पाषाण युग के अवशेष आज भी स्पष्ट हैं, ये विंध्य की पहाडियों से प्राप्त हैं। इनका रूप समय के परिवर्तन के साथ नष्ट हो गया है परतु जो भी अवशेष प्राप्त है उनसे उसका समय निश्चित नहीं किया जा सकता। परंतु भारत की जोगिमारा गुफा के चित्रों का समय निश्चित बतलाया गया है।

जोगिमारा की गुफा

ये गुफा डा० ब्लॉख के मत से 3 शती ईसा पूर्व की मानी गई है। इस गुफा को नटियों का विश्रामगृह माना गया है, परंतु यहाँ से प्राप्त एक अभिलेख के द्वारा इसे वरुण का मन्दिर कहा जा सकता है, जिसमें देवदर्शिनियों के रहने का पता चलता है। इस गुफा में उसके तथा उसके बाद के भी चित्र अंकित हैं जो कि ऐतिहासिक काल की भारतीय चित्रकला के महत्त्वपूर्ण नमूने हैं। पहली झलक में ये चित्र लाल तथा काले रंगों की तूलिका द्वारा बनाई आकृतियाँ जान पड़ती हैं जो कि गुफा की खुरदुरी सतह पर अशिक्षित मनुष्यों द्वारा बनाई गई है परन्तु पास से देखने पर लगता है कि यह अपरिष्कृत होते हुए भी सोचकर बनाई गई हैं। इन चित्रों की सुदर रेखाओ पर फिर से खीची गई रेखायें इन्हें अप्रवीण हाथो द्वारा बनाये हुए का भ्रम कराती हैं, इसी कारण चित्रो की शैली एव लय इन चित्रो में समाप्त हो गया है। यहाँ के कुछ चित्रों से ये चित्र जैन मत के माने गये है। कहा जाता है कि रामचंद्र जी ने अपने वनवास के कुछ दिन यहाँ बिताये थे जिसके उदाहरण सीता बगडा एवं लक्ष्मण बगडा गुफायें हैं। जोगिमारा गुफा 100 फुट लम्बी तथा 6 फुट चौडी है। गुफा का द्वार सकीर्ण है। अधिकाश चित्र समय के साथ नष्ट हो गये है। गुफा मे प्रकाश के लिए छत में छेद बने हैं। श्री अमेंद्रनाथ गुप्त तथा श्री असितकुमार हाल्दार ने इस गुफा के चित्रों पर प्रकाश डाला है। इनका विषय पशु, मनुष्य एव वास्तुकला (Architecture) है, जो उस समय की कला की शैली के अच्छे उदाहरण है। यहाँ पर चित्रो के हाशियों में मछलियो तथा दूसरे पानी के जानवरों के नमूने बने है परंतु जो कुछ भी ये चित्र कहना चाहते हैं वह अस्पष्ट है। प्राचीन काल की वास्तुकला के उदाहरणों में स्थायित्व नही होता था, उस समय (पहली शताब्दी ई० पूर्व) की कला प्रत्यक्ष रूप में उन्नत न होकर प्राचीन ही थी, परतु योगिमारा की गुफाओं के चित्र इसके विपरीत उन्नत सौंदर्यानुभूतिक (Aesthetic) भावों को दिखाती हैं। जोगिमारा की गुफा की छत पर के चित्रों को 7 भागो में बाँटा गया है, ये इस प्रकार है :

1 पहले चित्र में कुछ मनुष्यों को चित्रित किया गया है इनके साथ एक हाथी एव मछली को लहरों के बीच में चित्रित किया गया है। इस चित्र में सफेद, लाल एव काले रंगो का प्रयोग है। इस चित्र में चचलता एव गति स्पष्ट दिखती है।

2 इस भाग में कुछ मनुष्य आकृतियाँ एक पेड के नीचे बैठी दिखाई गई है। पेड की केवल कुछ ही पत्तियाँ यहाँ पर दिखाई गई हैं। इस चित्र का विषय

स्पष्ट नहीं है परंतु यह चित्र प्रतीकात्मक एवं उस समय के समाज की भाव-नाओं को दिखाते हैं। यहाँ पर केवल लाल रंग का प्रयोग है।

3. यहाँ पर कुछ फूल सफेद पृष्ठ भूमि (background) पर काली रेखाओं द्वारा बनाये गये हैं, यहाँ पर लाल रंग से एक युगल नृत्य करता हुआ चित्रित किया गया है। इस चित्र का अधिकांश नष्ट हो गया है। यह चित्र भी सामा-जिक भावनाओं एवं राजसीय रस को दिखाता है।

4 यह चित्र विषय एवं कला दोनों ही विचार से महत्त्वपूर्ण है। इसमें एक नर्तकी पृथ्वी पर बैठी ह एव कुछ मनुष्य आकृतियाँ इसके चारों ओर नृत्य करती हुई चित्रित की गई हैं। इस चित्र का विषय एवं शैली अजंता के चित्रों से मिलता है परतु यहाँ पर कला का स्तर भिन्न है, यह चित्र किसी आमन्दोत्सव को दिखाता है।

5. इस भाग के चित्रो का विषय बहुत विचित्र है। यहाँ पर आकृतियाँ गुडियों के आकार की बनाई गई हैं, इस कारण उनके अंगों में समान अनुपात नहीं है और वे हास्यास्पद चित्र हो गये है। इसमे चिडियें भी चित्रित की गई हैं जिसका विषय भी अस्पष्ट है। यहाँ पर भी काले रग का प्रयोग किया गया है।

6 इस भाग के चित्र एकदम अस्पष्ट है, परंतु ये चित्र अजता के चैत्यभवन के चित्रो के सदृश है। यहाँ पर कुछ रथों का चित्रण किया गया है जिन पर यूनानी प्रभाव स्पष्ट है। इन चित्रों की पृष्ठभूमि (background) अजता के चित्रों की पृष्ठभूमि (background) के समान है।

7. इस भाग के चित्र भी अस्पष्ट है।

जोगिमारा की गुफाओं के चित्र अजता के चित्रो से सौंदर्य एव कला की दृष्टि से निम्नकोटि के होते हुए भी वे अपनी अलग मौलिकता रखते है। ऐसा विचार है कि इन चट्टानो से एक प्रकार का तरल पदार्थ निकलता है जिसके द्वारा ये चित्र अभी भी अच्छी अवस्था में है। इस प्रकार से ये चित्र प्रकृति में स्वाभाविक ढग से परिरक्षित है। इन चित्रों का विषय भी पशु हैं, एव ये चित्र बहुत शक्तिशाली बने हुए हैं।

प्रागैतिहासिक कालीन चित्रकला की विशेषतायें

आदि मानव के गुफा के चित्र उनकी कलात्मक प्रवृत्ति को प्रकट करते हैं कि किस प्रकार उन्होंने अपने रहने के स्थान को चित्रों द्वारा अलंकृत कर कला-

त्मक रूप दिया, एवं इनकी कलात्मक प्रकृति इनके औजारों एवं हथियारों के अलंकरण और उनके भिन्न-भिन्न रूपों में दिखती है।

आदि मानव में तर्क-बुद्धि का अभाव था इसी कारण उन्होंने शरीर के गुप्त अंगों के चित्रण में कोई भेद नही रखा है। ये चित्र सजीवता एवं स्वाभाविकता से भरे हुए हैं।

ये चित्र प्रतीकों पर आधारित हैं। ये प्रतीक समाज की धारणा से सबंधित हैं और इनको धर्म की भावनाओं के साथ चित्रित किया गया है। इन प्रतीकों के कारण पशु-पक्षियों को देवताओं के साथ चित्रित किया गया है। ये चित्र मानव जाति के कल्याण के द्योतक हैं। आधुनिक काल तक इन प्रतीकों को महत्त्व दिया गया है।

इन चित्रों में यथार्थता का अभाव पाया जाता है परन्तु इनमें मौलिकता स्पष्ट दिखती है। प्राचीन चित्रों मे शरीर के विभिन्न अगों को न दिखा कर एक स्थायी प्रतिमा का चित्रण किया गया है। यहाँ पर चित्रो का सौंदर्य विषय के सौंदर्य से आगे नही हो पाया है, जिसके कारण इन चित्रो में विषयात्मक अभिव्यक्ति मिलती हैं। प्राचीन चित्रकार विषय को पहले सोचते थे तथा बाद में उसे रूप प्रदान करते थे।

इन चित्रों मे लम्बाई एव चौड़ाई दृष्टिगोचर होती है, जिससे स्पष्ट पता चलता है कि इन कलाकारों के भाव सीधे साधनों के द्वारा इन चित्रो के रूप में प्रस्तुत किये गये है। इन कलाकारो ने केवल अपनी भावना की अनुभूति को इन चित्रो में व्यक्त किया है। इन चित्रों में वस्तु का वास्तविक रूप नही प्राप्त होता है विशेषकर विषय का सूक्ष्म रूप इन चित्रों मे दिया गया है। इन चित्रों को रगो की विभिन्नता के द्वारा न प्रकट करके कलाकार ने रंगों की मौलिकता के द्वारा प्रकट किया है। इनमें रगों द्वारा छाया एवं प्रकाश को दिखाया गया है। इससे हमें इनमें रंगों के प्रयोग की विधि एव उसमें मौलिकता की झलक दिखती है।

इन चित्रो मे मानव की अमूर्त भावनाओं का चित्रण मिलता है। इन चित्रों में उनकी कला के कौशल (technique) की निपुणता का पता चलता है।

इन चित्रो में मानव ने कम से कम रेखाओं से अधिकतम भाव की सजीवता को प्रकट करने का प्रयास किया है। प्राचीन काल के चित्रकार व्यवसायिक नही होते थे परंतु वे दैनिक जीवन की वस्तुओं का चित्रण कर अपने हृदय की प्यास को बुझाते थे।

इन चित्रों में हिरोजी, गेरु, रामरज, काजल आदि रंगों का प्रयोग हुआ है, जो कि उन्हें प्रकृति से प्राप्त हो जाते थे। ये रंग पक्के एवं टिकाऊ होते थे जिसके कारण इतने वर्षों बाद भी ये चित्र अपनी महानता को दिखाते हैं।

इन सब ही बातों को देखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्राचीन युग से ही मानव को कला की प्रेरणा अमूर्त एवं यथार्थ (realistic) कला दोनों ही से समान रूप से प्राप्त हुई होगी और उन्हें दोनों ही प्रकार के चित्रों को बनाने में बराबर ही आनन्द प्राप्त होता होगा। इस युग के बाद कला की उन्नति हम देखेंगे जो हमें आगे के अध्यायों मे स्पष्ट हो जायेगी।

●

अध्याय 3

प्राचीन भारत 3500-2500 ई० पूर्व

इस अध्याय में हम अपने प्राचीन भारत की सभ्यता को देखेंगे जिसका अभिलेख (Record) भी अभी तक पूर्ण नही है। सिंधुघाटी की सभ्यता को ही भारत के समाज की सर्वप्रथम सभ्यता माना गया है। यही से हमे मनुष्य मात्र की सभ्यता का सही पता .लता है। साथ ही इसी समय से हमें भारत के क्रम बद्ध इतिहास का भी पता चलता है।

सिंधुघाटी की सभ्यता

3500 ई० पूर्व में शहरी सभ्यता का आरंभ सिंधुघाटी की सभ्यता से होता है। ग्राम जीवन से इसका परिवर्तन इतना शीघ्र हुआ कि लोगो को इसका पता भी न चल सका। इस परिवर्तन का कारण इस पर विदेशी प्रभाव कहा जा सकता है। यह विदेशी प्रभाव प्राचीन सुमेरियन सभ्यता थी। ऐसा विश्वास किया जाता है कि फारस की खाडी मे समुद्रयात्रा द्वारा सुमेरियन व्यापारी सिंधु घाटी में पहुँचे और उन्होंने अपनी सभ्यता का प्रभाव सिंधुघाटी की सभ्यता पर डाला, इसी कारण सिंधुघाटी की नई सभ्यता बहुत कुछ प्राचीन सुमेरियन सभ्यता से मिलती जुलती है। सिंधुघाटी का स्वाभाविक वातावरण उनके व्यापार तथा उनकी रक्षा के अनुकूल ही था। भारतीय मोहरें, मोती तथा दूसरी वस्तुयें, जो यहाँ से प्राप्त हुई है, वे प्राचीन पूर्वी सभ्यता के संपर्कों को प्रमाणित करती हैं। इनका संबध आपस में गुलामों के व्यापार, कपडो एव हाथी दाँत के व्यापार के द्वारा 2500-1500 ई० पूर्व तक बना रहा। परतु तब पर भी यह सबध केवल प्रेरणा तक ही सीमित रहा।

कहा जाता है कि किसानो के कुछ परिवार चौबिस अलग-अलग स्थानों में आकर बस गये, इन स्थानो में से दो महत्त्वपूर्ण स्थान माने गये हैं ये मोहेंजो-दाडो एव हडप्पा शहर है। यही से शहर की योजना, धर्म तथा वस्तुकला (Architecture) का प्रारभ माना जाता है। उनकी मूर्तियो मे धर्म एव उनके रीति-रिवाजों की झलक हमें देखने को मिलती है।

सिंधुघाटी की सभ्यता का पता सन् 1924 में सर जॉन मार्शल एव डाक्टर मैके द्वारा प्राप्त हुआ था। यह सभ्यता सिंधु एव रावी के तट पर हजारों वर्ष पहले की आर्य पूर्व के सबधो को दिखाती है। यह कला के हर पहलू पर

विभिन्न रूपों से प्रकाश डालती है। उस समय मूर्तिकला, वास्तुकला, शिल्पकला, चित्रकला, वास्तुकला आदि सब ही कलाओं को विकसित होने का पूर्ण अवसर प्राप्त हुआ और हड़प्पा एव मोहेनजोदाड़ो की खुदाई से प्राप्त वस्तुयें इसके सफल उदाहरण हैं। वे आर्य सभ्यता पर भी प्रकाश डालती हैं, साथ ही सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा व्यक्तिगत जीवन को स्पष्ट करने में भी योग देती हैं।

मोहेनजोदाडो एवं हड़प्पा की सभ्यतायें

सिंधुघाटी की सभ्यता के ये शहर विशेषकर उस सभ्यता के महत्त्वपूर्ण उदाहरण माने गये हैं, जिससे प्राचीन भारत की सभ्यता का पता चलता है। इनके मुख्य नगर सिधु के बीच में बसा मोहेनजोदाड़ो (मुर्दों का नगर) तथा पंजाब के मध्य मे स्थित हडप्पा शहर माने गये है। पुरातत्त्वज्ञों (Archaeologists) के द्वारा मोहेनजोदाडो को 5000 वर्ष पुराना माना गया है। यह नगर सभ्य मनुष्यों के व्यस्त वैभव का केंद्र था। इस सभ्यता को भारतीय सुमेरियन सभ्यता भी कहते हैं। यह युग पाषाण युग (Stone Age) से धातु के युग (Bronze Age) का समय कहा जाता है। ये केंद्र विश्वभर की सभ्यता को दिखाते हैं जिसमें ऐलान (Elan), मेसोपोटामिया (Mesopotamia), मिश्र, तुर्किस्तान, उत्तरी कॉकेशस (North Caucasus), बैबिलोनिया एवं सुमेरियन इत्यादि की सभ्यता का घनिष्ट सबध दिखता है। ये सब ही सभ्यतायें पहले एक समान थी परतु बाद मे ये सब ही भिन्न-भिन्न स्थानों पर अलग-अलग पनपी, इसी कारण ये भिन्न-भिन्न स्थानों की भिन्न-भिन्न सभ्यतायें हो गईं। ऐसा मालूम होता है कि इनका जीवन सगठित था, उनकी अपनी नगरपालिका थी, उनकी निकास नालियाँ एव उनके शहर की योजना अति उत्तम थी। इस नगर की इमारतें प्रभावशाली थी जिनके कारण इस नगर को राजधानी बताया गया है। मोहेनजोदाडो एव हड़प्पा दोनों ही शहर एक वर्ग मील क्षेत्रफल में स्थित थे केवल हडप्पा शहर रावी नदी के कछार पर अर्धवृत्त (Semicircle) में स्थित था।

सिंधुघाटी की वास्तुकला (Architecture)

मोहेनजोदाडो एव हड़प्पा नगर के भवनों, स्नानागारों सड़कों तथा नालियों के अवशेष प्राचीन वास्तुकला के महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं। एक विशाल स्नानागार है जिसमें सीढ़ियाँ बनी है तथा इसके चारों ओर कमरों के साथ लम्बे चौडे बराम्दे बने हैं जो उस समय की सभ्यता एवं वास्तुकला दोनों ही के अच्छे उदाहरण हैं। इन नगरों में मकान सड़कों द्वारा एक दूसरे से अलग किये गये हैं। मुख्य सड़कों पर मकानों के द्वार खुलते हैं। हर मकान में कूयें बने पाये गये हैं।

यहाँ की सडके खूब चौड़ी हैं । मकान भी मुख्यत दो या तीन मंजिलें है । ये प्राचीन नगर कई भागों में विभाजित मिलते हैं । ये नगर किले के समान बना नही जान पडता है । कुछ इमारतें काफी मोटी दीवारों की नगर के पश्चिमी कोनों पर बनी पाई गयी है, जिन्हें धार्मिक इमारतें माना जा सकता है और इन्हें मंदिर कहा गया है । विशेषकर यहाँ की इमारतें आग में पकी ईंटों से बनी हैं, जिससे यह पता चलता है कि उस समय उन्हें लकडियाँ बहुत आसानी से प्राप्त होती होंगी । धूप से पकी ईंटों का प्रयोग इमारतो की भीतरी दीवारों में किया मिलता हैं, ये दीवारें मट्टी से पुती जान पड़ती है । मोहेनजोदाडो में पाठशाला, सभाभवन, अनाज भंडार, सरकारी भवन, मृत मनुष्यों के भवन, तथा निम्न-जाति के लोगों के निवास स्थान भी बने मिले हैं । यह तो उस समय की नगर की योजना हुई जो बहुत उन्नत थी ।

यहाँ पर किसी भी इमारत में वास्तुकला (Architecture) का अलकरण नही मिलता है । सब इमारतें सादी बनी हुई हैं, केवल एक स्थान पर ईंटों को अलकरण के तरीके से प्रयोग मे लाया गया है ।

मूर्तिकला (Sculpture)

इस सभ्यता को धर्म मे आस्था थी, इस कारण उनकी मूर्तियाँ धर्ममय है । ये मूर्तियाँ लकडी, पाषाण एवं अनेक धातुओ की बनी मिली हैं । ये मूर्तियाँ चाहे

चित्र - ६
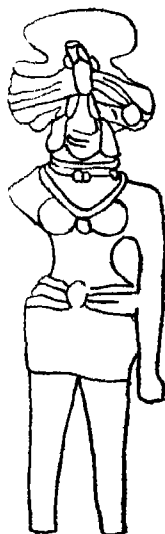
चित्र - ७

जिस चीज को भी बनी हैं, ये बहुत ही छोटे नाप की बनाई गयी है। ये विशेष-कर मनुष्य आकृतियाँ हैं, परंतु इन मूर्तियों में विशेषकर स्त्री आकृतियाँ पाई गई हैं, जो कि गहनों से भरी हैं (चित्र 6 एवं 7)। कभी-कभी वे अपनी गोद में बच्चे को भी लिए बनाई गयी हैं; कभी वे शेर की खाल भी पहने दिखाई पड़ती हैं। ये आकृतियाँ "देवी माँ" की जान पड़ती हैं, जो कि उस समय की सृष्टि की उत्पादिनी शक्ति का भास कराती हैं। उस समय की सभ्यता में स्त्री को बहुत महत्त्व दिया जाता था, और धीरे-धीरे इस विचार ने हिंदू धर्म की दार्शनिकता में काली तथा शक्ति का स्थान ले लिया।

दो छोटी कासे की वस्त्रहीन नृत्य की मुद्रा में गुलाम बालाओं की शृंगार से युक्त मूर्तिया मोहनजोदाड़ो से प्राप्त हुई है। एक थोड़ी अपरिष्कृत बनी हुई है परतु दूसरी बहुत ही सजीव है। इन मूर्तियो के केश बहुत मोटे तथा घने बनाये गये हैं और ये दाहिने कधे पर गिरे हुए हैं, इनका दाहिना हाथ कमर पर है एवं बाया हाथ चूड़ियों से भरा हुआ है और यह हाथ नीचे लटके हुए घड़े को पकड़े हुए है, पैर अकन की मुद्रा में पृथ्वी पर कुछ झूलता हुआ-सा है। (चित्र 5) यह मूर्ति नाप में $4\frac{1}{2}$'' की है, एवं पूरी मनुष्य आकृति है। हड़प्पा से भी मनुष्य की पूरी आकृतियों की मूर्तियां मिली है। यहा से एक ताबे की मोहर भी मिली है जिसके एक ओर पशु आकृति है तथा दूसरी ओर लिपि लिखी है। इन धातु की मूर्तियों से पता चलता है कि वे सभी प्रकार की धातुओं का ज्ञान रखते थे परतु वे लोहे से अनभिज्ञ थे क्योंकि लोहे की कोई भी वस्तु यहां से प्राप्त नही हुई है।
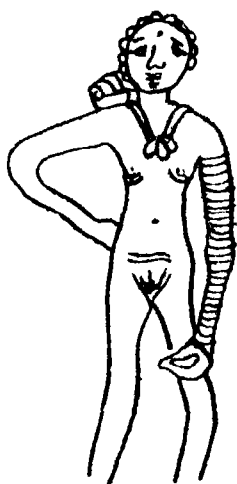
चित्र-5

हाथी दात की भी स्त्री आकृति की एक मूर्ति मिली है जो कि योरप के मेदोना (Medona) की मूर्ति का स्मरण कराती है, जिससे हमें उनके कलात्मक जीवन का भास होता है।

यहा से पत्थर को कटी हुई मूर्तियां भी प्राप्त हुई है जिससे इनके पत्थर को काटने के ज्ञान का पता चलता है इसका अच्छा उदाहरण मनुष्य आकृति के धड़ का शिल्प है जिसके हाथ एवं सिर नही हैं।

यहा से कुछ बूढ़े दाढ़ी वाले मनुष्यों की भी आकृतिया पाई गई हैं जिन्हें

राजा या पुजारी की मानी गई हैं। इन मूर्तियों की उभरी हुई नोकीली गोल आँखें, नाक, सिर तथा बाल ग्रीक प्रभाव को दिखाते हैं परंतु इसे सुमेरियन प्रभाव भी माना गया है। ये मूर्तिया विशेषकर संहत शरीर की हैं। साधारण गहनो, साधारण कपड़ों एव सिर के गुणों से भी इन मूर्तियों को सुमेरियन प्रभाव की कहा गया है। एक लाल पत्थर की मूर्ति भी यहा से प्राप्त हुई है जो किसी पुष्टकाय यूनानी मनुष्य की छोटी नकल लगती है तथा दूसरी चूना पत्थर (Lime stone) की नृत्य की मुद्रा की बनी है जिसकी मुद्रा शिव की नटराज की मुद्रा के समान है।

मूर्तिकला के 3/4 भाग आग में पकी मिट्टी (Terracotta) के जानवरों की मूर्तिया है, जिनमें छोटी सीग के बैल, हाथी, गैंडा, सूअर, भेड़, कुत्ते, भैंस, बदर, पक्षी, घोड़े तथा बच्चो के खेलने के खिलौने पाये गये है, कुछ खिलौने हिलते हुए सिरों के भी यहा से प्राप्त हुए है। यहा से घर के प्रयोग के मिट्टी के बर्तन एवं वस्तुयें भी मिली हैं। आग मे पकी मिट्टी (Terracotta) के कई रगो की मूर्तिया भी यहा से पाई गई है।

मोहेनजोदाडो की मूर्तियो का अनुग्रह तथा भावयुक्त प्रतिमाकन भारत की कोमल एव भावयुक्त कला के अच्छे उदाहरण है। हडप्पा से प्राप्त मनुष्य के धड एवं बैल की मूर्तिया हमें भारतीय मूर्तिकला के 'प्राण' (स्वास) को दिखाती है। भारतीय मूर्तिकला में 'प्राण' की सजीवता को विशेष महत्व दिया गया है जिसका अनुभव हमें यहा से प्राप्त मूर्तियों से भी मिलता है। ये मूर्तिया 1500 वर्ष बाद की यूनानी मूर्तियो की बराबरी करती हैं। मकानो की चहरदिवारिया अधिकतर पशुओं, बन्दरो तथा गिलहरियों इत्यादि की आकृतियों से भरे हुए हैं।

मूर्तिकला के सुंदर उदाहरण यहा से प्राप्त सेलखडी की मुहरें (Steatite Seal) भी है। ये $\frac{3}{4}''$ से $\frac{1}{4}''$ तक की चौकोर आकृतिया है। इन मुहरो पर उभरी हुई आकृतिया (Relief Modelling) बनी हुई है, उनके पीछे की ओर छेददार बूटे(Perforated boss) मिलते हैं। यहा से कुछ गोल मुहरें भी प्राप्त हुई हैं जिसका कारण उनकी मोहरों पर विदेशी प्रभाव मालूम होता है। इन

(ठा)

चित्र 8

मोहरों पर जानवरों की आकृतियां (चित्र 8) एवं धार्मिक दृश्य भी बने हुए मिले हैं। इनकी लिपि प्राचीन सुमेरियन के समान जान पड़ती है परंतु इनकी लिपि की अलग से उत्पत्ति हुई है। हालांकि मुद्राओं की लिपि अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी है परन्तु फिर भी आकृतियों को शैव मत से संबंधित माना गया है। इससे पता चलता है कि उस समय इस प्रदेश में रहने वालों का जीवन धर्मप्रधान रहा होगा। किसी-किसी मोहर पर बैल की आकृति बनी मिली है (चित्र 8 क) जिसे धर्म का प्रतीक

चित्र 8

माना जा सकता है जिसने बाद में हिन्दूधर्म में नंदी का स्थान ले लिया, तथा शेर को भी (चत्र 8 ख एव ङ) बाद में हिंदू धर्म में दुर्गा का वाहन माना गया है जिससे हमें पता चलता है कि लिंग पूजन एव पाषाण युग की उत्पत्ति सिंधु घाटी की सभ्यता से प्रारभ हुई होगी। एक मोहर पर दो स्त्रियों के बीच में पीपल के वृक्ष का

चित्र।
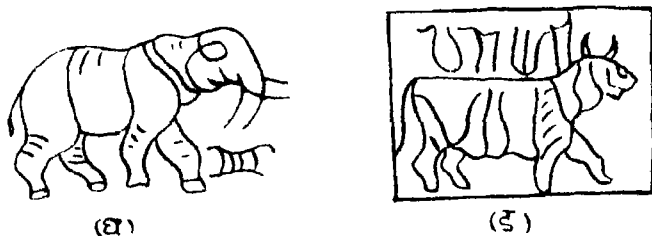
चित्रण किया गया है जिसको बाद में हिंदू तथा बौद्ध दोनो ही धर्मों में महत्त्व दिया गया है। कुछ नागमत के भी प्रतीकात्मक चित्र यहां से प्राप्त हुए हैं। इन सभी बातों से पता चलता है कि उस समय के लोगों का जीवन धर्मप्रधान रहा होगा। कुछ मोहेनजोदाड़ों से प्राप्त मोहरों पर के चित्र अपने में आर्य सभ्यता की छाप

स्पष्ट प्रकट करते हैं जैसे चित्रों में अंकित तिलक यज्ञोपवीत इत्यादि । यहां के जानवरों के चित्रों (चित्र 8 घ) से उनकी कोमल कलात्मक भावना का बोध होता है एवं उनका पशु जीवन से पारस्परिक संबंध का पता चलता है । यहां पर जानवरों का अंकन बहुत सफलतापूर्वक किया गया है परंतु मनुष्य आकृतिया यहां पर जड एवं परंपरागत हो गई हैं । यहां पर कुछ आकृतियों को उत्कीर्ण आकृति की प्राविधि (Intaglio technigue) में भी काटा गया है ।

यहा से स्त्रियों के आभूषण, चूड़िया, जूडे के पिन एवं कघी, बाल उखाडने की चिमटिया, शृंगारदान आदि भी प्राप्त हुए है, ये वस्तुयें उनके कलात्मक होने की अनुभूति कराते हैं । इनके जीवन के प्रत्येक पहलू कला से सबधित जान पड़ते है ।

चित्रकला (Painting)

यहा पर चित्रकला केवल बर्तनो को सजाने में की गई है । यहा पर चित्र केवल रेखाओं द्वारा बनाये गये है, ये रेखाये बहुत आसानी से खीची जान पडती है । इन बर्तनो पर रेखाओ के द्वारा भूमिति-विन्यास (Geometrical motives), शतरंज के नमूने, बिंदू की गोलाकार आकृतियों की कतारे, पेड, पत्ते, पशु, पक्षी एवं मनुष्य आकृतिया बनाई गई हैं । यहा से जडत का काम भी प्राप्त हुआ है । ये लोग किसी भी प्रकार के बारीक औजारो का प्रयोग नही करते थे । इसी कारण कोई भी बारीक काम यहा से प्राप्त नही हुआ है ।

प्रयुक्त कला (Applied Art)

सिंधुघाटी की प्रयुक्त कला वहाँ से प्राप्त काँसे की मूर्तियो, शृगार के बर्तनो, शीशे इत्यादि की वस्तुओं में दिखती है । चाकूओ पर कही-कही आकृतियों का अलकरण भी पाया गया है । मोती एव सोने के हार भी यहाँ से प्राप्त हुए हैं ।

यहाँ की खुदाई से प्राप्त मानव ककाल और ठठरियो से द्रविड एव मगोल जाति के लोगो से समानता प्रकट होती है, इस प्रकार निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि प्राचीन कालीन इन सभ्यताओ का आपसी आदान प्रदान व्यापकरूप से कला के द्वारा होता रहा होगा । यहाँ से प्राप्त वस्तुओ से पता चलता है कि कैसे सब वस्तुयें उनके जीवन को लोक कला की श्रेणी में बाँधते थे । इन सभी वस्तुओ से उनकी सभ्यता की समृद्धता का पता चलता है । इसी सभ्यता के द्वारा भारत की प्राचीनकालीन सभ्यता का विशद वर्णन मिलता है ।

सिंधुघाटी की सभ्यता के मुख्य उदाहरण

1 यहाँ से भिन्न-भिन्न प्रवृत्ति (Tone) के रंगों एवं कई रंगों के पक्की मिट्टी के बर्तन अथवा खिलौने (Terracotta) प्राप्त हुए हैं।

2 यहाँ से जडत (Inlay) का काम भी प्राप्त हुआ है।

3 यहाँ की प्राप्त मूर्तियों में केश का भारी शोधन मिलता है तथा ये आकृतियाँ मोटी, गोल तथा ठोस वनाई गई है।

4 विशेषकर आकृतियाँ पूरी बनी हैं।

5. यहाँ की बैल की मुहर विशेष महत्त्वपूर्ण है क्योंकि बैल को सृष्टि की रचना तथा उत्पादकता (Productivity) का सकेत माना गया है।

6. हड़प्पा से मनुष्य का चूनेदार पत्थर (Lime stone) का धड बहुत महत्त्व का है।

7. मोहनजोदाडों से कांसे की नृत्य की मुद्रा की गुलाम बाला की मूर्ति प्राप्त हुई है जो $4\frac{1}{2}''$ की है।

इन वस्तुओ को देखते हुए हम कह सकते हैं कि उस समय के लोगो में कलात्मक क्षमता भी मिलती थी एव यहाँ कि कला में प्राचीन कला का ओज भी था। ये सभी वस्तुयें सिंधुघाटी की सभ्यता पर प्रकाश डालती है, इन्हे देखते हुए हम यह आसानी से कह सकते हैं कि उस समय की सभ्यता काफी उन्नत एव समृद्ध थी एव उसी सभ्यता ने भारत की बाद की सभ्यताओ का पथ-प्रदर्शन किया। पहले लोगों का यह विचार था कि यह सभ्यता केवल सिंधुघाटी में ही स्थित थी परंतु नई खोजो द्वारा यह पता चला कि यह अहमदाबाद, गुजरात, अम्बाला के पास के स्थानों पर भी थी एवं एक नई खोज के द्वारा इसे बगाल में बाकुडा गाँव मे भी स्थित पाया गया है। इन सब ही बातो से यह पता चलता है कि यह सभ्यता उस समय केवल सिंधुघाटी मे न रहकर भारत के दूसरे स्थानो पर भी फैली हुई थी।

सिंधुघाटी की सभ्यता का पतन ईसा से दो हजार वर्ष पूर्व में माना गया है। हालाँकि इसके पतन का कारण लोगों को अभी तक नही मालूम है परंतु ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि शायद आर्यों के भारत मे आगमन पर या भूकंप के कारण इसका पतन हुआ होगा परतु इसका असली कारण अभी तक अज्ञात है। इसके पतन का एक कारण और माना गया है कि शायद जगलों के धीरे-धीरे समाप्त होने से रेगिस्तान का भारत में फैलना प्रारंभ हुआ होगा जिससे मनुष्यों का रहना नामुमकिन हो गया और इस प्रकार से धीरे-धीरे

सिंधुघाटी की सभ्यता का अंत हो गया होगा । चाहे जिस कारण से इस सभ्यता का अंत हुआ हो परंतु यही सभ्यता भारत की उन्नत सभ्यता का प्रारंभ दिखाती है और यही सभ्यता अंत में भारतीय-सुमेरियन (Indo-Sumarian) सभ्यता कहलाई।

इस सभ्यता की प्राप्त मुद्राओं की लिपि को समझना व अध्ययन करना बहुत आवश्यक है बिना उसके तत्कालीन साहित्य एवं इतिहास का स्पष्ट पता नही चल सकता । इस पर खोजें हो रही हैं, देखें क्या स्पष्ट होता है ।

●

अध्याय 4

भारतीय बौद्ध धर्म का युग

(छठी शती ईसा पूर्व से पहली शती ईसा पूर्व–छठी शती तक)

आर्यों का युग

1200 ई० पूर्व से 300 वर्ष ईसा पूर्व में भारतीय आर्य सभ्यता (वैदिक, बौद्ध तथा जैन) गुप्तकाल की सभ्यता के रूप में बदल गई, और 330 ई० से 530 ई० में गुप्तकाल की सभ्यता ने मध्यकालीन हिंदू सभ्यता का रूप ले लिया। आर्यों के युग के बाद से बौद्ध युग के प्रारंभ तक के 500 वर्षों का भारत का युग बहुत महत्त्वपूर्ण युग माना गया है। यह नंद, मौर्य तथा गुप्त राज्यो का समय था, जिसमें उनके रहन-सहन पर विदेशी (यूनानी, रोमन इत्यादि) प्रभाव पड़ा और इन पर इतना विदेशी प्रभाव होने पर भी इनकी सामाजिक पद्धति विदेशों से प्रभावित नहीं हुई। आर्यों का राज्य उत्तरी भारत में फैला हुआ था। इस समय समाज में वर्ग पाये जाने लगे थे और त्याग को महत्त्व दिया जाता था परंतु इस समय लोग अलग-अलग धर्मों के अनुयायी थे, और इस कारण से उनका अलग-अलग दर्शन (Philosophy) था। धनी लोग उस समय कृष्ण एव विष्णु की उपासना करते थे, मध्यवर्ग के लोग बौद्ध तथा जैन धर्म के मानने वाले थे और गाँव के लोग शिव के रुद्ररूप को पूजते थे। परन्तु बाद में उनके लोकतन्त्रात्मक स्वभाव के कारण बौद्ध एवं जैन धर्म अमीरों और गरीबों दोनों ही का धर्म हो गया, यही उस समय की कला का प्रधान अंग हुआ। बौद्ध एव जैन धर्म दोनों ही भारत में साथ-साथ पनपें, हालांकि ये हिंदू धर्म के विपरीत थे। बौद्ध धर्म दक्षिण भारत मे 7वी शताब्दी तक तथा बंगाल में 12वी शताब्दी तक रहा परंतु जैन धर्म आज के युग तक फैला हुआ है।

भारत मे बौद्ध धर्म का युग

बौद्ध काल का भारत मे समय 50 ई० से 700 ई० तक का माना गया है।

पहली शताब्दी के प्रारंभ में हम अपने को भारतीय कला के प्रतिष्ठित युग के प्रभात में पाते हैं। इस समय बौद्ध धर्म राज्य का धर्म हो गया था और यह हिंदू धर्म के फिर से प्रचार होने तक रहा (700 ई०)। इस समय भारत समस्त पूर्वी विश्व को मार्ग दिखा रहा था और उस समय के भारत के बौद्ध धर्म को

समस्त एशिया अपनी प्रेरणा का केंद्र मानने लगा था। अपनाने के स्वभाव के कारण ही बौद्ध धर्म इतना फैला और इसकी सभ्यता एव शिक्षा सब स्थानों पर फैली, परंतु कला के क्षेत्र में यह सबसे अधिक महसूस हुई। पूर्वी कला पर जितना, बौद्ध धर्म का प्रभाव दिखता है उतना शायद ही कही की कला पर दूसरी कला का प्रभाव दिखाई पडता है। जैसे-जैसे बौद्ध धर्म ससार में फैला वैसे-वैसे कला द्वारा धर्म के चित्रों का भी प्रचार हुआ। बौद्ध साधु कलाकार देश के बाहर भी जाने लगे और चित्रों द्वारा बौद्ध धर्म का प्रचार विदेशों में होने लगा। उनका यह विचार था कि चित्रों के द्वारा साधारण मनुष्य धर्म के प्रचार को जल्दी समझ लेता है। कला उस समय दूसरे देशों में अपने भावों को व्यक्त करने का आसान माध्यम समझी जाती थी। बौद्ध धर्म के चित्रो के अच्छे उदाहरण नेपाल तथा तिब्बत के मंदिरों के टंखा (banners) है। 17 वी शताब्दी में तारानाथ का कहना था कि "जहां-जहा बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ, वहां उसके कलाकार भी मिलते हैं।" जापान एवं चीन में भी इस तरह के चित्र विशेषकर मिलते हैं। ऐसा समझा जाता है कि बौद्ध धर्म भारत के बाद चीन एवं जापान में ही सबसे अधिक फैला। नाराकाल के जापान में इस धर्म के भाव से युक्त चित्र सबसे अधिक बने मिले है। भारत में 'अजन्ता' एवं जापान के होरेंजी (Horiyunji) के भित्ति चित्र (Frescoes) इसके अच्छे उदाहरण है। ये चित्र एक दूसरे से बहुत अधिक मिलते-जुलते दिखते है, जिससे यह पता चलता है कि भारतीय कलाकारों ने जापान में भी इन चित्रो को बनाया होगा। ये चित्र आकृतियों की तीव्र रूपरेखा एव भारतीय कला के 'प्राण' (स्वास) के गुण को बहुत सुदर ढग से दिखाते है। ऐसा मालुम होता है कि जापान के तोसा स्कूल के चित्र भी भारतीय लघु चित्रो (Miniature Paintings) से बहुत प्रभावित हैं। भारतीय बौद्ध कला का प्रभाव जापान, लंका, जावा, बरमा, नेपाल, भूटान, तिब्बत, चीन इत्यादि स्थानो की कला पर स्पष्ट दिखता है। भारत की उस समय की चित्रकला पर भी विशेषकर बौद्ध धर्म का प्रभाव दिखता है। हालांकि समय के कारण बहुत कुछ चित्र नष्ट हो गये है, फिर भी बौद्ध साधु कलाकारो का काम चित्र के महान स्कूल की उत्पत्ति को दिखाता है। भारत जिस तरह से बौद्ध धर्म का जन्म स्थान है उसी प्रकार से यह बौद्ध चित्रो का भी जन्म स्थान है। अजन्ता एव बाघ के बौद्ध चित्रों से कला की वृद्धि का पता चलता है, हालांकि यहा के अधिकतर चित्र नष्ट हो गये है।

बौद्ध शैली की उत्पत्ति बहुत स्वाभाविक है, इसके चित्र विशेषकर तूलिका द्वारा बनाये गये हैं और ये लेखाचित्रीय (Graphical) हैं, इनमें मौलिक प्राचीनता विशेषकर सचित्र (Pictorial) कला के रूप में है।

इस बौद्ध धर्म के काल को हम तीन भागों में बांट सकते हैं—

1. नंदकाल (600-322 ई० पूर्व)
2 मौर्य काल (323-184 ई० पूर्व)
3. शुंगकाल (185-80 ई० पूर्व)

1 नदकाल

यहा से भारत का क्रमबद्ध इतिहास प्रारंभ होता है। इस काल की बनी हुई बहुत-सी मूर्तिया प्राप्त हुई है, जिन्हें शैशुनाग वंश के राजाओं का माना गया है। इनकी कुछ मुख्य मूर्तियां इस प्रकार से हैं :

(क) इनमें अजातशत्रु की मूर्ति सबसे प्राचीन है। अजातशत्रु 552 ई० पूर्व में राजसिंहासन पर बैठा था, इस कारण यह मूर्ति उसी समय की बताई गई है।

(ख) यह अजउदयी (अजातशत्रु के पिता) एव बालक अजातशत्रु की मूर्ति है।

(ग) यह दो स्त्रियां एव एक पुरुष की मूर्ति है।

इन सब ही मूर्तियों की शैली आपस मे एक-सी है। केवल तीसरी मूर्ति साधारण से अधिक उचाई की है। ये मूर्ति यक्षों की मूर्तिया मानी गई है। इस समय की कुछ जैन मूर्तिया भी मिली है।

2 मौर्य काल

यह मौर्य राजाओ का युग माना गया है। मौर्य काल का प्रथम राजा चंद्रगुप्त मौर्य था, इसका राज्यकाल 323 ई० पूर्व में था। इसने बहुत कुछ यूनानियों से सीखा था, विशेषकर इसके समय के शिल्पो में यूनानी प्रभाव स्पष्ट दिखता है। सम्राट अशोक चद्रगुप्त का दूसरा उत्तराधिकारी था, यह मौर्य वश का सबसे महान राजा हुआ, इसका राज्यकाल 273-236 ई० पूर्व तक था। यह पहले बहुत क्रूर राजा था परंतु कलिग (उडिसा) की लडाई के बाद इसने बौद्ध धर्म को अपना लिया था। इसने अपने राज्य मे बौद्ध धर्म की दार्शनिकता का प्रचार खभो पर खुदवा कर किया। इसने बौद्ध भिक्षुओं को धर्म के प्रचार के लिये लका, बर्मा, काश्मीर, नेपाल तथा भूमध्यसागरी राज्यो में भेजा। इसने भारत में पत्थर की इमारतो का प्रचार किया, साथ ही इसने बहुत सारे स्तूप बनवाये, जो कि बाद में बौद्धधर्म एवं कला के महत्त्वपूर्ण स्मारक समझे गये। अशोक के समय के शिला स्तंभ, स्तूप एवं विहार कला के महत्त्वपूर्ण स्मारक माने गये हालाकि बौद्ध धर्म का यह ध्येय न था परतु अशोक की नीति एकदम भिन्न थी। अशोक के युग में कला पर सबसे अधिक ईरानी शैली का प्रभाव

दिखाई देता है, इसका अच्छा उदाहरण अशोक के एक दिष्ट स्तंभ (Monolithic Column) है, विशेषकर यह प्रभाव स्तंभों की रूपरेखा एवं उसके वास्तुकलात्मक अलंकरण में स्पष्ट दिखाई पड़ता है। एक दिष्ट स्तंभों (Monolithic Column) के शिलास्तभों (Capitals) पर बने खड़े तथा बैठे पशु एकदम ईरानी शैली में बने हुए हैं। अशोक का सारनाथ का स्तंभ (Capital) भी यूनानी प्रभाव से युक्त है। असली ईरानी शैली के गुण भरहुत, सांची तथा गाधार के अभ्युचित्रो के बैल तथा दूसरे पशुओं में स्पष्ट दिखाई देता है। अशोक के युग की कला पर दूसरा विदेशी प्रभाव यूनानी शैली का है। अभ्युचित्रों (bas reliefs) की पत्थर पर बनी हुई लंबी कतारें यहा पर दिखती है जो कि भारत में सिकंदर द्वारा लाई गयी थीं, हालाकि उनका विषय एवं उनका शोधन (Treatmeut) पूर्णरूप से भारतीय है, फिर भी ये अपने में विदेशी प्रभाव को दिखाते हैं।

बौद्ध स्तूप

बौद्ध स्तूप केवल अंत्येष्टि स्मारक हैं, ये पत्थर के घेरे से घिरे होते है जैसा कि वैदिक युग में भारतीय आर्य (Indo-aryan) लोगो ने अपने मुख्य राजाओ या सेनापतियों के लिये बनवाये थे। ये स्तूप स्थूलकाय गोलंध विन्यास (Massive Hemispherical Structure) के रूप मे बने हैं जो कि चहारदिवारी से घिरे हैं एव उनके उपर छाता बना है, ऐसे ही स्तूप उत्तरी बिहार के लौरिया नंदन गढ़ में भी पाये गये हैं, हालांकि यह प्रमाणित किया जा चुका है कि वे मौर्यकाल से पहले के नही बने हुए है, कुछ तो स्तूपों के समान भी नही बने हुए है परंतु फिर भी उनमें कुछ गुण वैदिक काल के वैदिक शव स्तूपों के पाये जाते हैं जैसे बीच का खभा एवं छोटे सोने के पत्ते पर पृथ्वी की देवी की छाप पाई जाती है। परतु यह पत्थर के चबूतरे एवं दीवारों से घिरा हुआ है। अंदर की दीवारें गोलाकार एवं चक्रीय (Radial) हैं। पूज्य लोगों की राख, भीख मागने के बर्तन, धर्म की पुस्तकें, मुख्य भिक्षुओं के कपडे अथवा बाद में बुद्ध भगवान के चित्र भी धातु के बर्तन मे करके यशालि के बीच में रखी गई है, बाद में उसके उपर स्तूप को बनाया गया है जिसकी रूपरेखा पृथ्वी की अक्षरेखा (World Axis) के समान बनाई गई है। यह बहुत कुछ मेरु पर्वत के समान बना है, यहां पर स्तूप के गोलंध को आकाश का गुंबज माना गया है। उपर का छोटा सा घेरा 'हरमिका' को इश्वर का घर कहा गया है, क्योंकि उन्हें यह विश्वास था कि यह पृथ्वी को चलाता है। इसके ऊपर के सात छातों को स्वर्ग में जाने का मार्ग माना गया है। स्तूप वेदिका द्वारा घिरा होता है, ये 'सचि' द्वारा 'थाबा' से मिलाया गया है, यह पत्थरों की मुंडेर से ढका हुआ बनाया

जाता है, जो कि दुनिया के चारों ओर सितारों के घुमाव को संकेत करता है इसके ही द्वारा घंटों एवं मौसम का पता चलता है। वेदिका (Balustrade) के बीच में चारों ओर दरवाजे बने हुए हैं जो चारों दिशाओं का संकेत करते हैं। स्तूप एवं तोरण के बीच में प्रदक्षिणापथ बनाया जाता है जो सूर्य एवं तारों की

चित्र 10
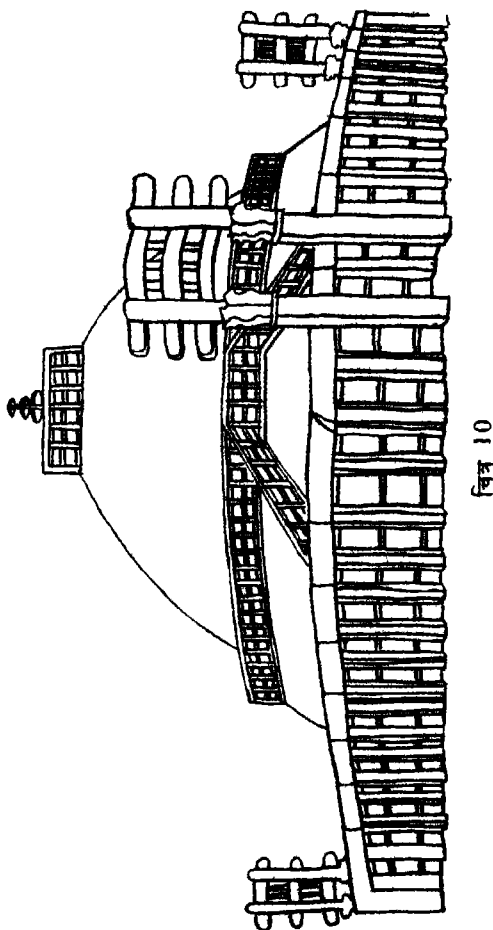
गति को दिखाता है। राख को बाद में नौ कमरों में बांट कर रखा गया जिसे बाद में शिरोबिंदु के आठ कोने कहा गया एवं स्तूप का भाग बुद्ध के तत्त्वों का

संकेत माना गया। कई स्तूपों में लकड़ी के स्तंभों के स्थान पर पत्थर का प्रयोग किया गया है, यहां पर स्तूपों का आकार गोलार्ध नही रह गया है परंतु फिर भी इनकी रूपरेखा अशोक के स्तूपों के गुणों को दिखाती है जैसे नेपाल का स्तूप। इन स्तूपों को जादुई रहस्य के यंत्र भी माना गया।

धर्म के नाचने इत्यादि के रीतिरिवाजों को अशोक ने पूर्णरूप से समाप्त कर देना चाहा था इसी कारण से उसने स्तूपों को यक्षों के स्थान पर बनवाया, इसी ध्येय पर बाद में ईसाई धर्म में गिरजा घरो का निर्माण हुआ। इस प्रकार से बौद्ध धर्म में यक्ष एवं यक्षों को पूजना भी प्रारंभ हुआ। अशोक ने अपने समय में ही पूरे भारत को स्तूपों से भर दिया था और इन स्तूपों पर धर्म के प्रचार हेतु उसने बौद्ध धर्म की दार्शनिकता को लिखाया था। इसका प्रभाव धीरे-धीरे लोगों पर होने लगा और वे बौद्ध धर्म को स्वीकार करने लगे। इसी कारण जैन धर्म में भी स्तूपो का निर्माण प्रारंभ हुआ जिसने बाद में जैन मंदिरो का रूप ले लिया।

अशोक के बनवाये बहुत से स्तूप अब नष्ट हो गये हैं, फिर भी कुछ सारनाथ, सारस्वती, तक्षशिला, वैशाली, कपिलवस्तु तथा साँची में (चित्र 10) अभी भी सुरक्षित हैं। बाद में इन स्तूपों को इतना बढ़ा दिया गया कि उनका असली रूप ही समाप्त हो गया, परंतु नेपाल में ये स्तूप अभी भी अपने स्वाभाविक रूप में हैं। जिस बोधि वृक्ष के नीचे बोध गया में भगवान बुद्ध को ज्ञात प्राप्त हुआ था उस वृक्ष की डाल को नेपाल ले जाकर अशोक ने एक मंदिर का निर्माण करवाया था इसका प्रतीक हमें साँची के स्तूप में देखने को मिलता है। अशोक ने दो ही मंदिर बनवाये थे एक तो बोध-गया में तथा दूसरा नेपाल मे। बोधगया का मंदिर आधुनिक पुर्ननवीकरण (Restoration) तथा 12 वी शताब्दी के नवीकरण को दिखाता है।

बौद्ध विहार

बौद्ध विहार भी बौद्ध इमारतो में अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। ये बगीचो में बनाये जाते थे। इनमे बौद्ध भिक्षुओं को रहने के लिये कई कोठरियाँ कतारों में बनाई जाती थी। यहाँ पर चैत्यशालायें एव गलनशोधी भवन भी बने पाये गये हैं। परतु मौर्य काल की इस प्रकार की एक भी इमारत अब नही रह गई। कुछ अशोक के समय की ऐसी इमारतें राजगृह में आज भी हैं, इनकी दीवारों की पॉलिश (Polish) बहुत सुंदर है। सुदामा तथा लोमासा ऋषि की गुफाओं में भी बौद्ध विहार बने मिले है। इस गुफा में दो बड़े-बड़े कमरे हैं, अंदर का गोलाकार एवं दूसरा इससे जुड़ा हुआ बड़ा-सा कमरा है, जो

कि एक ओर बाहरी छत पर खुलता है। यह देखने में गोलाकार झोपड़ी के समान लगता है। लोमासाऋषि की गुफा के अंदर का द्वार उस समय के मकानों के द्वारों की तरह है। इनकी छतें कुछ नोकीली है एवं अंदर का मेहराब हाथियों की कतार द्वारा अलंकृत है। सबसे बड़ी गुफा गोपिका की गुफा है यह बहुकोण शिखरों में समाप्त होती है।

अशोक के शिलास्तंभ

मौर्यकाल के सबसे महत्वपूर्ण स्मारक अशोक के शिलास्तंभ है। ये स्तंभ रुमेंद्र, रामपुरवा, सारनाथ (240 ई० पू०) लौरियानंदनगढ़, सेलमगण (235 ई० पू०) आदि स्थानो में पाये गये है। ये सादे हैं परंतु इनकी पॉलिश (Polish) बहुत सुदर है, इन पर बौद्ध धर्म के प्रमुख उपदेश लिखे है, इनकी डडियाँ (Shaft) थोडो-सी नोकीली है। ये बिना आधार की हैं, परन्तु इन पर घटीनुमा स्तभ (bell capital) बना हुआ है, जिसके ऊपर बरगा (Abacus) बना है तथा उसके ऊपर साकेतिक पशु बने हुए हैं। कुछ समय बाद धीरे-धीरे डंडिया (Shaft) लबी बनाई जाने लगी और उनका स्तभ (Capital) अपाटव टोपी से घटियो या कमल की पत्तियों के आकार का होने लगा; एव उनका बरगा (Abacus) चौडा होने के स्थान पर निकले हुए चिपटे तथा गोल आकार का बनने लगा, इसके ऊपर शहद के छत्ते तथा गुलाब के गुच्छों के नमूने बनाये जाने लगे अत में उन पर "ज्ञान-चक्र" (Wheel of Law) बनाया गया इसे 'धर्मचक्र' भी कहा जाता है यह बौद्ध धर्म का प्रतीक था। इस धर्मचक्र को घोडे, बैल, हाथी, तथा शेर से वैकल्पित (alternate) किया हुआ बनाया गया है जिसे चारो दिशाओं का प्रतीक माना गया है। सारनाथ के शिलास्तभ के शेरो और सांची के स्तभ के शेरों पर यूनानी प्रभाव स्पष्ट दिखाई पडता है और ऐसा जान पडता है कि वे भारतीय नही है।

अशोक के स्तंभों का सबसे अच्छा एवं दोषहीन उदाहरण सारनाथ का अशोक का स्तभ तथा रुमेंद्र स्तंभ है।

अशोक का सारनाथ का शिलास्तभ (चित्र 9)

यह अशोक काल के शिल्प विज्ञान का बहुत सुदर उदाहरण है। इसका पता 1905 ई० मे लगा था। इसका निर्माण काल 242-232 ई० पूर्व में बताया जाता है। यह सारनाथ मे बना हुआ है, जहाँ सबसे पहले भगवान बुद्ध ने अपने धर्म के सिद्धातो का उपदेश दिया था। इसकी बराबरी का कही से भी भारत में इतना सुदर एव सजीव पशुओं का शिल्प नही प्राप्त हुआ है, इसमें यथार्थ

प्रतिमांकन (Modelling) तथा गौरव बहुत स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इसका हर
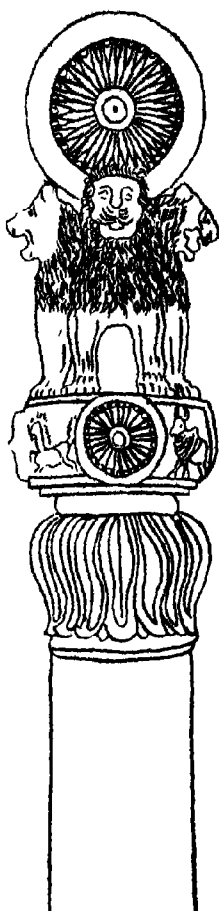
चित्र 9

विवरण परिशुद्धता से समाप्त किया गया है। इसके बास के अभ्युचित्र (bas reliefs) तथा चारों शेर बहुत ही सुंदर बनाये गये है। इस पर एशिया के एवं ईरानी आदिरूप (Prototype) के नमूने बने हुए हैं जिन्हें भारतीय मनोभावों के अनुरूप बदल दिया गया है। इसके बास के अभ्युचित्र (bas reliefs) पूर्णत: भारतीय है। सारनाथ के स्तंभ की बराबरी केवल साँची के खंभों की प्रतिकृति (Replica) ही कर सकती है, जो कि अब टूटी हुई अवस्था में है, परंतु साँची के शेर उतने सजीव एवं सुंदर नही हो पाये है जिससे यह प्रमाणित होता है कि शायद सारनाथ का स्तंभ (capital) बाहरी कलाकारों द्वारा बनाया गया होगा। सारनाथ के स्तंभ (capital) की पॉलिश (Polish) बहुत सुंदर है और यह गुण अशोक के स्मारकों में विशेषकर मिलता है। यह चूनेदार बलुआ पत्थर (Sand stone) का बना हुआ है। यह 7 फीट ऊँचा बना है।

इन स्तम्भों के लाट गोल तथा नीचे से उपर तक चढ़ावदार बने हुए हैं। इन लाटों के ऊपर के 'परगने' अशोक तथा उसके पूर्व की मूर्तिकला के सुन्दर नमूने है।

मौर्यकाल की मूर्तियो पर यूनानी प्रभाव स्पष्ट मालूम होता है। मौर्यकाल में सिकन्दर द्वारा 327 ई० पूर्व यूनानी प्रभाव भारत में आया जिसका पता पाटलीपुत्र से प्राप्त सिक्को से चलता है। अशोक की मृत्यु के बाद चूना पत्थर की भी मूर्तियाँ बनने लगी। मौर्यकाल के बर्तनों की पॉलिश बहुत उच्चकोटि की होती थी जिसकी विधि आज तक ज्ञात नहीं हो सकी है। इस समय के काले रंग के भी बर्तन पाये गये हैं।

3. शुंग काल

मौर्य काल के अंतिम राजा बृहद्रथ के सेनापति पुष्यमित्र का यह राज्यकाल

समझा जाता है। मुख्यतः यह वंश शुग वंश था। यह राज्य मध्य प्रदेश में स्थित था। इस काल की कला के मुख्य उदाहरण साँची एवं भारहुत हैं। शैली की दृष्टि से शुंग कालीन मूर्तियों को दो भागों में बाँटा जा सकता है—

(अ) मौर्य शुंग कालीन कला—उदाहरण सांची की मूर्तियां हैं, जिनमें अशोक कालीन शैली की प्रधानता है।

(ब) शुंग कालीन कला—उदाहरण भरहुत की मूर्तियां हैं।

(अ) मौर्य शुंग कालीन कला

इस समय की मूर्तियों पर बहुत कुछ अशोक के समय की शैली का प्रभाव दिखता है। इसके अच्छे उदाहरण साची के स्तूप की मूर्तिया है।

सांची का स्तूप (चित्र सख्या 10)

साची का स्तूप सातवाहनो द्वारा समाप्त किया गया था। पहली शताब्दी के अत मे मालव राजाओ ने चारों द्वारों को पहले बडे एवं तीसरे स्तूप में बनवाया था। भारतीय कला के इतिहास में साँची का महत्त्व उसके महत्त्वपूर्ण द्वारो के कारण ही है जो भारतीय कला के अच्छे उदाहरण है और ये चारों दिशाओ मे सडकों के द्वारा स्तूप तक पहुँचते हैं। इसमें अशोक द्वारा बनाया बडा-सा स्तूप बीच मे स्थित है जिसके चारो ओर तोरण बने हुए हैं तथा परिक्रमा करने के लिए चारो ओर दोहरी वेदिका भी बनी हुई है। ये तोरण एवं वेदिका ही शुगकालीन मूर्तिकला के प्रधान नमूने हैं। ये पत्थर की बनी वेदिका होते हुए भी लकडी की बनी का बोध कराती है, ये अशोक के समय की बनी मालूम होती है। स्तूप का व्यास 106 फीट है एव इसकी गोलाई 103 फीट है। दो स्तूपो मे बुद्ध भगवान के शिष्यो की राखें रखी हुई हैं, जिसमें एक पर छत नही है, परंतु उस पर बहुत सुदर प्राचीन वेदिका बनी हुई है परन्तु दूसरे में वेदिका केवल स्तूप के किनारो पर बनी है। स्तूप जिस पर छत नही है वह अशोक के युग का बना मालूम होता है। पूरे तोरण की ऊँचाई 34 फीट है और खभे 14 फीट के है। तोरणों पर भगवान बुद्ध की जीवनी से सबधित सजीव चित्र बने हुए हैं, उन पर कही-कही पर सिंह, हाथी, मृग, महिष तथा नाग बने हुए हैं जो कि बोधि वृक्ष का अभिवादन करते-से प्रतीत होते हैं। इन तोरणों पर भगवान बुद्ध की मूर्ति कही बनी हुई नही मिलती है, उनका स्थान स्वास्तिक, कमल अथवा चरणों आदि के सकेत से सूचित किया गया है, क्योंकि बुद्ध भगवान नही चाहते थे कि उनकी मूर्तियाँ बनाई जाये अतः उन्होंने अपने शिष्यो को इस ओर कदम बढ़ाने से रोक दिया था।

स्तूप के द्वार दो पत्थरों के भित्ति स्तंभों से बने हैं, जो हाथियों एवं बैलों

के मुंड में समाप्त होते हैं एवं ये दो खड़े बल के खम्भों को संभालते हैं । धर्म चक्र के समान बुद्ध भगवान् के उपदेशो (त्रिरत्न संकेतों) का संकेत करते हैं, इनके बीच में तीन खंभों का पत्थर का समतल घरन बना हुआ है इसे देख कर लकड़ी का भ्रम होता है, यह तीन देवियों की मूर्तियों द्वारा बना है जो कि साकेतिक अलंकरण का भाग है यह कोष्ठको (Brackets) को सँभाले हुए भी है । जहाँ पर समतल घरन का खंभा जाता है वहाँ पर यक्षों की मूर्तियों के नीचे शेरों, घोड़ों, हाथियों के मुंड को उनके सवारों तथा बिना सवारों के दिखाया गया है । खम्भों के ऊपर अभ्युचित्र (Reliefs) में लक्ष्मी, इंद्र तथा भगवान् बुद्ध को दिखाया गया है । घरनों पर जातक की कहानियों को चित्रित किया गया है । ये मूर्तियाँ भरहुत की मूर्तियों से अधिक सजीव हैं, परन्तु ये स्वाभाविक नही हैं, इनका सयोजन (Composition) अलकृत एव प्रभावशाली है । यक्ष एव यक्षों की आकृतियाँ गहरे अभ्युचित्रों (Reliefs) मे बनी है जो भरहुत के समान हैं । यहाँ पर अलकृत दिल्हा (Panels) हैं, ये कम शुद्ध है परंतु अधिक चौरस एवं अपाटव है । यहाँ पर बहुत से अभ्युचित्र (Relief) बाद में दक्षिणी राजाओं द्वारा जोड़े गये हैं ।

साँची के स्तूप के उत्तरी द्वार पर तीन रत्नों को जो बौद्ध धर्म के संकेत है (बुद्धं, धम्म, एवं संघम) एव बीच मे टूटा हुआ "धर्म चक्र" तथा यक्षों को बनाया गया है । ऊपरी घरन में छ' सूँडों वाले हाथी की कहानी बनी हुई है, घरन के बीच में भगवान बुद्ध के ज्ञान प्राप्त करने की कथा बनी है, नीचे के घरन पर राजकुमार विश्वन्तरा की कहानी है (जिसने अपनी पत्नी एव बच्चे का जीवन समर्पण कर दिया था), एवं बीच के घरन के सिरे पर मोर बना हुआ है जो मौर्य राजाओं का चिह्न था । दिल्हों (Panels) पर फूलों का गुलदस्ता बना हुआ है जो उस समय की उत्पादिनी शक्ति एवं भगवान बुद्ध की प्राकृतता का सकेत देता है, इस पर देवी लक्ष्मी एवं स्तूप बना हुआ है जो भगवान बुद्ध की मृत्यु का सकेत है । इसे पहली शताब्दी ईसा पूर्व का बना माना गया है ।

यहाँ पर पाँच स्तम्भ बने हैं जो कि पाँच स्वर्गीय बुद्ध भगवानों को सकेत करते है जिसे 'ध्यानी बुद्ध' कहा गया है । यहाँ पर यक्ष की आकृतियाँ कोष्टकों (brackets) की आकृतियो के समान बनाई गई है, ये गोलाकार है, यह साँची की मूर्तियों का महत्त्वपूर्ण गुण है जो अन्यत्र नही देखा गया है ।

साँची की मूर्तियों में तीव्र-अग्रसक्षेपण (bold foreshortening) एवं आकृतियों के मुँह 3/4 गोलाई में बने हुए हैं । इनके झुंडो का भार समन्वित है यह यूनानी प्रभाव है । यहाँ की कला ने अशोक के समय की शिल्पकला से बहुत कुछ लिया है तथा विदेशी प्रभाव को भी इन्होंने अपने में इतना अपना लिया है

कि वह विदेशी नहीं रह गया है, इस कारण यह विषय, गुण एवं उत्पत्ति में भारतीय हैं ।

यहाँ पर एक स्थान पर वस्त्रहीन स्त्री की आकृति एक पेड के पास खड़ी हुई दिखाई गई है, जो कि पूर्णरूप से भारतीय है, यूनानी शिल्पकला का प्रिय विषय पेड के पास खडी हुई वस्त्रहीन स्त्री बनाना था परतु उसके हाथ में लबी डंडी लिये स्त्री भारतीय विषय है जैसा कि भरहुत में देखा गया है परंतु उसके साथ के नमूने विदेशी उत्पत्ति दिखाते हैं । मथुरा तथा साँची के चित्रों में लडके हाथ में चिकने पहिये लिये हुए दिखाये गये हैं जो कि यूनानी प्रभाव है । यूनानी शिल्प में मूर्तियों की माँस-पेशियों को बहुत हृष्ट पुष्ट बनाया जाता था और ऐसा लगता है कि इस समय उसका भी प्रभाव भारतीय शिल्प पर आया ।

सारनाथ से प्राप्त थाली में एक माला दिखाई गई है जो कि एकदम रोमन (Roman) मालूम होती है । गाधारकला में शुद्ध भारतीय पशु बनाये गये हैं जैसे हाँथी, साँप इत्यादि परंतु ब्राह्मण एवं बौद्धकला पर कोई भी यूनानी प्रभाव नही दिखता है । साँची की मूर्तियों में अनुग्रह तथा खुशी की भावना मेसिचियो (Masaccio) एवं फ्रा ऐनजिलिको (FRA-Angelico) के बनाये शिल्पों के समान है, ये दक्षिणी कला के अच्छे उदाहरण है ।

साँची की मूर्तिकला की विशेषताये

1 साँची की मूर्तियों मे अनुग्रह एवं प्रसन्नता की भावना को बहुत सुन्दर ढग से व्यक्त किया गया है ।

2 ये मूर्तियाँ भरहुत की मूर्तियो से अधिक सजीव है, परतु ये स्वाभाविक नही है । ये चिपटे डौल की हैं ।

3 यहाँ पर सयोजन (Composition) बहुत प्रभावशाली एव अलकृत है ।

4 यहाँ का अलकृत दिल्हा चौरस एव अपाटव होते हुए भी परिशुद्ध है ।

5 यहाँ पर भगवान बुद्ध की प्रतिमा का अभाव है परतु भगवान बुद्ध को सकेतो द्वारा व्यक्त किया गया है, यही भरहुत एव साँची की मूर्तियों की विशेषता है ।

6 यहाँ पर पत्थर की बनी इमारतें होते हुए भी ये लकडी की बनी होने का बोध कराती हैं ।

7. यक्ष एवं यक्षो की आकृतियाँ गहरे अभ्युचित्रों (bold relief) में बनी हुई है । बहुत से अभ्युचित्र (Reliefs) यहाँ पर बाद में दक्षिणी राजाओं द्वारा जोड़े गये हैं ।

8 यहाँ पर यक्षों की आकृतियाँ गोलाकार है जो कोष्टकों (brackets) की आकृतियों की तरह बनाई गई है ये साँची को मूर्तियो का विशेष गुण है।

9. यहाँ पर आकृतियों का मुँह 3/4 चश्म में बना है। ये झुंडों में बनी हैं तथा इनका भार समन्वित है। यह यूनानी प्रभाव है।

10 यहाँ पर आकृतियों की पेशियों को बहुत हृष्ट-पुष्ट दिखाया गया है यह भी यूनानी शिल्प का ही प्रभाव जान पडता है।

11 यहाँ की मूर्तियो मे तीव्र अग्रसक्षेपण (bold foreshortening) स्पष्ट दिखाई पडता है।

12 इन मूर्तियों का विषय जातक की कहानियाँ, बुद्ध भगवान की जन्म-कथा, शेर, साँप, हाथी, यक्ष एव यक्षिणी है।

13 भारतीय कला में साँची के स्तूप के चारो द्वारों को विशेष महत्त्व दिया गया है।

14 यहाँ की कला ने अशोक के युग की शिल्पकला से बहुत कुछ लिया है परन्तु इस प्रभाव को इसने अपने मे इतना मिला लिया है कि विदेशी नही रह गया है, इस कारण यह विषय गुण एव उत्पत्ति मे भारतीय हो गयी है।

(ब) शुगकालीन कला

इस कला का सबसे अच्छा उदाहरण भरहुत की मूर्तियाँ है जो भरहुत के स्तूप मे बनी हुई है।

भरहुत का स्तूप

1873 ई० मे जेनरल कनिंघम ने इस बडे से बौद्ध स्तूप का पता लगाया था। यह इलाहाबाद एव जबलपुर के बीच मे नागोद राज्य में स्थित है। इसके पूर्वी द्वार के शिलालेख से यह शु ग राजाओ द्वारा (185-173 ई० पू०) बनाया मालूम होता है, परतु दूसरे शिलालेखो के द्वारा यह मिश्रा राज्य के राजाओ एव रानियो के दान से बना प्रतीत होता है। स्तूप के चारो ओर पत्थर की बाढ़ है जो मूर्तियो से अलकृत है, इस स्थान को कला की दृष्टि से विशेष महत्त्व दिया गया है। साँची के स्तूप के बाद कला के क्षेत्र में इसका स्थान आता है।

भारतीय कला मे सर्वदा दृष्टिमूलकता (visualisation) को महत्त्व दिया गया है और यह सर्वदा सकेतो की भाषा रही है जो प्राचीनता एव रूढियो से बँधी हुई है। भरहुत की कला भी भारतीय कला के इन सिद्धान्तो से अलग नही है।

भरहुत के स्तूप के कटघरे, द्वार तथा खभे बहुत स्थूल बने हुए हैं। ये पत्थर के बने होते हुए भी लकडी के बनावट पर आधारित बनाये गये है। इसका कारण उस समय लकड़ी की बहुतायत थी, इसी से लकडी एवं मिट्टी का प्रयोग

विशेषकर उस समय की इमारतों में होता था। यहाँ पर आग में पकी हुई ईंटों का भी बहुत प्रयोग हुआ है, इसी कारण शुंग कला की इमारतों की पत्थरों की रचना भरहुत के स्तूप में भी पाई जाती है। यहाँ की मूर्तियाँ भारी एव अपाटव बनी हुई हैं। इनके विषय यक्ष, यक्षा, नागा, बौद्ध धर्म के दृश्य तथा जातकों की कहानियाँ है, जो चक्रों (Roundels) पर अलंकृत की गई हैं। आर्ध चक्र तथा उनको मिलाने वाले धरम फूल, पत्तियों द्वारा सुशोभित की गई है। यहाँ के शिलास्तंभों को अशोक के शिला स्तभो की खराब नकल कहा जा सकता है। यहाँ पर मूर्तियाँ चिपटें ढौल (Low Reliefs) मे बनी हुई है। कुछ मूर्तियों में थोडी-सी गति दिखती है परंतु अधिकतर मूर्तियाँ जड हैं। यहाँ की 40 मूर्तियाँ बौद्ध जातकों से संबंधित है, 6 में भगवान बुद्ध के जीवन से सबधित ऐतिहासिक घटनाओं के दृश्य हैं। इन दृश्यों में दो विशेष उल्लेखनीय है, पहला तथागत के दर्शन हेतु जाते हुए कोशलाधीश प्रसेनजित के रथ का दृश्य तथा दूसरा तथागत के दर्शन को हाथी पर जाते हुए अजातशत्रु का दृश्य। दोनो ही चित्र बहुत सजीव बने हुए हैं।

इन सभी मूर्तियों मे साँची की मूर्तियो की शैली से समानता मालूम पडती है। भगवान बुद्ध की मूर्ति का अभाव तथा मूर्तियों का चिपटा ढौल साँची की मूर्तियो के समान है परंतु दोनो में समानता होते हुए भी भरहुत की मूर्तियों की अपनी विशेषता है। यहाँ पर भगवान बुद्ध की मूर्तियो का अभाव इस कारण से है कि इस प्रकार का आदर्श उस समय नही पसन्द किया जाता था, परतु उसके स्थान पर भगवान को सकेतों द्वारा दिखाया है जैसे भगवान बुद्ध के कमल के समान पैर, धर्मचक्र, छाता, खडाऊँ, बोधि वृक्ष इत्यादि। एक स्थान पर बोधि-वृक्ष के नीचे खाली सिंहासन बना है यह मिट्टी का बना है, यहाँ पर लिखे शिलालेखों के द्वारा पता चलता है कि वहाँ पर बुद्ध भगवान के बैठने का सकेत है। बाद में इस खाली सिंहासन ने कला में सजीव आकृति का स्थान ले लिया। यहाँ एक स्थान पर सीढ़ी चित्रित की गई है उसकी ऊपरी सीढी पर दो पैर के चिह्न अंकित हैं जो भगवान बुद्ध का स्वर्ग को जाना सकेत करता है। यहाँ की मूर्तियो की आकृतियाँ साधारण प्रतिष्ठा वाली है। यहाँ के दृश्य भव्य होते हुए भी उत्सुक विचारों को दिखाते हैं। यहाँ पर फूल एव पत्ती को अल-करण के ढग से प्रयोग में लाया गया है। फरग्यूसन (Fergusson) ने कहा है कि भरहुत मे बने पशुओ की समानता दुनिया में उस ममय कही के भी बने पशु नही कर सके हैं। यहाँ पर पेडों एव वास्तुकला की बारीकियों को बहुत सुंदर ढंग से काटा गया है। उस समय मनुष्य की आकृतियों की सुंदरता का विचार भिन्न था। यहाँ पर बहुत सुंदर ढग से सुदरता एव अनुग्रह का मिश्रण

प्रकृति को दिखाने में किया गया है । यहाँ पर एक चित्र में कमल पर बैठी देवी माया के ऊपर उल्टे घड़ों से हाथियों द्वारा पानी डालता दिखाया गया है, इस चित्र को बाद में हिन्दू धर्म में लक्ष्मी के रूप में अपना लिया गया एवं इसका चित्रण जैन धर्म में भी हुआ है । इस प्रकार के चित्र तीसरी शताब्दी के बाद बौद्ध धर्म से समाप्त हो गये । यहाँ पर बौद्ध स्तूपों को देवताओं द्वारा पूजा करते हुए चित्रित किया गया है । यहाँ पर दृश्य की बारीकियों को छोड़ा नही गया है । यहाँ की मूर्तियों का विषय घर की स्त्रियाँ, सडक पर चलते हुए मनुष्य, नाच गाने, जगली पशु इत्यादि हैं । शहर के द्वार लकडी तथा ईंटों के बने हैं, द्वारों के ऊपर मेहराब बने हुए हैं । यहाँ पर बुर्जाकार बीथिकायें भी बनी हुई हैं, लकडी में कई मजिल वाले मकान भी हमें देखने को मिलते हैं । यहाँ की छतें गुम्बजदार हैं, मदिरो के ऊपर शिखर बने हुए हैं, खंभों के ऊपर देवताओं एव पूज्य लोगों की मूर्तियाँ बनाई गई है । यहाँ पर अकेली आकृति को भी अच्छी तरह से सोच कर बनाया गया है । यहाँ पर मनुष्य एव पशु दोनों ही को एक सतह पर बनाया गया है किसी एक को अलग से महत्त्व नही दिया गया है । जॉन मार्शल (John Marshall) के अनुसार भरहुत की शिल्प-कला की मूर्तियाँ सामने से बनाने के नियमों (Law of Frontality) से बँधी हुई हैं, इस प्रकार से यहाँ के काल्पनिक चित्र प्रकृति के सीधे निरीक्षण को नही दिखाते हैं ।

भरहुत की मूर्तियों की विशेषतायें

1 भरहुत की मूर्तियों मे लोक-कला का समावेश अधिक मात्रा मे दिखाई पडता है । भरहुत की लोक-कला प्राय शु ग कालीन सभी मूर्तियों में विद्यमान है क्योंकि उस समय देश में बौद्ध धर्म का प्रभाव सर्वत्र फैला हुआ था अत यह आवश्यक ही था कि बौद्ध धर्म की भावनाओ की अभिव्यक्ति लोक-कला द्वारा हो हो । यह लोक-कला विशेषकर यहाँ के चक्रों (Roundels) में दिखाई प-ती है ।

2. इनमें अशोक कालीन एव साँची के तोरणों की सी सफाई नही है । यहाँ पर मूर्तियाँ लकडी के आधार पर बनाई गई है जिससे इनमें सजीवता नही आ पाई है ।

3. यहाँ पर आकृतियाँ विशेष सोच कर नही बनाई गई हैं, पेड भी संकेत के रूप में बने है, ये काल्पनिक प्रतिमायें है । एक ही चक्र (Roundel) पर पूरी कहानी दिखाई गई है । इनका विषय जातक कथायें हैं । यहाँ पर मानसिक विवरण का प्रयत्न नही किया गया है परतु ये समानांतर संकेत हैं ।

4. यहाँ पर परस्परव्यापी मूर्तियों को महत्त्व नही दिया गया है एव उन्हें नहीं बनाया गया है ।

5. पूरी आकृतियाँ चूनेदार बलुआ पत्थर (Sand stone) की बनी हुई हैं।

6. यहाँ पर आकृतियाँ छोटी हैं तथा कई बार वे अनुपात से अलग हो गई हैं। यहाँ पर काल्पनिक अनुपात को मूर्तियों में महत्व दिया गया है एवं इनका सादा तथा सीधा वर्णन किया गया है।

7. यहाँ पर मूर्तियों के डौल चिपटे हैं इस कारण यहाँ की मूर्तियों में थोड़ा-सा आयतन दिखाई पड़ता है।

8 यहाँ पर आकृतियाँ हृष्ट पुष्ट हैं एवं ऊपर से बनाई मालूम होती हैं।

9. यहाँ पर आकृतियों की आँखें पूरी खुली हुई बनाई गयी हैं, यह बाहरी संसार की प्रशंसा को दिखाती हैं क्योंकि वह युग बौद्ध धर्म के प्रारंभ का युग था।

10 यहाँ पर मूर्तियाँ बहुत अलकृत बनी हैं परंतु मनुष्य आकृतियाँ सादी ढग की बनी है और वे कही कहो पर कुछ गहने पहने भी दिखाई गयी हैं।

11 यहाँ पर स्त्री आकृतियाँ कम कपड़े पहने बनाई गई हैं। कुछ का पैर मुडा हुआ है एवं हाथ झूल रहा है या कमर पर रखा हुआ है या हाथ पेड की डाल को पकड़े हुए हैं।

12 यहाँ पर रिक्त स्थान नमूनों द्वारा भरे गये है।

भाजा की गुफाये

भाजा की गुफाओं में भी शु ग काल की कला के अच्छे उदाहरण मिलते है। ये सबसे प्रथम गुफाओ के उदाहरण है। ये लोनावला के पास पहली शताब्दी ईसा पूर्व से पहली शताब्दी ईसा के बीच की बनी बताई जाती है। इसका मुख्य द्वार चैत्य महल में खुलता है जहाँ पर निकला हुआ गुबज बना है, यह लकडी की बनावट की शक्ल का है इसके उपर ऊंचा-सा शिखर है। यहाँ पर वराडे एव खिडकियाँ भी बनी है, यह दो मजिला है। मूर्तियाँ सबसे पुराने कमरे मे रखी है ये चौकीदारों की तलवार एव भाले लिये बनी है। यहाँ पर सूर्य भगवान अपने रथ को बादलो के ऊपर से ले जाते हुए दिखाये गये है, एव इद्र भगवान को हाथी पर बैठा दिखाया गया है। ये सब ही मूर्तियाँ अपाटव हैं एवं साँची से पहले की बनी हुई मालूम होती है।

यहाँ से अधिक साँची के स्तूप की वास्तुकला एव मूर्तिकला उन्नत है। यह शु ग कालीन कला का उदाहरण होते हुए भी उतना अच्छा उदाहरण नही है जितना साँची की मूर्तिकला है।

●

अध्याय 5

कुशान काल

पहली से तीसरी शताब्दी का युग

भारत में सिकंदर के आगमन के बाद कला पर यूनानी प्रभाव पड़ा जिसके कारण एक नई शैली का जन्म हुआ। इस नई शैली का प्रभाव सबसे अधिक गुप्त कला पर पड़ा। गुप्त कला एव सभ्यता भारत के आगे की हिंदू कलाओं एव सभ्यताओं की आदर्श मानी गई है। यूनानी सभ्यता के अच्छे उदाहरण गुप्त कालीन सिक्के, मथुरा तथा सारनाथ से प्राप्त कुछ यूनानी प्रभाव के स्तभ (Capitals) एवं उस समय के कुछ स्मारक इत्यादि हैं। पहली शताब्दी से यूनानी कला का प्रभाव भारतीय कला पर प्रारभ होता है, उस समय भारत मे कुशान राजाओ का राज्य था इसी कारण उनके समय की कला पर इसका प्रभाव स्पष्ट हमें दिखता है।

गाधार कला (कुशान कला)

कुशान राजाओं ने 65-78 ई० में भारत एव ईरान के राजाओं को हरा कर अपना राज्य उत्तरी एव मध्य भारत से चीन तक स्थापीत किया। कुशान राज्य सबसे पहली सभ्यता तथा राजनीति का राज्य माना गया है। इस वश के मुख्य सम्राट कनिष्क, हुविश्क और वासुदेव हुए है।

उस समय एशिया का भारत एव चीन मे और ईरान तथा रोम का समस्त व्यापार कुशान राज्यो के द्वारा ही होता था, इसी कारण यह व्यापारी राज्य शीघ्र ही संपन्न एव उन्नत हो गया। इसी कारण भारत में यूनानी सभ्यता का मिश्रण हुआ जो कि अलग नही किया जा सकता है। इन्ही सब कारणों से कुशान कला को गान्धार कला भी कहा जाने लगा। कुशान चित्रकार भी थे। इनके भित्ति चित्र (Fresco Painting) योराप के पॉम्पिआई भित्ति चित्रों से मिलते-जुलते है। बहुत कम चित्रकला गाधार शैली की मिलती है परतु गांधार चित्रकला केवल भित्ति चित्रो के रूप मे अधिक मिलती है। कुछ गाधार भित्ति चित्र तुर्किस्तान से भी प्राप्त हुए है। तरिम्बासी (Farimbasi) के मदिर के भित्ति चित्र गाधार एव स्थानीय ईरानी तथा भारतीय गुप्त कला का मिश्रण दिखाती है।

कुशान चित्रकला कपड़े, लकड़ी के दिल्हो पर तथा बौद्ध धर्म की पुस्तकों मे मिलती है जो कि कला के उन्नतिशील होने का द्योतक है। पहले बौद्ध धर्म में

मनुष्य आकृतियाँ बनाना मना था, केवल यहाँ पर पेड़ पत्तियाँ ही अधिक बनाई जाती थी, परंतु शीघ्र ही यह उनकी पुस्तकों से हट गया इसके उदाहरण अजंता के गुफा मंदिर (Cave temple) की नवीं तथा दसवी गुफाओं में दिखाई पड़ता है, एवं जातक की कहानियों तथा खड़े और बैठे हुये बुद्ध भगवान की मूर्तियों मे भी स्पष्ट दिखता है।

कुशानों के सिक्के

यह यूनानी सभ्यता के सबसे सुंदर उदाहरण हैं। इनके बनाने का ढंग एकदम रोमन (Roman) सिक्कों के समान था परंतु इन पर भारतीय, यूनानी एवं बैकट्रियन नमूने बनाये गये हैं जिसके कारण एक नवीन शैली का जन्म हुआ।

कुशानों के सिक्के मुख्यरूप से वर्णन के योग्य हैं क्योंकि ये पहले ऐसे सिक्के थे जिनके बनाने का ढग पूर्णरूप से ठीक था। इन सिक्को पर की भी आकृतियाँ यूनानी ढंग के वस्त्र पहनी हुई बनाई गई है, परंतु आकृतियों का भाव भारतीय है। सिक्को पर स्वयं कनिष्क का अध्युच्चित्र (Relief) भी बना हुआ मिला है। इन सिक्कों के उल्टी ओर राजाओं का सिर, धड या पूरा शरीर बनाया गया है। इन पर बैठी एव खडी हुई मुद्रायें भी बनी है जो कि नोकीली टोपियाँ पहने या हथियार लिये हुए हैं। सिक्को के सीधी ओर यूनानी, ईरानी, भारतीय, बौद्ध या हिंदू धर्म के देवताओं का चित्रण किया मिलता है, परंतु यह बहुत स्पष्ट नही है। केवल कुछ ही सिक्को पर बुद्ध भगवान का चित्र बना मिलता है। बौद्ध धर्म का प्रभाव सबसे अधिक हमे उस समय के पुरातत्व स्मारको में देखने को मिलता है। अशोक के समय में यह धर्म अफगानिस्तान मे गया और जल्दी ही यूनानी तथा ईरानी लोगो ने इस धर्म पर अपना एक नया प्रभाव दिखाया। इन्होने अपने धर्म के सिद्धातो को फैलाया जिससे पता चलता है कि भगवान बुद्ध स्वय ही गाधार एव काश्मीर देशो में गये होंगे। इस धर्म मे उत्कण्ठा एव निर्वाण के द्वारा मोक्ष पाने के स्थान पर दया के द्वारा क्रियात्मक करुणा प्रभावित की गई है और यह बाद मे ध" का मूल सिद्धात बन गया। कही पर भी ईश्वरीय मुख नही दिखाया गया है। बोधिसत्व तथा दूसरे देवताओ को ऐतिहासिक बुद्ध से मिलाया गया है, ये ईरानी गुणो का प्रभाव दिखाते हैं जैसे खडे एवं बैठे हुए बुद्ध भगवान को कमल के खुले फूल पर दिखाया है जो कि यूनान एव मिश्र का चिह्न है। बुद्ध भगवान के कधों से आग की लपटें निकलती हुई दिखाई पडती हैं एव उनका सिर प्रकाश से घिरा हुआ है। यहाँ पर सबसे महत्वपूर्ण ईश्वर मैत्रबुद्ध तथा बोधिसत्व को ही दिखाया गया है।

कुशान युग के स्तूप

अशोक के समय से ही स्तूपो का भारत में प्रचार हो गया था परंतु कुशान राजाओं ने उसे और फैलाया। ये शक्तिशाली थे और इसी कारण उन्होने महान

इमारतों का निर्माण किया। कुशान कलाकार कला के क्षेत्र में यूनानियों से कम प्रभावित थे, परंतु अपनी कला में भारत के आध्यात्मिक विचारधारा को व्यक्त करते थे। इनके स्तूपों का चौकोर बरांडा यूनानी प्रभाव को दिखाता है। बाद के स्तूप तथा गांधार के सामान्य स्तूपों का उदाहरण रावलपिंडी से 20 मील दूर काबुल के पास हाडा का स्तूप है। यह पाँच मजिला पत्थर का स्तूप है। इसके चारों ओर बराडा छोटा और ऊँचा बना हुआ है, इस प्रकार के वहाँ पर दो बरांडे हैं। गांधार शैली के अत में गुंबज गोलार्ध कम हो कर केवल गोल बुर्ज के रूप में रह गया इसका उदाहरण हाडा के स्तूप के बडे चौकोर बरांडे पर का गोल बुर्ज है; इसी के बाद मेरु मदिर (Pagoda) की उत्पत्ति हुई। कभी-कभी इन स्तूपो में बडे स्तभ (Columns) भी बने मिलते हैं।

गांधार मूर्तिकला (Sculpture)

इस समय देश समृद्ध था इसी कारण इस समय कला की यथेष्ट रूप से उन्नति हुई। इस काल में गांधार तथा उसके आस-पास के प्रदेशों में एक नवीन मूर्ति शैली का जन्म हुआ, जिसका विषय तो सर्वदा बौद्ध धर्म था परतु शैली यूनानी जान पडती थी। इन मूर्तियों का समय 50 ई० से 300 ई० तक का जान पडता है। इनमें बुद्ध भगवान की मूर्तियो की अधिकता है जो इनसे पूर्व की मूर्तियों में नही थी।

ये बौद्ध मूर्तियाँ रोमन भित्ति स्तभो तथा भारतीय स्तूप के स्तंभों (Column) के बीच के युग की जान पडती है। इस समय की बुद्ध भगवान की

चित्र – 13

मूर्तियाँ पूरी (चित्र 13) एव आधी मनुष्य के नाप की बनी मिली है, इनके अभ्युचित्रों (Relief) का उभार 1″ से 5″ तक का मिलता है। इनका विषय जातक की कहानियाँ है परतु अधिकाश में बुद्ध भगवान के जीवन के दृश्य अंकित हैं। इन अभ्युचित्रों की शैली को रोमन या यूनानी शैली कहना अधिक ठीक होगा। यूनानी प्रभाव के अतर्गत भारत में कला निरुपणता को व्यक्त करती है। कुशानों ने ही भारतीय कला मे आध्यात्मिकता एवं साकेतिकता (Symbolism) को व्यक्त किया है। इन्होने भारतीय कला को पश्चिमी प्रभाव से मुक्त किया, यहाँ तक की 300 ई० के अत में गाधार प्रभाव भारतीय कला से पूर्णरूप से समाप्त हो गया। यूनानी प्रभाव हमको इस समय की कई मूर्तियों में दिखता है, जैसे इंद्र को जूइस (zeus) की मूर्ति के समान बनाया गया

है, और बुद्ध भगवान को अपोलो (Apollo) की प्रतिमा के समान बनाया गया है। यहाँ पर प्रतिमायें असली जीवन से ली गई है, अधिकतर वे भारतीय पगड़ी पहनाये बनाई गई है परन्तु इनके कपडे यूनानी है, स्त्रियों के बाल बाँधने का ढंग सिरियन (Syrian) है, पूरा दृश्य यूनानी कलाकारों के बनाये दृश्य की तरह है। इस समय के दृश्य चित्र (landscape) में यूनानी प्रभाव बहुत स्पष्ट है, यहाँ पर भारतीय बारीकियाँ नही बनाई गई हैं और न ही यहाँ पर भारतीय पशु जैसे शेर एव बदरों का चित्रण ही है जो भारतीय चित्रों का गुण है।

पहले लोगों का विचार था कि यूनानी शैली की ही मूर्तिकला सबसे पुरानी है उसके बाद इस शैली में उन्नति हुई परतु बाद में जॉन मार्शल (John Marshall) के विचार से अध्युचित्र कुशान तथा केदार कुशान के युग की गचकारी (Stucco) चित्रों की आकृतियां ही सबसे पुरानी मानी गई। ऐसा मालूम होता है कि इन मूर्तियों का व्यापार हमेशा बाहरी देशों से होता होगा जिससे रोमन राज्य की नई शैली का जन्म हुआ। यही कारण है कि गांधार मूर्तिकला में विभिन्नता बहुत मात्रा में दिखाई पडती है, एक ओर ये बहुत अच्छे कलाकारों द्वारा बनाई गई हैं तथा दूसरी ओर नौसिखियें हाथों द्वारा बनाई गई जान पडती हैं परतु नौसिखियें हाथो द्वारा बनी मूर्तियां अधिकाश में मिलती हैं क्योंकि उस समय अच्छे कलाकारो की कमी थी इस कारण उनके द्वारा सारी मांगें पूरी नही हो पाती थी। उस समय की स्मारको में साधारण अलंकरण होता था जिसमें छोटे अध्युचित्र कोई महत्त्व नही रखते थे। बहुत बारीक काम मूर्तियो में नही हो सकता था, इस कारण अध्युचित्रो में छोटी आकृतियों का समावेश हुआ एव उनका प्रतिमांकन (Modelling) निकृष्ट हुआ। इस काल की अच्छी मूर्तियो के उदाहरणों मे भी हम पश्चिमी कला के यथार्थता के अभिगमों से बौद्ध कला की दैवी भावनाओं के तनाव का अनुभव करते है। इस कला के मुख्य उदाहरण मथुरा, सारनाथ तथा दक्षिण भारत में अमरावती में पाये जाते हैं। भारतीयता की सुदर झलक मथुरा से प्राप्त तोते को लिए हुए यक्षिणी की मूर्ति (चित्र 12) एव भगवान बुद्ध की मूर्ति (चित्र 13) में दिखाई पडती है। इन मूर्तियों में भारतीय कला के गुण जैसे प्राण तथा हृष्ट-पुष्ट शरीर की आकृतियां हमें स्पष्ट देखने को मिलती है। (चित्र 11 एवं 14) कुशान शैली ही बाद में दक्षिणी भारत की परंपरागत शैली बन गई। भगवान बुद्ध की मूर्तियों की यूनानी उत्पत्ति हमें निम्नलिखित कारणों से प्रतीत होती है—

भारत में यूनानी कला अपना ली गई थी और यह कई शताब्दियों तक भारतीय कला में रही, हालांकि भारतीय कला के लिये यह कोई नई चीज न थी, पश्चिमी नमूने पहले से ही भारतीय बौद्ध कला में थे एवं अशोक कालीन

कला में भी ये अलंकारिक नमूनों की तरह थे। सबसे प्रथम बुद्ध भगवान की मूर्ति पहली शताब्दी में बनी मानी गई है। इस कारण उस समय यहाँ पर

11 चित्र - 12 चित्र - 14

कला मे यूनानी प्रभाव था इसी से हम इस निष्कर्श पर पहुँचते है कि बुद्ध भगवान की मूर्ति की यूनानी उत्पत्ति होगी।

कोई भी बुद्ध भगवान की मूर्ति गाधार मूर्तिकला से पहले की बनी नही मिलती है, इस कारण यह हो सकता है कि बुद्ध भगवान की पहली मूर्ति गाधारों द्वारा ही बनाई गई जो बाद मे भारतीय कला में अपना ली गई। यह मान लिया गया है कि गाधार के भगवान बुद्ध की मूर्ति पश्चिमी ढग की थी। क्योंकि बुद्ध भगवान की मूर्ति को अपोलो (Apollo) के समान बनाया गया है। मूर्तियो के कपड़े यूनानी ढग के हैं जैसे कपडो की सलवटें इत्यादि। इन्ही सब चीजों को देखते हुए हम यह स्पष्ट रूप से कह सकते है कि गाधार बुद्ध की उत्पत्ति यूनानी है।

भगवान बुद्ध की मूर्ति की भारतीय उत्पत्ति के कारण

हम भगवान बुद्ध की मूर्ति को भारतीय उत्पत्ति भी कह सकते हैं क्यों की मथुरा के बोधिसत्व एव बुद्ध की मूर्तियाँ पहली शताब्दी की बनी मिली है परंतु इसकी शैली गाधार से बहुत भिन्न है और ये साधारण रूप से भारतीय कला में उन्नत भी है। साथ ही बुद्ध भगवान को हृष्ट-पुष्ट शरीर का भी

बनाया गया है एवं ये मूर्तियाँ एकदम सजीव जान पड़ती हैं जो कि भारतीय कला के गुण है। गांधार कला में कमल इत्यादि का प्रयोग मिलता है जो सर्वदा भारतीय है। एक स्थान पर भगवान बुद्ध को पेड़ के नीचे पद्मासन लगाये दिखाया गया है। ऐसा मालूम होता है कि भगवान बुद्ध ज्ञान या भूमि स्पर्श की मुद्रा में बैठे हैं, जो केवल एक भारतीय ही सोच सकता है इस कारण ही इसकी उत्पत्ति भारतीय मानी गई है।

ऊपर हम स्पष्ट रूप से देख चुके हैं कि भगवान बुद्ध की मूर्ति पर गाधार या यूनानी प्रभाव तथा भारतीय प्रभाव दोनो ही बराबर है इससे यह कहना कि उसकी यूनानी उत्पत्ति ही केवल थी या केवल भारतीय ही उत्पत्ति थी ठीक नही है। इस पर अभी खोज की गुंजाइश है। इससे अभी किसी निष्कर्ष को निकालना मेरे विचार से ठीक नही है।

कुशान काल की मूर्तियाँ लका से भी प्राप्त हुई है।

मथुरा शैली

मथुरा शैली के अतर्गत कला की बहुत उन्नति हुई। मथुरा शहर उत्तरी पश्चिमी देशो का सबध दक्षिणी पश्चिमी देशो से स्थापित करता था। यह सौरसेना जाति की राजधानी थी, एव बाद में नागाओं की राजधानी बनी तथा अत में यह मौर्य एव शुग राजाओ की राजधानी बनाई गई, साथ ही यह हिंदू, बौद्ध, तथा जैन धर्म के अनुयाइयो का तीर्थ स्थान भी हुआ, कला एवं विद्या का केंद्र भी हुआ। कई शताब्दियो तक यूनानियो का भी प्रभाव इस राजधानी पर था, इस प्रकार से सिकदर के आगमन के कारण भारतीय सभ्यता पर विदेशी प्रभाव पडा और मथुरा में भारतीय प्रतिष्ठित कला का जन्म हुआ। इन्ही सब कारणो से मथुरा कई बार नष्ट किया गया तथा बार-बार बसाया भी गया। और कला में मथुरा की शैली को महत्त्व भी दिया गया।

शुग काल में भरहुत तथा साँची दोनो ही की उन्नत शैलियाँ प्रचलित थी परतु कुशान काल में दोनो शैलियाँ आकर एक हो गई, फलत. इस काल में इन दोनों के मिश्रण से शैली का सम्मिलित रूप सामने आया, उदाहरण के लिए मथुरा की मूर्तियों के डौल चिपटे नही है परंतु भरहुत के अलकरण उनमें ज्यो के त्यों पाये जाते हैं। इस युग की अनेक मूर्तियाँ मथुरा से पाई गई हैं, ये सब ही सफेद चित्तीवाले रवादार पत्थर की बनी हुई हैं। इसमे भगवान बुद्ध की खड़ी एव पद्मासन लगाये प्रतिमाये भी मिली हैं। इस पर गांधार शैली का तनिक भी प्रभाव नही है और न ही गाधार शैली की वास्तविकता ही यहाँ दिखाई पडती है। इस युग की मथुरा से प्राप्त भगवान बुद्ध की खडी प्रतिमायें शैशुनाग एवं जैन मूर्तियों की शैली से स्पष्ट रूप से प्रभावित जान पडती हैं। यदि मथुरा

के शिल्पी गांधार शैली के ऋणी होते तो ऊपर लिखित परंपरा कदापि नहीं पाई जाती। मथुरा से प्राप्त कुशान राजाओं की मूर्तियों का कोई भी संबंध गांधार शैली से नहीं दिखाई पड़ता है। मथुरा से प्राप्त पहली शताब्दी ईसा पूर्व के अभ्युचित्र पुराने जैन स्तूपों से अपना संबंध दिखाते हैं, ये कला के क्षेत्र के बहुत निकृष्ट उदाहरण माने गये हैं।

मथुरा से जैन, बौद्ध तथा हिन्दू धर्म के अच्छे उदाहरण मिले हैं, जब कि ससेरिया (Sassarian) की विजय के कारण रोम के लोगों से भारत का संबंध टूट गया और इस प्रकार प्रारंभिक कुशान काल में एक नये शिष्टाचार तथा सभ्यता का प्रारंभ हुआ। तीसरी शताब्दी से मूर्तिकला की उन्नति रुक गई और उसमें ईरानी एवं भारतीय कला का प्रभाव अनुभव होने लगा। प्रारंभ में मथुरा की मूर्तिकला पर गांधार प्रभाव कहीं-कहीं पर दिखाई पड़ता है, परंतु बाद में मथुरा की शैली एकदम भिन्न हो गई तथा चौथी या पाँचवीं शताब्दी में गुप्तकाल के प्रारंभ के युग में समन्वय अनुपात (harmonious proportion), आदर्श प्रतिमांकन तथा आकृतियों के प्रशांत भाव ने बाद की गांधार कला पर अपना प्रभाव डाला परंतु अंत में गांधार शैली स्वतंत्र हो गई और काबुल तथा काश्मीर की गचकारी (stucco) मूर्तियाँ बरोक (Baroque) प्रभाव को अपने में दिखाने लगी, और कुछ में गोथिक (Gothic) कला का प्रभाव दिखने लगा जो कि बहुत शताब्दियों बाद तक रहा। इस समय छोटी मूर्तियों तथा अभ्यु-चित्रों (Reliefs) की सुन्दरता समाप्त हो गई एवं गांधार मूर्तिकला मध्य एशिया में फैलने लगी। मूर्तियों के कपड़ों की सलवटें तथा गचकारी (stucco) विशाल शरीर के प्रभाव को बाद में बौद्ध धर्म के चीनी कलाकारों ने अपना लिया। रोमन ढाँचा एवं भारतीय बारीकियाँ मथुरा की मूर्तियों में स्पष्ट दिखती हैं। यहाँ के कुछ अभ्युचित्रों में रोमन आदिरूप (Prototype) नमूने भी मिले हैं विशेषकर बौद्ध धर्म के तोरणों में। ईसापुर से प्राप्त शादीशुदा जोड़ों के सिर भी रोमन (Roman) समाधि पर लगे पत्थरों की याद दिलाते हैं परंतु इन्हें बारीकी से देखने पर कुछ भी विदेशी प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता है। रोमन आदिरूप नकल नहीं किये गये हैं बल्कि उनको भारतीय शैली में एकदम अपना लिया गया है। भारत में विदेशी राज्य होने पर भी मथुरा की मूर्तियों पर यूनानी कला का प्रभाव नहीं दिखता है, ऐसा जान पड़ता है कि इसे भारतीय विचारधारा में महसूस करके बनाया गया है, इस कारण मथुरा की मूर्तियाँ भारतीय शैली की हैं। कनिष्क के राज्यकाल में मथुरा की मूर्तिकला में अधिक परिवर्तन हुए, पहले की भारतीय शिल्पकला जिसके संयोजन (Composition) बेढंगे तथा सजीव होते थे वे फिर से दिखने लगे और आकृतियाँ पतली, सुंदर

एवं अच्छी तरह से बनाई जाने लगी। यक्षों की आकृतियां तथा जातियों के दृश्य भी फिर से बनने लगे एवं वे सुंदर पॉलिश (Polish) से युक्त होने लगी। भूतेश्वर के खंभे भी अमरावती के समान ही उन्नत दिखते हैं और यह भी मथुरा शैली के ही बने हुए हैं। इस समय आग में पकी मिट्टी (Terracotta) की भी मूर्तियां बनी (चित्र 16)।
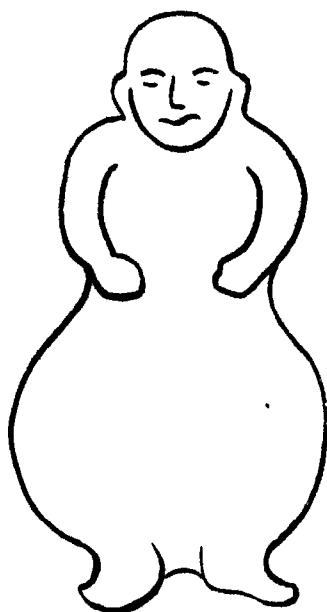
चित्र - १६

मथुरा की वास्तुकला (Architecture)

यहाँ की इमारतें विशेषकर शुंग एवं विदेशी शैलियों का प्रभाव दिखाती हैं जैसे यूनानी नमूनों के साथ उदाहरण के लिए रोमन भित्ति स्तंभ, कुछ खंभों की बैठकी या भीत पर मिलता है। दरवाजों का ढाँचा रोमन है परंतु उनकी बारीकियाँ उन्हें भारतीय बताती हैं।

अमरावती

आन्ध्रप्रदेश के गुंटूर जिले में 200 ई० पूर्व अमरावती का विशाल बौद्ध स्तूप बनवाया गया जिसकी कला भक्तिभावना से ओत-प्रोत है। कहीं-कहीं पर हास्योत्पादक दृश्य भी यहाँ से मिले हैं। यहाँ से छः फीट से अधिक ऊँची बुद्ध

की मूर्तियाँ भी मिली हैं जो भगवान बुद्ध की गोलाकार मूर्ति में प्रत्यक्ष विद्यमान हैं। कुछ यक्ष की मूर्तियाँ तथा कुछ योग के आसन की मूर्तियाँ गांध,र बुद्ध का भास कराती हैं। कपड़ों की सलावटें तथा सिर के घुंघराले छोटे बालों में गांधार प्रभाव दिखता है।

चित्र-१५

मथुरा शैली की मूर्तियों से अमरावती की मूर्तियों में भिन्नता है यहाँ पर आकृतियाँ बड़ी बनाई गई हैं तथा उनके दृश्य सीधे हैं अमरावती की मूर्तियों के संयोजनों में प्राकृतिकता की स्वतंत्रता हमें देखने को नही मिलती है । एक ओर जहाँ उत्तरी भारत में गाधार शैली की प्रधानता थी वही दूसरी ओर दक्षिण में एक-आध ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जिनमें जान पड़ता है कि शिल्पियो में प्रस्तर शिल्प की काफी उन्नति थी ।

अमरावती से बहुत से पत्थरो पर खुदाई किये हुये अध्युचित्र भी प्राप्त हुए है, ये मथुरा शैली एव कारले शैली के समय के बताये जाते हैं, यहाँ पर सब आकृतियों का अनुपात सही है । इन आकृतियो में आदर्श प्रतिमाकन एवं काल्पनिक अनुपात दिखाया गया है उदाहरण के लिए गोलाकार बुद्ध भगवान् की मूर्ति है यह नीलागरी हाथी को लिये हुये बनाई गई है । यहाँ पर कथाओं की अलग-अलग घटनायें ली गई है जो एक-दूसरे पर अध्यारोपित है, जैसे अमरावती के स्तूप मे बाई ओर एक पशु एक मनुष्य आकृति को अपने पैरो के नीचे दबाये हुये है तथा दूसरी ओर मनुष्य अपनी रक्षा हेतु छिपे हुए है । एक स्त्री एक पुरुष द्वारा संभाली दिखाई गई है और दाहिनी ओर भगवान बुद्ध उस पशु की ओर करुणा की भावना से देखते हुए बनाये गये हैं, और पशु भगवान बुद्ध के कदमो पर गिरा हुआ है । पूरा ही दृश्य भावना से भरा हुआ है । यहाँ पर पशु एव वास्तुकलात्मक नमूने सब मनुष्य के नाप में बनाये गये हे । (चित्र सख्या 15 (क) एव (ख))

अमरावती के इसा प्रकार के दूसरे महत्त्वपूर्ण उदाहरणो में बुद्ध भगबान को भिक्षा का पात्र लिए दिखाया गया है । इस चित्र में हृष एवं क्रोध की भावना का साथ ही भास होता है, कई कतारो मे उनके शिष्य उन्हे घेरे दिखाये गये हैं, पात्र की पवित्रता केवल उसके अनुयायी ही जान सकते है । सारी भावना पात्र के चारो ओर एकत्रित है । यहाँ पर आकृतियो की छाया बहुत कम काटी गयी है । एक चित्र में भगवान बुद्ध की पादुका को अलकारित बनाया गया है । (चित्र 17) ।

गुटूर जिले में नागार्जुन कोडा नामक स्थान पर एक स्तूप के कुछ अवशेष मिले है । यहाँ की मूर्तिकला अमरावती की मूर्ति के समान उत्कृष्ट नही कही जा सकती ।

मथुरा के उदाहरण सारनाथ से भी प्राप्त हुए है । ये मूर्तियाँ बहुत बड़ी हैं । इसके अच्छे उदाहरण सरावस्ती से भी प्राप्त हुए हैं ।

मथुरा को महत्त्वपूर्ण मूर्तियाँ

1. पानी पीते हुए मनुष्य मूर्ति ।
2 पानी पीते हुए नागा मनुष्य की मूर्ति ।

3 नागा लोगों की मूर्तियाँ ।

4 बहुत से स्तूपों के तोरण जिन पर जैन एव बौद्ध धर्म की मूर्तियाँ बनी हुई हैं ।
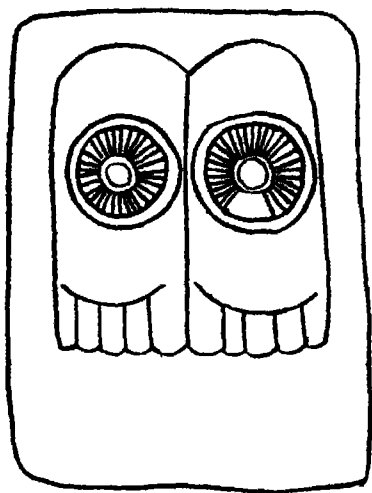
चित्र - १७

ऐसा भास होता है कि नागा धर्म मथुरा में खूब फैला हुआ था । बलराम की मूर्ति नागा मूर्तियो से उत्पन्न लगती है । मथुरा में जैन स्तूप मिले हैं जिसके कटघरों पर वस्त्रहीन यक्षो की पेडों के साथ मूर्तियाँ बनी है यह भरहुत काल के बाद की भारतीय कला के विशेष नमूनो की हैं ।

भारतीय शिल्पशास्त्र का जन्म भी कुशान काल के अत या गुप्तकाल के प्रारम्भ में माना जाता है । साँची का बुद्ध भगवान का धड कुशान एव प्रारंभिक गुप्तकला का अच्छा उदाहरण है । यह लंदन के अलबर्ट सग्रहालय (Albert Museum) मे है । विजयवाडा से भगवान बुद्ध की धातु की कई मूर्तियाँ मिली हैं जो बर्मा मे प्राप्त मूर्तियों मे मिलती-जुलती है ।

मथुरा की शिल्प कला मे ही अत में गुप्त राज्य की प्रतिष्ठित कला का जन्म हुआ है । यह कला गुप्त राज्य के युग में अपनी चरम सीमा पर पहुँची । भारतीय राज्य की सम्यता का पुनर्जागरण उसकी ध्वजा में दिखाया गया है जिसमें हिन्दू धर्म को महानता दी गयी है, क्योकि यह हिन्दुओं द्वारा सराहा जाता था तथा बाद मे यह गुप्त राज्य में बदल गया ।

●

अध्याय 6

गुप्त काल

(320–647 ई०)

गुप्त काल की स्थापना 320 ई० में पाटलीपुत्र में कुशान राज्य के समाप्त होने पर हुई। इसमें भारतीय कला को एक नया मोड मिला। 79 ई० के बाद कुशानों से अपनी रक्षा हेतु यादवों के नाग क्षत्रिय नर्मदा तथा दक्षिण भारत के जगलो में जा कर बस गये, ये तीसरी शताब्दी में शक्तिशाली हुए और उसी समय साकेत प्रयाग में एक नई महाशक्ति का उदय हुआ और दूसरी शताब्दी के बीतते ही भारत में स्वर्ण युग का प्रारभ हुआ।

275 ई० में भारत में गुप्त राज्य की स्थापना हुई और सम्राट चद्रगुप्त (319–340 ई०) का विवाह लिच्छवि राज्य की राजकुमारी से हुआ। यह सबंध गुप्तवश के उत्कर्ष का एक मुख्य कारण हुआ। चद्रगुप्त प्रथम 320 ई० में पूर्ण भारत का राजा हुआ, और यह राज्य भारत में हिंदू सभ्यता के पुनरुत्थान का केंद्र हुआ, जिन पर उस समय विदेशियो का प्रभाव था। सम्राट् चद्रगुप्त के पुत्र समुद्रगुप्त ने 340–380 ई० तक राज्य किया। समुद्रगुप्त जैसा बडा विजेता था वैसा ही सुशासक एवं कला और सस्कृति का पोषक भी था। वह स्वय ही कविता भी करता था। गुप्त राजा कला के अच्छे पारखी भी थे। इसके बाद गुप्तकाल की उन्नति दिन पर दिन होती ही गई। फाहियान (Fa-hien) के कथनानुसार यह समृद्ध गुप्त राज्य चद्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य द्वारा चलाया गया। यह समुद्रगुप्त का पुत्र था। इसके तथा इसके बाद के दो राजाओ के काल मे 375-490 ई० तक भारतीय साहित्य, विज्ञान एव कला में जितनी उन्नति हुई उतनी किसी और काल में नही हुई। विद्वानों ने चित्रकला के इस युग को 'गुप्त काल' (बौद्ध शैली) कहा तथा इसे अजंता की गुफाओं में वर्णित किया। चद्रगुप्त द्वितीय अपने पिता से भी अधिक समृद्ध, सुसंस्कृत तथा वैभवशाली था। कालिदास भी गुप्त राज्य का कवि था, इसने बहुत ही सुंदर कविताओं की रचना की है। चद्रगुप्त द्वितीय के युग में ही भारत मे 'नौ रत्नों' की स्थापना हुई एव इस युग में सबसे अधिक लोगों में बौद्धिक प्रकाश दिखाई देता है, यहीं से गुप्त शैली का प्रारंभ होता है। विक्रमादित्य के ही राज्य काल में आध्यात्मिकता (Spirituatism) तथा बौद्धिकता (Intellectualism) की

सम्मिलित उन्नति हुई। इन्ही सब कारणों से गुप्तकाल को भारत का स्वर्ण युग कहा गया। इस समय साहित्य, चित्रकला तथा विज्ञान में कोमल एवं सचित्र कला ने बहुत अधिक उन्नति की। इस युग की चित्रकला हमें बाघ एवं अजंता की गुफाओं में देखने को मिलती है जो चालुक्य राजाओं द्वारा बनाई गई थी।

सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय के पुत्र कुमारगुप्त ने 415-455 ई० तक राज्य किया। इस समय भी भारत में शाति, समृद्धि तथा सस्कृति विद्यमान थी। कुमारगुप्त ने नालदा विश्वविद्यालय की स्थापना की जो बाद में संस्कृति एव विद्या का केंद्र हुआ। इस समय हूँणो के आक्रमणो का भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमाओ पर डर छाया हुआ था, इस कारण इस समय राजा राज्य की रक्षा मे ही व्यस्त रहा। राजा कुमार गुप्त के बाद इस राज्य का नष्ट होना प्रारंभ हो गया तथा छठी शताब्दी मे यह राज्य छोटी-छोटी रियासतो मे बँट गया, साथ ही इसमे कला भी समाप्त हो गई। परतु कुमारगुप्त के पुत्र स्कदगुप्त ने हूणों को अपने देश से एकदम निकाल दिया। इस कारण गुप्तकाल की कला एव सभ्यता ने हर्षवर्धन के समय में फिर मे उन्नति की।

इस समय भारत के व्यापारिक सबध रोम तथा बाकट्रिया (Bactria) स टूट गये, साथ ही एशिया मे भारतीय प्रभाव फैलने लगा और इसने पूरे एशिया को एक कर दिया। इस समय भारत में वैष्णव, शैव, शाक्त एव महायान बौद्ध-धर्म सभी की बराबर उन्नति हुई और उनके अलग-अलग मन्दिर बने। हिंदू धर्म को इस समय फिर से सबसे अधिक महत्त्व दिया जाने लगा परतु उसने दूसरे धर्मों को नष्ट नही किया। इसी समय से भारत की कला में नाचने एव गाने के प्रतिमा विज्ञान (Iconography) का प्रारभ हुआ। गुप्तकाल की कला मे पुरानी सब शैलियाँ मिल गयी और पूरे भारत में इसका प्रचार हुआ। गुप्त-काल की भारतीय कला में कोई प्राचीन गुण या प्राकृतिकता नही मिलती है। यह उन्नत गुणो को दिखाती है। यह अपने में समृद्ध थी तथा इसमें कला के नियमो को ठीक प्रकार से प्रयोग में लाया गया था। इसमे सारे विदेशी प्रभाव मिल कर भारतीय हो गये थे। इस समय धर्म के सिद्धातो एवं भावो को व्यक्त करने की भावना मे कोई अतर नही रह गया था। यहा पर आत्मा का ऊँचा विचार मुख्य दिखता है। इस समय प्रचलित भाषा विश्वास एवं दार्शनिकता पर आधारित हो गई थी जो सूक्ष्मता (Abstract) इंद्रिय जनितता तथा भावावेश से युक्त थी। प्रारंभिक गुप्तकाल मे बौद्धधर्म पूर्ण रूप से साधारण जीवन से मिल गया था और यह जनता का धर्म बन गया था। केवल इस समय हम भारत के इतिहास में कला के अनुष्ठान को व्यक्तिगत निष्पत्ति के रूप में देखते हैं साथ ही इसमें हमें व्यावसायिकता तथा पौरोहित संयोजन स्पष्ट दिखाई पड़ता

है। प्रारंभिक भारतीय कला युक्ति से अधिक प्रकृति को दिखाती थी, यह स्वाभाविकता एवं सरलता के गुणों से भरी हुई थी। परंतु गुप्त काल की कला एक विकसित परंपरा तथा उत्तम माध्यमों की कला थी, जैसे संस्कृत भाषा का अपना व्याकरण एवं शब्दकोश था। गुप्तकला में ही सबसे प्रथम देव प्रतिमाओं को मनुष्य आकृतियों में सोचा गया। इसी काल में शास्त्रों का निर्माण हुआ जैसे शिल्प शास्त्र, चित्रशास्त्र (जिसमें चित्र के छः अंगों का विचार एक अच्छे चित्र के लिये माना गया।) तथा वास्तु कला।

गुप्त राजाओं एवं उस समय के समाज का कला प्रेम एवं सुरुचि उनकी हर एक कृति में दिखती है जैसे उनके सोने के सिक्के, मूर्तियाँ, उनकी जीवन की घटनायें तथा उनके आराध्य देवताओं का बडा सजीव एव कलापूर्ण चित्रण किया गया है। अजन्ता का सर्वोत्कृष चित्रण इसी काल में हुआ, यद्यपि अजन्ता वाकाटक-साम्राज्य मे था। गुप्त मूर्तिकला वाकाटक मूर्तिकला की ही परंपरा में है, किंतु गुप्त राजा इतने सुसंस्कृत एवं उनकी कला में रुचि होने के कारण उस काल की पूर्ण कला-कृतियों पर गुप्त प्रभाव मानना पडेगा। अत' अजन्ता के चित्रों को गुप्त शैली का ही कहना अधिक उचित होगा। गुप्तकाल के गुफा मंदिरों के चित्र एव वास्तुकला बहुत महत्वपूर्ण है जैसे अजन्ता एव बाघ के चित्र इत्यादि।

गुप्तकाल की कला को प्राचीन एव मध्यकाल की कला के परिवर्तन का युग माना गया है। गुप्त काल की कला को हम चार भागो में बाट सकते हैं।

1. गुप्तकाल की वास्तुकला—उदाहरण उदय गिरि के मंदिर, शिव के गुफा मंदिर अजन्ता, बाघ, एलोरा इत्यादि के गुफा मंदिर।

2. गुप्तकाल की शिल्प कला—उदाहरण स्वर्ण सिक्के, सारनाथ से प्राप्त बुद्ध भगवान की मूर्ति।

3 गुप्त काल की कविता एव साहित्य।

4 गुप्त काल की चित्रकला—उदाहरण अजन्ता एव बाघ के भित्ति चित्र।

1 गुप्त काल की वास्तुकला—गुप्त काल की वास्तुकला गान्धार तथा हिन्दू मंदिरो की वास्तुकलाओ का मिश्रण है। गुप्त काल मे अशोक के शिला-स्तम्भों के बनाने का प्रचार फिर से प्रारभ हो गया था, इसका उदाहरण उदय-गिरि के मंदिर में घंटी नुमा शिला स्तम्भ (bell Capital) है।

इस समय वास्तुकला का निर्माण समतल तथा खडे बल का होने लगा

था। इस समय गुप्त काल की वास्तुकला में चौकोर छोटे कमरों की छत पत्थरों के समतल बड़े टुकड़ों के द्वारा बनाई जाती थी, इसका द्वार मंडप दो या चार खंभो पर टिका बनाया जाता था। इसका द्वार साइरियन (Syrian) एवं रोम के शिखरों से समानता दिखाते हैं। इस समय की वास्तुकला के स्पष्ट गुण मंदिरों का शिखर माना गया है। इस समय शिलास्तम्भ, फूल पत्तो के खंभों के कोष्टकों (brackets) के आधार के स्थान पर प्रयोग में आने लगे थे, ये मिले जुले ढग के बनाये जाते थे, इसका उदाहरण सारनाथ का धमेक स्तूप है जो जातक के विषय से अलंकृत है, यह गुप्तकाल की वास्तुकला की महानता को दिखाता है।

हिंदुओ द्वारा इस समय शिव के गुफा मदिरों का निर्माण हुआ, जो कि गुप्त काल की वास्तुकला के अच्छे उदाहरण है। ये गुफा मंदिर बाद में बौद्ध धर्म में अपनाये गये और इस प्रकार से बौद्ध गुफाओ का निर्माण हुआ। इनमें पहाड़ों को काट कर खभो द्वारा सहारा देकर बराडे बनाये गये, इसके खंभे मोटे बनाये गये जैसा की एलोरा (Elura), उदयगिरि, ऐलिफेन्टा (Elephanta), अजन्ता एव बाघ की गुफाओ के मदिरो मे हमें देखने को मिलता है। यह लौकिक वास्तुकला थो परंतु ऐहोल एव बादामी से सैनिको के लिये बनाई इमारतें भी प्राप्त हुई हैं। एहोल का पाचवी शताब्दी का बना दुर्गा का मदिर अपने स्तम्भिका के आयोजन (Apsidal Plan) मे अद्वितीय है, यह बौद्ध मदिरों के समान है परतु यहा स्तूप के स्थान पर हिंदू मदिरो के कगूरे बने मिलते है। हैदराबाद तथा कृष्णा जिले के बौद्ध मदिर बाद मे विष्णु एव शिव के मदिरो मे बदल दिये जान पड़ते है। एहोल के कई मदिरो की छतें विष्णु के अभ्युचित्रो से अलकृत हैं। ये बादामी की गुफाओ से संबधित जान पडती है। बादामी की पहली गुफा मे शिव के अभ्युचित्र बने हैं, दूसरी एव तीसरी गुफा में विष्णु का मदिर बना है तथा चौथी गुफा जैन धर्म के गुरुओ की मूर्तियो से अलकृत है। ये सभी ऊपर लिखित कथन को स्पष्ट करते है, ये सभी छठी तथा सातवी शताब्दी की बनी जान पडती है। इस समय कई मजिलों वाली इमारतों के बनाने का प्रचार हुआ।

गुप्तकाल की शिल्पकला

गुप्तकाल में मथुरा की शिल्पकला अपनी चरम सीमा पर थी। गुप्तकाल के छोटे मदिरों के मिट्टी के अभ्युचित्र (terracotta reliefs) गुप्तकाल के कलाकारों की उत्तमता को प्रमाणित करते हैं। ये अभ्युचित्र बहुत सजीव बने हुए हैं। भीतर गाँव का पत्थर की ईंटों का मन्दिर उस युग का महत्त्वपूर्ण स्मारक

माना गया है। यह शिव भगवान की आग में पकी मिट्टी की मूर्तियों (terra-cotta) के दिल्हा से अलंकृत है। यह मंदिर पत्थर में कटा हुआ है।

गुप्तकाल की कला में भावुकता एवं आध्यात्मिकता (Spiritualism) का सुन्दर सम्मिश्रण है, उसमें हमें सुन्दरता तथा रमणीयता का अपूर्व सामंजस्य देखने को मिलता है। गुप्त कलाकारों ने अपनी कला को अलंकृत किया साथ ही यह ध्यान रखा कि कहीं यह अलंकरण कला के वास्तविक सौंदर्य को दबा न दे। सारनाथ गुप्तकला के शिल्पों से भरा हुआ है; यहाँ से कुशान एवं प्राचीन कला के भी नमूने मिले हैं। इस समय शिल्पकला का महत्त्वपूर्ण विषय बौद्ध धर्म था, हिंदू धर्म भी बहुतों का विषय था परंतु उस समय के जैन धर्म के विषय के शिल्प हमें बहुत कम आज देखने को मिलते हैं। उत्तरी भारत से भी गुप्त-काल के महत्त्वपूर्ण शिल्प मिले हैं, इनमें धातु एवं पत्थर दोनो को ही बराबर महत्व दिया गया है। इस समय गोलाकार आकृतियाँ बनाने की प्रथा करीब-करीब समाप्त हो गई थी। इस युग की कुछ महत्त्वपूर्ण भगवान-बुद्ध की मूर्तिया मिली है जो इस प्रकार है ·

1 सारनाथ से प्राप्त भगवान बुद्ध की मूर्ति---इसमें भगवान पद्मासन की मुद्रा में हैं। यद्यपि उनके प्रत्येक अग स सुकुमारता टपकती जान पडती है तथापि उसमे सासारिक जडता का लेशमात्र भी स्पर्श नही आ पाया है।

2 मथुरा से प्राप्त खडी भगवान बुद्ध की मूर्ति---इस मूर्ति में भगवान एक निष्कप दीपक की तरह स्थिर खडे दिखाये गये है। इस मूर्ति का मुखमडल करुणा, शांति एव आध्यात्मिक भावनाओ से भरा जान पडता है, साथ ही मुख पर हल्की-सी मुस्कराहट भी है। इसका सिरस्कर गुप्त काल का आदर्शभूत गुण है।

3. भागलपुर से प्राप्त ताम्र की भगवान बुद्ध की प्रतिमा---यह भागलपुर के सुल्तानगज से प्राप्त हुई है। इस प्रतिमा के मुख पर अपूर्व शाति एवं दिव्यता का राज्य दिखायी पडता है।।

4 मनकुबेर भगवान की मूर्ति---यह बैठी मुद्रा मे भगवान बुद्ध की मूर्ति है यह पत्थर मे कटी हुई है।

ये चारों ही मूर्तियाँ भगवान बुद्ध की सर्वश्रेष्ठ मूर्तियाँ मानी गई हैं। अलंकृत गहने, बालों के घुँघरालेपन तथा कपडे ये सर्व प्रथम गुप्त शिल्पकला में बनाये गये जो गुप्त कला एवं रोम की शिल्पकला के गुण है। गुप्त कला के दूसरे अच्छे उदाहरण नालंदा से भी प्राप्त हुए हैं। बुद्ध की मूर्तियों के अतिरिक्त इस समय हिंदू धर्म की भी मूर्तिया बहुतायत से मिलती है जिनमें मुख्य हैं :

1. भेलसा के पास से प्राप्त भगवान बाराह की मूर्ति । इसमें भगवान के अपूर्व तेज एव शक्ति का प्रदर्शन किया गया है।

2. काशी से प्राप्त गोवर्धनधारी कृष्ण की मूर्ति ।

3. देवगढ़ के गुप्त मंदिर का अवशेष ।

4. सूर्य की मूर्ति

5. काशी से प्राप्त कार्तिकेश की मूर्ति

पाँचवी शताब्दी के आरम्भ का युग गुप्त कला का प्रारभिक युग माना गया है, उसके कुछ महत्वपूर्ण उदाहरण इस प्रकार हैं :

1 उदयगिरि की पहाडियो में छोटा सा गुफा का मंदिर है यह ४०१ ई० का बना माना गया है। जहाँ से शिल्पकला के अच्छे उदाहरण मिले हैं । यहाँ की 'चंद्रगुप्त की गुफा में घटीनुमा भित्तिस्तंभ है जो नदी की देवी को सहारा दिये हुए है। यहाँ पर नदी की देवी को मकर पर खडा बनाया गया है। यह बहुत स्वाभाविक एवं सु दर स्त्री आकृति है। यह साधारण गहनो से युक्त है। यह स्त्री आकृति गुप्तकाल के शिल्प कला के महत्त्वपूर्ण गुणो को दिखाती है। गुप्तकाल की इस प्रकार की बनी मूर्तियाँ कई स्थानो से प्राप्त हुई है ।

2. जबलपुर के तिगवा के मदिर से देवी गगा की बहुत सुंदर मूर्ति बनी मिली है । इस प्रकार की गगा की मूर्ति अजता की 22वी गुफा में भी पाई गई है ।

3 458 ई० की बनी शिव एव पार्वती की मूर्ति कोशाबी (इलाहाबाद के पास) से प्राप्त हुई है।

4 देवगढ मे शिव को महायोगी के समान दिखाया गया है।

5 देवगढ मे विष्णु भगवान की भी मूर्ति प्राप्त हुई है।

6 भूपाल के पथारी जिले मे कृष्ण एव यशोदा की मूर्ति मिली है यह जीवाकार बनी है। यह भारतीय शिल्प का सबसे बडा एवं सुदर उदाहरण है। इससे पता चलता है कि लोग उस समय कृष्ण की भी उपासना करते होगे।

7 राजगीर से स्त्री के सामने से बने अध्युचित्र मिले है इनका समय भी गुप्त काल का युग बताया गया है ।

8 इलाहाबाद के पास से कुछ उदाहरण मिले हैं जो विषय में बौद्ध धर्म के हैं एव गुप्त काल के बताये जाते हैं।

9 दिल्ली का लोहे का कुतुबमीनार का स्तभ भी पाचवी शताब्दी में गुप्त काल का बना माना गया है, यह धातु के ज्ञान को स्पष्ट करता है। इसका निर्माण कुमार गुप्त प्रथम ने ४१५ ई० मे करवाया था ।

10. इस काल की पत्थर की धनकुबेर बुद्ध की मूर्ति भी महत्त्वपूर्ण मानी गई है।

11. कौमडा से प्राप्त पीतल की भगवान् बुद्ध की प्रतिमा भी इसी युग की है। इसके कपड़े गांधार शैली में बने हैं, इसके सिर का कपड़ा तिब्बत या भूटान की कला से समानता दिखाता है।

12. एहोल से प्राप्त शिव की नृत्य की मुद्रा की मूर्ति भी इसी काल की की है, यह दुर्गा के मन्दिर में अलकृत है।

गुप्तकाल की बनी एक छोटी-सी स्वर्ण की प्रतिमा भी मिली है जो अब ब्रिटिश संग्रहालय में रखी है।

गुप्तकाल के स्वर्ण सिक्के---गुप्तकाल के राजाओं के स्वर्ण सिक्के भी इस युग की मूर्तिकला के अत्यंत सुंदर उदाहरण माने गये हैं। उज्जैन की विजय के बाद चंद्रगुप्त ने नये प्रकार के सुंदर एवं आभूषणों से युक्त सिक्के बनवाये। समुद्रगुप्त के समय के स्वर्ण सिक्के भी महत्त्वपूर्ण माने गये हैं, इनमें समुद्रगुप्त को खुद वीणा बजाते हुए चित्रित किया गया है। इस सोने के सिक्कों मे उनकी मूर्तियाँ, उनके जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनायें एवं उनके पूज्य देवताओं का बडा सजीव तथा कलापूर्ण चित्रण किया गया है। इससे अच्छे भारतीय सिक्के कभी नही बने, इनकी थोडी-सी बराबरी जहाँगीर एव अकबर के आकृति वाले सिक्के कर सकते हैं।

3 गुप्तकाल की कविता एव साहित्य---इस युग में कविता एवं साहित्य की भी विशेष उन्नति हुई। इसमे शरीर की सुंदरता को वर्णित किया गया जैसे पतला शरीर, पतली कमर, बडे-बडे वक्ष, बडी-बडी आँखें इत्यादि जिसे प्राचीन युग में उपजाऊपता एव समृद्धता का द्योतक मानते थे एव इसे यक्ष तथा यक्षिणी के विचार में दिखाया भी गया है। इस युग के कवि कालिदास भारत के महान कवियो में माने गये है।

4. गुप्तकाल की चित्रकला---गुप्तकाल की चित्रकला की भी उन्नति गुप्त शिल्पकला के ही पथो पर हुई। इस समय की चित्रकला राजाओ एव रानियों की इच्छाओं पर ही निर्भर करती थी, इस समय छवि चित्रों (Portrait) का निर्माण राजाओं की इच्छाओं के कारण किया जाता था। इस युग के चित्रो का भारत में बहुतायत से चित्रण किया गया। इस युग की कला व्यक्ति विशेष की कला न होकर जाति की कला हुई। यहाँ के चित्रों में भी हिन्दू एव गांधार कला का मिश्रण देखने को हमें मिलता है जिसका अच्छा उदाहरण साँची का भगवान बुद्ध का भित्ति चित्र है जो कि उभरा हुआ बनाया गया है। इसमें

भगवान बुद्ध चारों ओर से बोधिसत्व से घिरे हुए बनाये गये हैं जो कि गुप्त-काल की कला का विशेष गुण है। इस समय चित्र को बनाने में चित्रकला के छः अंगों (Canans) को महत्त्व दिया गया और चित्रो के छ. अंगों का प्रारंभ भी इसी गुप्तकाल में हुआ। यशोधर ने बाद में चित्रकला के छः अंगों को वात्स्यायन के कामसूत्र में दिखाया। चित्रकला के छ' अंग निम्नलिखित माने गये हैं —

1. रूपभेद—आकृति का अलग-अलग होना जैसे जिस मनुष्य का चित्रण करना चाहते हैं उसके लक्षणों का पूरा ज्ञान करके उसकी विभिन्नता को दिखाते हुये उसका चित्रण करना। संसार में से कलाकार एक आकृति ले लेता है जिसका उसको चित्रण करना है, वह उस आकृति के सब गुणों का ज्ञान करके उसे दुनियाँ की और आकृतियो से अलग कर देता है जैसे रा ग की आकृति मे सज्जन पुरुष, रानी एव दासी का अन्तर उसके लक्षणों के अनुसार किया जाता है। रूपभेद में बिना आकृति के ठीक ज्ञान के अच्छा चित्रण नही हो सकता है। इस अंग को धनुर्षीय (Archery) विज्ञान से लिया गया है जिसमें लक्षण भेद स्पष्ट होता है जैसे साँड की आँखो को ठी क प्रकार से बनाना इत्यादि। रूपभेद का कला के अंगो मे विशेष महत्त्व है क्योकि आकृति भेद से आकृति का बोध होता है। रूपभेद के अच्छे उदाहरण अजता के भित्ति चित्र में भगवान तथागत का चित्र है। इसमें भगवान तथागत को बडा बना कर उनकी महानता, श्रेष्ठता और देवत्व को प्रकट किया है।

2. प्रमाण या अनुपात—कलाकार को आकृति के बनाने म अनुपात को आधार मान कर काम करना चाहिए। यह शरीर के अगो का आपस में सबध बताता है। शरीर मे अलग पैर या कोई भी शरीर का अंग शरीर का सही नाप बता सकता है। यदि चित्रण में अनुपात का ध्यान नही रखा जाये तो वह चित्र ठीक नही लगेगा तथा साथ ही उसमें लय एव सौदर्य का बोध नही होगा। इसी कारण हम कह सकते हैं कि अनुपात या नाप आकृति का सजीव प्रत्यय पत्र होता है। अनुपात का महत्त्व प्राचीन चित्रकला से आधुनिक कला तक सर्वदा सर्वमान्य रहा है। पैर या किसी भी जीवित शरीर का एक अंग होने के कारण उसका अपने शरीर की ओर उत्तरदायित्व होता है। इसमें 'तालमाला' (अगों के नाप का सही ज्ञान होना) का भी ज्ञान होना आवश्यक है।

3. भाव—विशिष्ट रीति के अनुसार मस्तिष्क में भावों या भावनाओं का जन्म होता है और कलाकार उसका चित्रण कर देता है, यह व्यवहारिक गुण कलाकृति बन जाती है। इसे मनुष्य के मस्तिष्क के मनोविज्ञान का भाव

भी कहा जा सकता है एवं भाव अस्तित्व का गुण है । भाव में ही चित्र का आंतरिक सौंदर्य रहता है । भावमय चित्र ही कलाकार की अनुभूति की अभि-व्यक्ति होती है । भाव चित्र में रस प्रदान करता है । तभी चित्र को देखने में भी आनन्द आता है और यही चित्र का सौंदर्य होता है । चित्रों में भावों को दिखाने में भारतीय कला बहुत प्रवीण रही है इसी कारण भारतीय कला अपनी विशेषता में अद्वितीय समझी गई है ।

भाव एव मुद्रा में अतर है । भाव आध्यात्मिक जगत के सौंदर्य की अनुभूति करता है परंतु मुद्रा स्थूल जगत की ओर प्रेरणा देता है, इस कारण इसका आनद भौतिक होता है । भाव में सार होता है परंतु मुद्रा में नही ।

4 लावण्य-योजना—'लावण्य' सौंदर्य का बोध करता है । कला में सौदर्य एव लावण्य दोनों को ही बराबर महत्त्व दिया गया है । सौदर्य दो प्रकार का होता है, पहला आतरिक सौंदर्य जिसका संबंध भाव चित्रण से होता है, दूसरा बाह्य सौंदर्य जिसका संबंध लावण्य से होता है, इसी कारण चित्र में दोनों का होना महत्त्व रखता है । लावण्य का प्रयोग सुंदरता से युक्त किया जाता है । मनुष्य में लावण्य का अर्थ उसकी सुंदरता, आकर्षण एव अनुग्रह होता है जिसे चित्रकला में प्रदर्शित किया जाता है ।

5 सादृश्य—चित्र मे कल्पित तथा चित्रित आकृतियो में समानता दिखाने को सादृश्य कहते है जैसे व्यक्ति चित्र (Portraiture) उसमे चित्र बनवाने वाले तथा चित्रित आकृति मे समानता दिखाई जाती है । देखने में एक सा लगना इसका गुण होता है, यह रूपभेद को पुष्ट करता है । प्रसिद्ध कला मर्मज्ञ श्री पुलिन सील ने कहा है कि 'भारतीय कला की विशेषता यही है कि उसमें प्रकृति के सौदय एव अन्तरात्मा की चेष्टाओं को यथोचित तथा एकात्मक मूर्त्तरूप देने की योग्यता होती है ।' इसी को भारतीय कला में सादृश्य कहते हैं ।

6 वर्णिका भग —इसमें रगो एव तूलिका का चित्र में ठीक प्रकार से प्रयोग करना आता है, इस कारण कलाकार को रगों का पूरा ज्ञान होना आव-श्यक होता है जैसे रगों का विभिन्न प्रयोग, संतुलन, समान रस, तथा सगति के रग इत्यादि । यह केवल कलाकार की योग्यता पर निर्भर करता है कि वह चित्र में रगों का प्रयोग विषय के अनुकूल करे एव भाव को स्पष्ट करने में पूर्ण योग दे । इसकी सफलता पर ही चित्र का प्रशंसनीय होना निर्भर करता है ।

इन ऊपर लिखे अगों से ही चित्र रचना का ज्ञान होता है और इससे पता चलता है कि प्राचीन कलाकार किन सिद्धांतों के आधार पर चित्रों को बनाते थे । प्राचीन काल से आधुनिक काल तक कला के इन छ. अगों को महत्त्व दिया

गया है और इन सिद्धांतों के आधार पर ही और सिद्धांतों की रचना की गई है ।

भारतीय कला एवं चित्रकला प्राचीन काल से ही संसार में प्रशसनीय है। चित्रों का निर्माण बहुत लोग करते हैं परंतु किस व्यक्ति का चित्र सर्वश्रेष्ठ है है इसका परीक्षण करने के लिये कला में विद्वानों ने छ' अंग निश्चित किये हैं। गुप्त काल के लोगो का साहित्य प्रेम चित्रकारी गाने एवं कविता के समान मानी गई है, इसके जन्म की उत्पत्ति इसके अनुभव से होती है । प्रारंभिक गुप्त काल में ही कामसूत्र में चित्रकला को 64 कलाओ मे से एक माना है। इन सब से हमें पता चलता है कि उस समय का समृद्ध राज्य उच्च भारतीय सभ्यता को भी दिखाता है ।

बौद्ध धर्म का जन्म

बौद्ध धर्म का जन्म शाक्य मुनि के विचारों पर आधारित साधारण नैतिक दार्शनिकता के द्वारा हुआ। शाक्य मुनि शाक्य राज्य के राजकुमार थे। इनका जन्म मगध में छ ई० पू० मे हुआ था ।

ईसा के जन्म के बाद बौद्ध धर्म में एक नया प्रभाव आया, जिसके कारण एक ओर शाक्य मुनि के विचारो का प्रचार हो रहा था जिसे हीनयान कहा गया। यह कम लोगों में प्रचलित विचार था परंतु दूसरी ओर महायान बौद्ध धर्म का विचार अधिक लोगों मे प्रचलित हो रहा था। बौद्ध अनुयायी केवल भगवान बुद्ध को धर्म के प्रचार का गुरु मानते थे एव उन्हे अनंत भविष्य तथा जीवन की अनंतता में ले जाने की शक्ति मानते थे। उन लोगो के विचार से वे मनुष्यमात्र को मुक्ति का मार्ग दिखाने आये थे। उन्नति को केवल कला की टक्कर माना जाता था। साथ ही हीनयान का प्रतिमा विज्ञान (Iconography) बुद्ध भगवान के जीवन की घटनाओं को दिखाता था जिससे यह स्पष्ट होता है कि बौद्ध धर्म के लिए उन्होने बुद्ध भगवान के जीवन का उदाहरण लिया होगा और उन्होंने उसे बौद्ध साहित्य तथा कला का विशेष विषय माना। परन्तु महायान मे एक नई शक्ति का जन्म हुआ, यह बुद्ध भगवान की शाक्य मुनि से पहले की आकृति थी एव बाद में बोधिसत्व की आकृति जो उत्तम आध्यात्मिकता (Spiritualism), अनत दयालुता तथा प्रवीणता से युक्त मानी गई है को लिया गया। इसे जातक की कहानियों में भी दिखाया गया है। बौद्ध चित्रो को तीन प्रकार की शैलियों में विभाजित किया गया है वह इस प्रकार है—

तारानाथ ने 17वीं शताब्दी में कहा है कि बौद्ध शैली का स्पष्ट पता नहीं चलता है परंतु उन्होंने प्रारंभिक बौद्ध कला को तीन भागों में बाँटा है।

(क) देव बौद्ध शैली।

(ख) यक्ष बौद्ध शैली।

(ग) नाग बौद्ध शैली।

(क) देव बौद्ध शैली—यह मगध में 600-300 ई० पूर्व में फैली हुई थी इसका पता वहाँ से प्राप्त चित्रों से स्पष्ट होता है। यह भगवान बुद्ध के बाद भी कई शताब्दियों तक यहाँ रही।

(ख) यक्ष बौद्ध शैली—तारासाथ ने इस शैली को अशोक की शैली से मिलकर उत्पन्न कहा है। उनके विचार से इस शैली के कलाकारों का काम बहुत यथार्थतापूर्ण एव आश्चर्यजनक होता था।

(ग) नाग बौद्ध शैली—यह शैली नागार्जुन के समय की शैली थी। यह शैली यथार्थवाद की शैली है। इसका प्रारंभ तीसरी शताब्दी से माना गया है।

तारानाथ के विचार से "देव, यक्ष तथा नागों की रचनायें अपनी यथार्थता के कारण वर्षों तक लोगो में भ्राति उत्पन्न करती रही।" तीसरी शताब्दी के बाद कला का ध्वस होने लगा परंतु फिर से कुछ समय के बाद कला की उन्नति हुई और उस समय भारत की कला में तीन मुख्य शैलियाँ प्रचलित हुईं।

1. मध्य प्रदेश शैली।

2 पश्चिमी शैली।

3 पूर्वी शैली।

1 मध्य प्रदेश शैली--इस शैली का प्रारंभ पाँचवी या छठी शताब्दी मे राजा बिम्बिसार के राज्य के कलाकारो द्वारा हुआ। यह उत्तर भारत में प्रचलित हुई। यह शैली बहुत कुछ देव शैली से मिलती-जुलती थी। इस शैली के अतर्गत बहुत अच्छे कलाकारों का जन्म हुआ जिनकी कोई गिनती न थी।

2 पश्चिमी शैली—यह सातवी शताब्दी की शैली थी। यह राजस्थान मे प्रचलित थी। यह शैली यक्षों की शैली से मिलती-जुलती थी। इस शैली के मुख्य कलाकार शृगधर (श्री गाधार) थे, जिनका जन्म 7वी सदी में मारवाड़ में हुआ था।

3 पूर्वी शैलो—इस शैली का समय देवपाल तथा धर्मपाल का समय बताया जाता है जो कि 9वी शताब्दी का समय माना गया है। यह शैली बंगाल में प्रचलित थी। यह शैली बहुत-कुछ नाग शैली से मिलती-जुलती थी। इसके प्रमुख कलाकार धीमन् तथा उनके पुत्र बितपाल थे।

इनके अतिरिक्त दूसरी बौद्ध शैलियाँ भी भारत में दूसरे स्थानों में प्रचलित थी जैसे दक्षिण भारत, बर्मा, नेपाल, काश्मीर इत्यादि। इसका समय 6ठी से 10वी शताब्दी के बीच का माना गया है। तारानाथ के कथनानुसार यह माना जा सकता है कि इन शैलियों पर पहले की ही तीन शैलियों का प्रभाव था।

बौद्ध धर्म का पतन

बौद्ध धर्म की अवनति 5वी सदी में दक्षिण भारत मे हुई, वह धीरे-धीरे पूरे भारत में फैल गयी। हिंदू धर्म के अनुयायी राजा हर्ष ने भी बौद्ध धर्म के प्रचार में कोई बाधा नही डाली। इस समय हिंदू धर्म के लचीलेपन तथा सहन-शीलता की आश्चर्यजनक उन्नति हुई, दूसरे धर्म इसमें मिला लिये गये तथा हिंदू धर्म के सिद्धांत एव भाव उसके मुख्य अग बन गये। इस कारण कही भी हिंदू धर्म की सत्यता अभिवचित एव अस्वीकार नही की गई। इस कारण इस समय की कला हिंदू एवं बौद्ध धर्म दोनो को अपने मे स्पष्ट दिखाती है।

उत्तरी भारत में इस समय हूणो के आक्रमण हो रहे थे जिसके कारण बौद्ध धर्म केवल भारत के पूर्वी प्रदेशों में जैसे नालदा तथा पहाडपुर में ही बचा रह गया। चीनी यात्री ह्यूनसाग के विचारो के अनुसार सातवी तथा आठवी शताब्दी में नालदा विश्वविद्यालय विश्व मे बहुत सम्पन्न शिक्षा का केंद्र माना गया। यहाँ के एक शिलालेख के द्वारा यह पता चलता है कि जावा के बालदेव ने कुछ विशेषदान नालदा विश्वविद्यालय को बनाने मे दिया था इसमें हमे पता चलता है कि इस विश्वविद्यालय को बनाने में बाहरी देश भी पूरा योगदान देते थे। पहाडपुर के मैदान के विन्यास की समानता बोरोबूदर के स्तूप तथा प्रामबानम् के मदिरो स मिलती है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि बौद्ध धर्म के माननेवाले इसी भाग स दूसरे देशो में बौद्ध धर्म का प्रचार करने गये थे। नालदा से बौद्ध भिक्षु नेपाल तथा तिब्बत में भेजे गये और कला को उन्नति के लिये बहुत सुदर स्थान प्राप्त हुआ, साथ ही बौद्ध धम भारत के बाहर फैला।

पाल राजाओ ने बगाल मे अपने राज्य को 8वी तथा तथा 9वी शताब्दी में सुदृढ़ करना आरभ कर दिया और तब ही तान्त्रिक धर्म का जन्म हुआ। यह बौद्ध तथा हिंदू दोनो ही धर्मों मे माना गया।

नालदा के काँसे तथा आठवी शताब्दी के पत्थर के शिल्प सारनाथ के शिल्पों की कोमल सूक्ष्मग्राहिता का भाव निरतर दिखाते हैं। यह कला विशेषकर पाल कला मानी गई है। इसमें आकृति की उत्तमता तथा प्रेम का गहन विचार साथ ही दिखाया गया है। यह विचार केवल पाल कला में ही नही था बल्कि यह 9वी, 10वी एव 11वी शताब्दी के सभी शिल्पकारो के कामों में दिखता है।

कई शताब्दियों तक बौद्ध कला में तांत्रिक तथा मायाक्षिय धर्म का प्रचार चलता रहा और कला में कोई और परिवर्तन नहीं हो पाया। पहाड़ी प्रदेशों में बौद्ध धर्म में तान्त्रिकता के कारण स्त्री की आकृति को पूजा गया और जनता का बौद्ध धर्म मायाक्षिय धर्म का जन्मदाता हो गया।

बौद्ध चित्र—बौद्ध चित्र विशेषकर भित्तिचित्रो के रूप में भारत के विभिन्न स्थानों से पाये गये हैं। इन्ही भित्ति चित्रों के द्वारा बौद्ध चित्रों ने उत्तरी पश्चिमी सीमांतर तथा मध्य एशिया में कला के क्षेत्र में इतनी लोकप्रियता प्राप्त की एव कला को एक नया मोड दिया। इसका महान केंद्र अजंता एवं बाघ के चित्र हैं।

भारतीय चित्रकला के इतिहास का प्रारभ इन्ही भित्ति चित्रो से माना गया है। इसक बराबरी के चित्र ससार के किसी भी स्थान से नही प्राप्त हुये हैं। इनको विशेषता चित्रो की स्वाभाविक अभिव्यंजना तथा सर्वांगीणता है। भारत में इस प्रकार के चित्र कई स्थानो से प्राप्त हुए हैं जिनका वर्णन नीचे किया जा रहा है।

अजंता की गुफाओं के भित्ति चित्र

अजता के गुफा मंदिर पहाडों को काट कर बनाये गये है। ये फरदापुर मे चार मील दूर दक्षिण पश्चिम मे हैदराबाद मे स्थित हैं। ये कला मडल 300 फीट की ऊँचाई की पहाडियों मे छिपे हुए हैं। इस कला मंदिरों में शक्ति, उपासना, प्रेम, धैर्य, सहानुभूति, शाति एव त्याग की मूर्तियाँ बहुत सु दर ढग मे बौद्ध भिक्षुओं द्वारा चित्रित की गई हैं।

इन गुफाओ का पता सबसे प्रथम जनरल जेम्स को 1824 ई० में लगा। उन्होंने इन गुफाओ के विशाल चित्रो का विवरण रायल एशियाटिक सोसाइटी, लदन में प्रकाशित किया। सन् 1943 मे भारतीय वास्तुकला तथा मूर्तिकला के प्रेमी फरगुसन (Fergusson) ने इसका वर्णन लिख कर कला विद्वानो का ध्यान इसकी ओर आकर्षित किया। 1881 ई० में बम्बई आर्ट स्कूल के प्रिंसिपल श्री ग्रिफित्स ने इन चित्रो का विवरण प्रकाशित किया। इसके पश्चात् 1911 ई० व 1915 ई० में लेडी हॅरिंघम की अध्यक्षता में भारतीय कलाकार नंदलाल बसु, असितकुमार हाल्दार, वैंकटप्पा तथा समरेंद्रनाथ गुप्त को भारतीय चित्रों की प्रतिलिपियाँ करने को भेजा गया परतु बाद में कई कलाकारों ने इनकी प्रतिलिपियाँ बनाईं। इन लोगों के ही द्वारा अजंता की चित्रावली आज साधारण जनता तक पहुँच सको।

1866 ई० मे कला का वह भाग नष्ट हो गया जिसे आज हम अजंता की गुफाओं में नही देखते हैं। यह कहा जाता है कि ये गुफायें बौद्ध भिक्षुओं द्वारा

चित्रित की गई थीं। यह बहुत आश्चर्य की बात है कि इन अंधेरी गुफाओं में इन भिक्षुओं ने चित्र कैसे बनाये होंगे ? यह समझा जाता है कि यहाँ पर प्रकाश का उद्गम पानी के ऊपर सूर्य की किरणों के प्रतिबिम्ब के कारण हुआ होगा, जो कि इनके पास के बड़े तालाब के कारण संभव हो सका होगा, और तभी ये भिक्षु इन चित्रों को चित्रित कर सके होंगे। इन्हीं भित्ति चित्रो के द्वारा प्राच्य चित्रकला (Oriental Art) का प्रारभ माना जाता है।

अजता के भित्ति चित्रों का भारत की कला में वही स्थान है जो विख्यात कलाकारों का यूरोप की कला में। बौद्ध धर्म के ये भित्ति चित्र पूर्वी कलाकारों को प्रेरणा का उद्गम हैं। अजंता के चित्र बौद्ध शैली के हैं। ये कला मंदिर वास्तुकला, मूर्तिकला एव चित्रकला के परमनिधि हैं, जिसकी समानता विश्व की किसी भी कलाकृति से नही की जा सकती है। इन चित्रों की विशाल व्यवस्था, श्रेष्ठता तथा गुण इनकी कला के क्षेत्र की महानता को दिखाते हैं, इन्होंने पूर्व की कला में अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान बनाया है। ये भित्ति चित्र स्थान की महानता, बनाने का साधारण ढंग तथा स्वाँस के विचार के कारण एक महान् शैली की उत्पत्ति दिखाते है। बस कादबरी में भी अजता के चित्र की विशिष्ट मिलावट तथा देदीप्यमान जीवन को दिखाया गया है। इनमें स्वाभाविक सदाचार के द्वारा जीवन के सब सुखो को चित्रित किया गया है। अजता के चित्रों का विशेष गुण चित्रो मे भक्ति, उपासना एव प्रेम का समन्वय है साथ ही भगवान बुद्ध के आदर्शों का कुशलता से प्रदर्शन करना है। यहाँ की कलाकृतियों मे भगवान तथागत की एक ओर अतर्मुखी प्रवृत्तियो का दर्शन है तथा दूसरी ओर बहुजनहिताय की कल्याणकामना का चित्रण है।

ये 29 गुफाओं की पूरी कतारें हैं केवल 16 गुफाओ का ज्ञान 1879 ई० में हुआ परंतु 1910 ई० में 16 गुफाओ में से छ गुफायें ठीक अवस्था में रह गई थी। ये गुफायें 1, 2, 9, 10, 16 तथा 17 नबर की हैं। इन कमरों का क्षेत्रफल 60 × 60 वर्ग फीट है। अलग-अलग गुफायें अलग-अलग इतिहास के समय को दिखाती हैं, क्योंकि ये अलग-अलग समय में अलग-अलग राजाओं द्वारा बनाई गई, इस कारण इनकी कला का विषय एक होते हुए भी कला की दृष्टि से वे अलग-अलग है, ये एक ही कला के स्कूल की बनी नही मालूम होती है। ये विहार गुफायें चित्रो से सुसज्जित हैं। ये चित्र गुफा के समय को निर्धारित करने में सहायक है। इन गुफाओं का निर्माण काल चित्रों की नवीनता तथा प्राचीनता से अनुमानित किया जा सकता है। श्री ब्राउन के अनुसार इन गुफाओं का समय निम्न प्रकार से निर्धारित किया गया है :—

(अ) 9 वीं तथा 10 वी गुफायें—100 ई० मे बनी मानी गई हैं।

(आ) 10 वीं गुफा के खंबे—350 ई० के बने बताये गये हैं।
(इ) 16 वीं तथा 17 वी गुफायें—500 ई० के बने हैं।
(ई) 1 ली तथा 2 री गुफायें—624-676 ई० की बनी हुई हैं।

ये गुफायें पहली से सातवी शताब्दी के बीच की बनी हुई हैं। 9 वीं तथा 10 वी गुफाओं के चित्रों के बाद कला कुछ समय के लिए गिर गई परंतु बाद के कलाकारों द्वारा इसमे फिर से उन्नति हुई। इस बौद्ध गुफाओं में घोड़े की नाल के आकार के मेहराब बने हुए है जो वास्तुकला के अच्छे उदाहरण हैं।

इन चित्रो के विषय बौद्ध धर्म से संबधित हैं परंतु कही कही पर ऐतिहासिक दृष्य भी दिखाये गये हैं जैसे 1ली गुफा मे एक चित्र में पुलकेसिन द्वितीय को फारस के राजदूत का स्वागत करते चित्रित किया गया है, इस घटना का समय 618 ई० से 626 ई० माना गया है एवं इसका सबंध उस समय की फारस की कला से दिखाया गया है।

9 वी एव 10 वी गुफाओं के चित्र सब से पहले के माने गये हैं। 10 वी गुफा के कुछ अवशिष्ट चित्रो को देख कर इनका समय शुंग कालीन लगता है। ये चित्र शुग काल की विकसित शैली पर आधारित हैं। कुछ अभिलेखों के द्वारा इसका समय ईसा की दूसरी सदी का माना गया है। इस गुफा में कुछ नर्तकियो के चित्र तथा अगरक्षको के सुन्दर चित्र अकित किये गये हैं। ये चित्र कला की दृष्टि से अमरावती, साँची तथा भरहुत से समानता दिखाते हैं, इससे इसका पहली शताब्दी मे चित्रित होने का निश्चित पता चलता है। 10 वी गुफा के खभो पर अलकृत आलेखनो की भरमार है। ये आलेखन गांधार शिल्पकला से मिलते जुलते हैं। 9 वी गुफा के चित्रो के गहने एवं पगडी बाँधे आकृतियाँ किसी आदिम जाति की सूचक है, जिससे इस गुफा के चित्रों का समय भी ईसा की दूसरी सदी बताया जाता है। परतु 10 वी गुफा का भगवान बुद्ध का चित्र ईसा की चौथी शताब्दी का चित्रित बताया जाता है, और 'षडदंत जातक' के चित्र का अभिलेख उसे तीसरी सदी का होना प्रमाणित करता है।

16वी तथा 17वी गुफा वाकातक वंश के राजाओं द्वारा बनाई मालूम होती ह। परतु 17वी गुफा के चित्र वर्णनात्मक शैली के हैं। वाकातक अभिलेखो के आधार पर 1, 2, 16, 17 गुफाओं का निर्माण 5 वी सदी में हुआ माना गया है। 1 ली तथा 16 वी गुफा में अधिक समानता है इस कारण इनका निर्माण एक साथ माना गया है। इसके बाद 17 वी गुफा का निर्माण काल माना गया है और सबसे अंत में दूसरी गुफा को रखा गया है। अंजता की गुफायें बौद्ध चैत्य तथा विहार के नामों से जानी जाती हैं। चैत्य गुफायें

उपासना तथा पूजा के लिये बनाई गई थीं एव बिहार से बडी हैं । परंतु बिहार गुफायें बौद्ध भिक्षुओं के निवास तथा अध्ययन के लिये बनायी गयी हैं । चैत्य गुफाओ के सामने एक स्तूप बनाया गया है । 19वी गुफा का स्तूप बड़ा बना है । इसके द्वारों पर बनाई कला बहुत सुन्दर है । इसके द्वार की मेहराब पीपल के पत्ते की आकार की है ।

अजता के भित्ति चित्रो की विशेषतायें

अजंता की कला बहुत महत्त्वपूर्ण है, इसे विश्व की कला में महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है । इन चित्रों में आध्यात्मिक भावना तथा तत्त्वज्ञान संबंधी भावना का चित्रण है, और उनमें भी अपूर्वता दिखती है । इन चित्रों मे सासारिकता के साथ-साथ आध्यात्मिकता का अच्छा सामजस्य है । गुप्त काल की मूर्तिकला यद्यपि जीवन की यथार्थता से अलग हो गई है तथापि चित्रकला में परपरा का अच्छी तरह से चित्रण हुआ है । यहाँ की चित्रकला लौकिक जीवन की अपेक्षा अलौकिक जीवन की सभावनाओ मे अधिक की गई । इन चित्रो को विषय की दृष्टि से तीन भागों मे बाँटा जा सकता है—

1. अलंकारिक चित्र
2 रुपभेदिक चित्र
3 वर्णनात्मक चित्र

1 **अलकारिक चित्र**—इन चित्रों में पशुपक्षियों के साथ पुष्पों की बेलें, अलौकिक पशु, राक्षस, नाग, किनर, गरुड, यक्ष, गधर्व, अप्सरायें, बैल, बदर, हाथी एव लगूर इत्यादि का अलकरण के हेतु चित्रण किया गया है । ये चित्र कुशल हाथो द्वारा बनाये मालूम होते है । इनमे चित्रो के अलकरण को महत्त्व दिया गया है । पहली गुफा में दो लडते हुए बैलों का बहुत सुन्दर चित्रण किया गया है, ये अपनी शैली की अनुपम कृति मानी गई है । यहाँ पर फूलों में विशेष-कर कमल का चित्रण किया गया है ।

2 **रुपभेदिक चित्र**—लोकपाल, बुद्धभगवान, बोधिसत्व, राजा रानी इत्यादि का कला की दृष्टि से बहुत सुन्दर चित्रण किया गया है । यहाँ भगवान बुद्ध का चित्रण अभया, वरदा, तथा वितर्क की मुद्राओ से किया गया है । भगवान बुद्ध का जन्म, महाभिनिष्क्रमण सबोधि, निर्वाण तथा भगवान बुद्ध के जीवन की अलौकिक घटनाओ को चित्रण में प्रधानता दी गई है । पहली गुफा के पद्मपाणि के चित्र की तुलना ऐंजेलो की कलाकृतियों से की गई है । यह चित्र बहुत उत्कृष्ट चित्र है इसमें भगवान बुद्ध के मुख पर करुणा का भाव है । इस शैली के प्रमुख चित्र मरणासन्न राजकुमारी, शृंगार करती हुई राजकुमारी इत्यादि

उल्लेखनीय हैं। 'मातापुत्र' चित्र में भाव को प्रधानता दी गई है, इसमें सामने खड़े हुये भगवान बुद्ध का चित्र बहुत आकर्षक है परंतु इससे अधिक आकर्षण का केंद्र माता एवं पुत्र हैं जो असीम श्रद्धा एवं अतुल भक्ति के साथ भगवान् को देख रहे हैं।

3. वर्णनात्मक चित्र—इन चित्रों में भगवान् बुद्ध के जीवन से संबंधित जातकों की कथाओं का विशेषकर चित्रण किया गया है। इनमें घटनाओं का वर्णन मुख्यतः किया गया है। ये चित्र कई भागों में बाँटे गये हैं जो घटनाओं के क्रम में बने हुये हैं। 10 वी गुफा का 'छदन जातक' का चित्र विशेष महत्त्व का है इसमें हाथियों के समूह का सुन्दर चित्रण हैं जिसकी एक ओर लोग खड़े हैं जिनमे सैनिको एवं नारियों को चित्रित किया गया है। इस चित्र का अधिकांश नष्ट हो गया है। वर्णनात्मक चित्रो में 'ब्राह्मण जातक', 'शिब जातक', 'मातृपेरु जातक', 'शरभ जातक', 'बुद्ध जम', सप्तपदी, तपस्या, निर्वाण तथा मारविलम के चित्र आते है।

अजता के चित्रो के सयोजन बहुत बड़े-बड़े हैं परतु अधिकतर चित्रों की आकृतियाँ जीवाकार से कम बनाई गई है। महत्त्वपूर्ण मनुष्य को सर्वदा वीरत्व अनुपात में मनुष्य आकृति से बडा बनाया गया है। ये चित्र महानता में मिस्र के राजाओ के चित्रों की बराबरी करते है। संयोजन (Composition) की केंद्रीयता यहाँ के चित्रो का विशेष गुण है, जिसके कारण चित्र के दृश्य मे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के प्रति तुरत देखने वाले का ध्यान आकर्षित होता है जैसे 'मार विजय' चित्र मे भगवान बुद्ध की आकृति तथा बोधिसत्व की आकृति के बनाने में चित्रकार की सफलता दिखती है। हर आकृति सयोजन मे अपने ठीक स्थान पर बनी हुई है। इन चित्रो में संयोजन की बनाने की हद आंतरिक भावो द्वारा व्यक्त की गई है। अजंता के चित्र विषय को स्पष्ट करने में बहुत सफल है। यहाँ के चित्रो की महानता उनके बनाने के साधारण ढग, स्थान की महानता तथा स्वाँस के विचार के कारण है। यहाँ पर कहानियों का चित्रण निरंतर किया गया है, दृश्यो को किसी सीमा में बाँधा नही गया है, क्योंकि बौद्ध भिक्षुओं के पास पूरी दीवार ही चित्रित करने को थी। ये चित्र अपनी समानता मध्यकालीन इटली के दीवारो के अलकरण से करते है। ये अजता के चित्र पृथ्वी के स्वर्गीय दृश्या को दिखाते है जैसे पूजनीय महल एवं देवताओ के समान मनुष्यों का चित्रण। कुछ चित्र विषय में लौकिक हैं, वे राजाओं के कार्य तथा उनके दरबारी जीवन को दिखाते है। कल्पना में यहाँ की कला भावुकता से युक्त है। ये देखने वाले की भावना को बहुत ऊँचा उठा देती है। अपने भावों को सफलतापूर्वक दिखाने के कारण ही ये चित्र महान

माने गये हैं। प्राचीन कलाकारों ने अजंता के चित्र केवल भावों को प्रकट करने के उद्देश्य से बनाये थे। इसी कारण यहाँ के चित्रों में हीनयान तथा महायान के धर्म सिद्धातों को बहुत सुंदर ढग से दिखाया गया है। इसे दिखाने में सभी भावों का प्रयोग किया गया है, देखने वाले को इसका भास भी चित्र में हो जाता है। यहाँ पर मनुष्य के सभी भावों का चित्रण किया गया है, जिसमें मनुष्य के साथ चर तथा अचर दोनों को ही बनाया गया है। यहाँ के चित्रों में भावों का बहुत सुदर चित्रण किया है जिसका अच्छा उदाहरण पद्मपाणि बोधिसत्व हैं। इसमें भगवान बुद्ध के मुख पर करुणा का भाव है, मरणासन्न राजकुमारी शीर्षक चित्र में राजकुमारी में आलस्य भाव, माता पुत्र चित्र मे श्रद्धा एव भक्ति का भाव तथा भगवान बुद्ध के मुख पर शाति का भाव है। माता एव पुत्र चित्र में माता तथा पुत्र को प्रसन्न भाव मे चित्रित् किया गया है उन्हे प्रसन्नता इस बात की है कि वे दान दे रहे है, यहाँ पर उनके हाथ उठे हुए है यहाँ पर हम भावात्मक भावों को चित्र मे अनुभव कर सकते है। इन्ही भावोको व्यक्त करने की कुशलता अजता के चित्रो की आत्मा है, इनके बिना ये चित्र निष्प्राण से लगेंगे। यहाँ के चित्रो में भावमय अभिनय भी दिखाया गया है एव मानव के अग तथा जड पदार्थ के अग भावो का सृजन करते हुए यहाँ पर दिखाये गये है। बौद्ध कलाकारो की सफलता आकृतियों की चेष्टा को दिखाने मे है विशेषकर हाथ के भावों की क्रिया को दिखाने में है। यहाँ पर हाथो की मद्राये सुदर तथा सुकुमार भावो को सजीवता प्रदान करती है। भगवान बुद्ध की चपा के समान उगलियाँ उनके कथानक को व्यक्त करती है, हाथ की भिन्न मुद्राये भिन्न भावो का सकेत करती हैं। ये मुद्रायें आशा, निराशा, सर्वनाश, भय, त्याग, करुणा इत्यादि भावों को व्यक्त करतो है। हिंदुओं मे मुद्रा या हाथो का सकेत उनके विशेष विषय होते है और यह भारतीय कला मे हर स्थान पर हमे देखने को मिलता है। हाथ की हर मुद्रा एव उँगलियो की गति एक विशेष प्रकार का संकेत करती है जैसे पहली गुफा के दरबारी जीवन के दृश्य मे हाथों की गति को बहुत सुदर ढंग से चित्रित किया गया है। चित्रकला कलाकारो के भावो के उन्नत स्थल को बौद्ध धर्म की उन्नति से भी पहले के चित्रो मे दिखाती है इसके अच्छे उदाहरण अजता के चित्र है। चित्रो की भाव विधान आतरिक प्रेरणा ही चित्रों का सजीव रूप है।

यहाँ के चित्रों का रेखाचित्र (Drawing) गतिवान है। ये बिना परिश्रम के बनाये गये मालूम होते हैं। यहाँ पर आकृतियों का प्रतिष्ठित कुलीन भाव लेखाचित्रीय रीति (Graphically) से बनाया गया है, यह गुण बौद्ध भिक्षुओं की सबसे महान प्राप्ति है। इन आकृतियों की मुद्राये प्रभावशाली तथा वैभव

युक्त है, इनकी रूप रेखा बहुत शानदार है, ये आकृतियों के प्रत्यक्ष ज्ञान (Perceptions) को दिखाती हैं। इनमें शास्त्रीय एवं शरीर विज्ञान (Anatamy) की रचना की सफलता में कोई कमी नहीं दिखाती हैं। अजंता के चित्रों तथा सभी पूर्वीय (oriental) चित्रों का विशेषगुण उनकी रेखा के रूपांतर में है। पूर्वी देशों के चित्र विशेष कर रेखा के चित्र होते हैं, यह गुण जितनी सफलतापूर्वक भारत के बौद्ध चित्रों में विद्यमान है वैसे ये कहीं और के चित्रों में नहीं दिखाई देते हैं। अजंता के चित्रों में रेखाओं एवं तूलिका दोनों को ही महत्त्व दिया गया है। यहाँ पर भावपूर्ण रेखायें विलास तथा शृंगार से एकदम भिन्न हैं। इन रेखाओं में भारीपन एवं सकोच कही पर नहीं दिखता है। यहाँ के चित्रों में रेखाओं को आकृतियों से अधिक प्रधानता नहीं दी गई है। यहाँ पर रेखा केवल आयतन को दिखाने में प्रयोग में लाई गई है, वह यहाँ पर घन की परिभाषा नही है। अजंता का कला मंडप आलेखनों से भरा हुआ है, इन आलेखनों में मानव, पशु, पक्षी, हाथी, फल एवं फूल का लयात्मक रेखाओं के द्वारा चित्रण किया गया है। 10वी तथा 9वी गुफाओ मे रेखाओ का प्रयोग नही किया गया है, यहाँ पर रगों की भिन्न-भिन्न प्रकृति (Tone) का प्रयोग हुआ है, केवल विशेष स्थानों में भिन्नता दिखाने के लिए रेखाओं का प्रयोग किया गया है जैसे गहनो इत्यादि मे, परंतु मुँह एव हाथ में रेखाओ का प्रयोग नही किया गया है। 15वी एव 16वी गुफा में भी रेखा का प्रयोग नही किया गया है परतु स्थिति की जन्मलघुता (Foreshortening) को दिखाने के लिए रेखा का प्रयोग किया गया है। कही पर भी रेखायें स्पष्ट नही दिखती हैं। परतु पहली गुफा के चित्रो में यह स्पष्ट दिखती हैं कि चित्रों को रेखाओ द्वारा ही सोचा गया है, अधिकतर चित्र घन (volume) मे बने हुए हैं। इन सबसे यह पता चलता है कि इन कलाकारो को रेखाओं को बनाने का अच्छा ज्ञान था जिसके द्वारा वे अपने भावो को बहुत सुंदर ढंग से व्यक्त कर सकते थे। इन्ही रेखाओ द्वारा प्रतिमाकन (Medelling), प्रभावोत्पादकता (values), उभार, स्थिति जन्मलघुता (Foreshortening), छाया एव प्रकाश तथा दूसरी विशेष बातों को कला में आसानी से ये व्यक्त कर लेते थे और यह प्रतिष्ठित (Classical) समय के कलाकारों द्वारा बाद में अपनाया गया। इसका उदाहरण पहली गुफा के बायीं ओर के बोधिसत्व अविलोकितेश्वर का चित्र है। यहाँ पर राजकुमार सिद्धार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिए महल को छोड़ते हुए चित्रित किये गये हैं, इसमें सिद्धार्थ की आकृति जीवाकार से बडी बनायी गयी है। यह थोड़ी झुकी हुई है और इसके दाहिने हाथ में नीला कमल है, मुँह पर दुःख का भाव है। यह देखने वाले को भगवान बुद्ध के अपने सामने खड़े होने

का भास कराती है। कधों तथा हाथों का रेखांकन (Drawing) बहुत सुंदर एव स्पष्ट है। यहाँ पर रेखायें साफ है, भौहें भी सादी लहरों के समान रेखा द्वारा बनायी गयी हैं। यह अकेली आकृति लय के भावों को दिखाती है, इसकी सुशोभित गति सुन्दरता के भावों द्वारा दिखायी गयी है। इन्ही सब कारणों से यह कला की महान कलाकृति मानी गई है। बौद्ध कलाकारों का सामान्य विचार 9वी गुफा में केवल मनुष्य के झुडों को ही दिखाना है। यहाँ उन्होंने हल्की आकृतियो को गाढी पृष्ठभूमि (background) में दिखाया है। यह गुण अधिकतर अजता के चित्रो में अपनाया गया है, इस प्रकार के चित्र अधिकतर पश्चिमी देशों में बनाये गये है। यहाँ पर कलाकारो की रेखायें केवल वस्तुओ को दिखाने के साथ ही उन्होंने यहाँ पर जड पदार्थ को भी चेतन कर दिया है। अजता के चित्रों की रेखायें विश्व की चित्रकला में अनुपम तथा अद्वितीय हैं।

समय तथा दूसरे कारणों से यहाँ के चित्रो के रगो की प्रकृति (Tone) की कोमलता तथा हलके रंगो का प्रयोग बहुत कुछ नष्ट हो गया है। यहाँ पर रंगो की प्रकृति (Tone) एव उनका प्रयोग गोलाई को दिखाने में किया गया है। रगों की गहराई तथा विस्तार एक प्रकार की खुशी अवश्य हो सकती है जैसे नीले तथा हरे रग को बैंजनी रग के विपरीत प्रयोग में लाया जाये तथा शरीर के रगों पर गाढे तथा चमकीले रगों के कपडे चित्र में दिखाये जायें, जिससे केवल रगों की हलकी प्रकृति तथा काली सतह ही अब दृष्टिगोचर होती हैं। रंगों के भागों के गुणो का विवेचन कलाकार द्वारा 17वी गुफा में महाममसा जातक (भगवान बुद्ध की जन्मकथा) की कहानियो में बहुत सुदर ढग से गुलाबी एव स्लेटी रगो की शुद्ध प्रकृति द्वारा किया गया है। इसमें रगो की व्यवस्था बहुत सुदर है। अजन्ता के भित्ति चित्रो की शैली में अमिश्रित रगों (Tempra) तथा भित्ति चित्रो का सम्मिश्रण है। इन चित्रों में रगों के द्वारा छाया एव प्रकाश, प्रतिमाकन (Modelling), प्रभावोत्पादता (Values) तथा उभार सुदर ढग से व्यक्त किया गया है। रगों के विषय मे भी श्री एक्सेल जार्ज ने कहा है कि "अजन्ता के रग इसी विस्तार के अन्य देशों के प्राचीन चित्रों की अपेक्षा अधिक गहरे एव शुद्ध हैं।" इन चित्रों में स्थानीय मिट्टी तथा पत्थर द्वारा बनाये रंगों का प्रयोग किया गया है जिनमें गेरु, मुलतानी मिट्टी, रामरज, काजल, हरा रंग और नीले रग का प्रयोग किया गया है। नीले रग के लिये नीले पत्थर (लाजवर्त) का प्रयोग किया है। परन्तु नीले रग का प्रयोग बहुत ही कम स्थानों पर किया गया है विशेषकर यह रग चौथी तथा पाँचवी शताब्दी के चित्रों में ही दिखता है। यहाँ पर भूरे रग का प्रयोग अधिक हुआ है। ऊपर लिखे कारणों

से उस समय बहुत ही कम रंग कलाकारों को मिल सके थे इस कारण इन चित्रों में बहुत ही कम रंगों का प्रयोग दिखता है। अजन्ता के चित्रों को बनाने से पहले स्थल को पानी से गीला कर लिया जाता था, फिर इन रंगो का हल्का तथा गहरा रंग उनमें आवश्यकतानुसार भर दिया जाता था।

9वी गुफा के चित्र सबसे पहले के हैं परंतु उनमें भी कला अपनी चरम सीमा पर दिखती है। उनमें चित्रों की प्रारंभिकता नही दिखती हैं। इन अजंता के प्रारंभिक चित्रों में चित्र की साधारण तथा गहन शैली को बढ़ावा दिया गया है। यहाँ पर भावना तथा ओजस्वी रूपरेखा के द्वारा चित्रों की शैली सफलता पूर्वक व्यक्त की गई है। ये चित्र परंपरा से मुक्त है। चित्रों में विषयों की पुन-रावृत्ति हुई है परतु उनमें भी चित्रकारो का स्वतंत्र कौशल दिखता है। इन चित्रों में रूढ़िवादिता केवल अलंकारिक चित्रों में ही दिखती है फिर भी चित्रों मे मौलि-कता है। ये चित्र कलाकार की वास्तविक तथा उदात्त कलाकृति के अच्छे उदा-हरण हैं। इस चित्रावली को रेखाओं तथा रंगो की भिन्नता के आधार पर कई शैलियों में विभाजित किया जा सकता है।

कुछ अकेली आकृतियाँ यहाँ पर कुशलतापूर्वक बनाई गई है जिनमें हाथों की गति बहुत सुदर ढग से दिखाई गई है। 10वी गुफा के खम्भे पर अकेली आकृति बनी हुई है जिसका कपडा गाधार शैली मे बना है और उसकी मुद्रा सादी एव क्लासिकी (Classical) है। यह आकृति अजन्ता के प्रारभिक चित्रों से अधिक स्वास के भावो को व्यक्त करती है। भारतीय कला मे आकृति या आकार स्वाँस के विचार मे सोचा जाता है, यह स्थान एव समय से स्वतन्त्र होता है जो यहाँ के चित्रो में स्पष्ट है। अजन्ता के चित्रो मे आकृतियो की परछाई नही दिखाई गई है, ऐसा भास होता है कि आकृतियाँ अपने ही प्रकाश से प्रकाशमान है, केवल कही-कही प्रकाश तथा छाया को प्रयोग में लाया गया है। जहाँ पर उनकी आवश्यकता है वही पर उनका प्रयोग किया गया है। लॉरेन्स (Lorence) ने अजन्ता की मनुष्य आकृतियो की बहुत प्रशसा की है। अजन्ता के चित्रों में नारी के आदर्श रूप का चित्रण किया गया है, एव उनको बहुत ऊँचा स्थान दिया गया है। यहाँ पर नारी मूर्तियों का प्रदर्शन कला की देवियों के समान किया गया है। नारी का चित्रण मानवीय रूप में न कर सैद्धान्तिक रूप में किया गया है जिसे सार्वभौतिक रूप का प्रतीक माना गया है। अजन्ता के चित्रों का सीमाहीन सौंदर्य नारी के रूप में चित्रित किया गया है जो यहाँ पर आध्यात्मिकता की परिचायिका हो गई है। यहाँ पर नारी रूप को गौरव तथा गरिमा की विभूति बनाया गया है। यहाँ पर स्त्री के बालों को भिन्न-भिन्न प्रकार से बनाये दिखाया गया है। यहाँ पर परियों का चित्रण भी बहुत सुदर किया गया है, उनके उड़ने

की मुद्रा बहुत प्रभावशाली है। ऐसा लगता है कि जादू के द्वारा उन्होंने गुरुत्वाकर्षण (Gravity) के प्रभाव को समाप्त कर दिया हो। कपड़े, झालरें तथा पताकायें सब पीछे की ओर उड़ते से लगते हैं जैसे वे हवा के बहाव में हों। इन चित्रों में आकृतियों को पूरे स्थान में घूमने की स्वतंत्रता है। आकृतियों को सपरिमाण (Perspective) किसी विशेष स्थान पर बाँधता नही है, न ही समय उसको किसी विशेष क्षण में रोकता है। यहाँ पर भूत, भविष्य तथा वर्तमान सब एक साथ ही चित्र में बनाये गये है, इस प्रकार से यहाँ पर समय तथा स्थान पुर्नजागरण (Renaissance) की पश्चिमी परपरा से पूर्णरूप से स्वतंत्र है। यहाँ पर दृष्टि सबधी ज्ञान (Sense of Perspective) भ्रममात्र है। इन चित्रों में समपरिमाण प्रत्याशित नही बल्कि वह पूर्ण या काल्पनिक है। यहाँ आकृति पर बाहरी बंधन नही है पर आतरिक बधन है। जहाँ पर आतरिक बधन समाप्त हो जाता है वहा चित्रकारी का अत हो जाता है। ये चित्र कम आदर्शवादी है। इनमें नाटकीय भावना अधिक है इस कारण ये क्रियाओ से भरे हुए हैं। इसका उदाहरण 17वी गुफा के भगवान बुद्ध के जन्म, मृत्यु तथा जीवन से संबंधित चित्र है। 16वी तथा 17वी गुफा के चित्र छठी सदी की बौद्ध कला को दिखाते है। ये अपूर्व है। इसमें आकृतियों को मेरु मदिर की वास्तुकला से मिला कर बहुत सुदर ढग से काटा गया है। 17वी गुफा में ठोस पहाड को सुदर ढंग से काटा गया है जिससे वह एक वास्तुकला का भाग बन गया है। इसके अलकृत फाटक सतरियो के समान खडे मालूम होते है। लोमासाऋषी की गुफा घोडे के नाल के आकार का सबसे पहला उदाहरण है। चैत्य गुफाओ के पत्थर अवतल (concave) आकार के बने हुए है जो लकडी के आदिरूप (Prototype) का भास कराती है। यहाँ पर इमारतें हल्की एव काल्पनिक ढग से बनाई गई है जो बौद्ध कला की विशेषता है। 17वी गुफा में लोगों से सीधे पुर्नविचार की प्रार्थना करते हुए चित्र बनाये गये है, जो भित्ति चित्रो के द्वारा सचित्र (Pictorial) सदेश देते जान पड़ते है।

दूसरी गुफा के चित्र खोतान के चित्रों के समान लगते हैं जिससे वे अजता के चित्रों से भिन्न है एव सबसे बाद के बने जान पडते हैं। एक आलोचक ने इन चित्रों को गुप्तकाल के व्यवहार चित्र बताया है, जिसका समय 320 ई० कहा जाता है। इन्हे तपस्वी की गहनता एवं प्रेम सबंधी सुंदरता के बीच के भावों का माना गया है। यहाँ पर भाव उस समय के रहन-सहन से प्रभावित जान पडता है एवं इनमें महापुरुष के भाव को प्रधानता दी गई है। अजंता के चित्रों को एलोरा के हिंदू धर्म के अर्धचित्रो (reliefs) से भिन्न दिखाया गया है हालाँकि देखने में ये दया के भाव से युक्त हैं। बौद्ध धर्म में स्त्री को करुणा का रूप दिया गया है न कि भीरु रूप, परंतु हिंदू धर्म का पुरुष रौद्र, भयानक,

मांसपेशियों से युक्त माना गया है, इनके स्वरूप में भी पुरुष के ओठों से मुस्कान दृष्टिगोचर होती दिखती है।

अजंता के चित्रों में जीवन की विविधताओं का चित्रण है जैसे भौतिक तथा आध्यात्मिक भावों का। इनमें गाँवों के शान्त वातावरण से शहर के कोलाहल-पूर्ण वातावरण का चित्रण मिलता है। रक से राजा तक के भिन्न सामाजिक पक्षों के जीवन के वास्तविक रूप का चित्रण है। रहन-सहन, आमोद-प्रमोद, वेष-भूषा इत्यादि को चित्रित करके गुप्तकालीन सस्कृति का परिचय दिया गया है। अजता के चित्रों का हर पहलू शाश्वत एव सजीव है। हालाँकि ये चित्र 1300 वर्ष पूर्व के हैं परतु उनकी नवीनता तथा सजीवता अभी तक व्यापक है। समय-समय पर भारतीय कलाकारों ने इनसे प्रेरणा ली है और ले रहे हैं, इसी से जैन, राजपूत, मुगल तथा पहाडी शैलियों का जन्म हुआ। यही से कला बाघ, सित्तानवासन, बादामी तथा एलोरा में पहुँची। इन ऊपर दिये गुणों के कारण ही बौद्ध कला के चित्रों को भारतीय कला में एक अलग उच्च स्थान प्राप्त हुआ। ये चित्र केवल भारत में ही नही बल्कि लका, चीन तथा जापान के भी बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये बनाये गये। भारतीय कला में यतित्वता या आरोहणता (Ascenticism) तथा इन्द्रियजनिता (Sensuousness) का खिचाव सर्वदा एक-सा ही दिखता है। आलोचको को इसे केवल गुप्तकाल के अजंता के चित्रों में नही देखना चाहिए।

अजता के भगवान बुद्ध के जीवन सबधित चित्रो के सयोजन इस प्रकार हैं—

1 पहली गुफा—'मार दर्शन', 'बोधिसत्व', 'इन्द्र तथा शची', फारस के राजदूतों का सुदर चित्रण है एव प्यार के दृश्य छतों पर दिखाये गये हैं।

2 दूसरी गुफा—श्रावस्ती की अद्भुत घटना का चित्रण, किसन्तेवाडिन जातक की कथा, इद्रलोक के दृश्य एव छते अलंकृत है।

3 सोलहवी गुफा—भगवान बुद्ध के त्याग का दृश्य, मृत्युशय्या पर पडी राजकुमारी इत्यादि। इस गुफा का कुछ भाग बॉस्टन के संग्रहालय (Boston Muscum) में है।

4 सत्रहवी गुफा—साल भगवान बुद्ध की मूर्तियाँ, करणता का चक्र (Wheel of Causation), महाहमसा जातक, मत्रपोसक, सतन्त, सिवि जिनमें शिला-लेख लिखे है, विश्वस्त्र जातक तथा परियाँ चित्रित हैं। इसमें भी छतें अलंकृत हैं।

5. नवी गुफा—राहुल एव यशोधरा का चित्र (माता-पुत्र चित्र)।

6. दसवी गुफा—खंभों के अलंकृत आलेखन, चौथी सदी का भगवान बुद्ध का चित्र, 'षडदंत जातक'।

अजंता के चित्रों की बनाने की विधि

ये चित्र भित्ति चित्र हैं। इनमें अमिश्रित (Tempra) रंगों का प्रयोग किया गया है। इन रंगों को पत्थर तथा मिट्टी से बनाया गया है। इनमें थोड़ा-सा गोंद मिलाया जाता है परंतु इनमें किस प्रकार के गोंद का प्रयोग है यह अभी तक पता नही लग सका है। स्थानीय मिट्टी (जिसमें कई प्रकार के खनिज रंग रहते हैं) गोबर, तीसी, धान की भूसी तथा गोंद को मिला कर उसका दीवार की सतह पर लेप किया जाता था। इस प्रकार का कई पतला अथवा गाढ़ा लेप दीवार पर किया जाता था, उसके बाद चूने या सफेद पत्थर तथा सीपों को पीस कर उसका लेप लगाया जाता था। इस प्रकार से सतह को समतल होने के बाद इस पर सरेस का पतला लेप लगा देते थे जिससे दीवार रंग पकड़ने के उपयोगी हो जाये। इसके सूखने के बाद अंत में चूने का लेप फिर से किया जाता था। इस प्रकार से चित्र बनाने की सतह तैयार हो गई अब इस पर सीधे ही रगो का प्रयोग किया जा सकता है।

मुख्यत: अजता के चित्रों में खनिज रगो का ही प्रयोग किया गया है जो वहाँ पर आसानी से मिल जाते थे। ये गेरु, हिरौजी, रामरज और लाजवर्त है। सफेद रंग के लिए यहाँ पर सीप को पीस कर उसका प्रयोग किया गया है। ये सभी रग स्थायी हैं।

इन चित्रों को विधि के अनुसार भित्ति चित्र (Frescoes) कहना ठीक नही है क्योंकि भित्ति चित्रो मे ताजे एव गीले लेप का प्रयोग किया जाता है परतु भारत में गीली सतह पर काम करना बहुत कठिन है क्योंकि यह गर्म देश है इस कारण यहाँ पर सूखे सतह पर चित्र बनाये जाते है इस कारण इन्हें सूखी सतह के बने भित्ति चित्र (Mural) कहना अधिक उचित होगा न कि गीली सतह के बने भित्ति चित्र (Frescoes)।

सिजिरिया (लका) के बौद्ध भित्ति चित्र

पाँचवी शताब्दी के कुछ भित्ति चित्र अजता के समान के ही सिजिरिया (लका) के पहाड़ी किलो से भी प्राप्त हुए हैं। सिजिरिया के भी चित्रो में अजता के चित्रों के समान ही रेखा चित्रो (Drawing) को बारीकियों के साथ बनाया गया है। ये भित्ति चित्र (Frescoes) हैं। इनमें गीली सतह पर चित्र बनाये गये है। यहाँ पर हाथों मे फूल या फल अथवा कोई वाद्य यंत्र लिये नारी का चित्रण किया गया है। ये चित्र बहुत सजीव एवं सुंदर बने हैं। हर चित्र में हाथों की मुद्रा बहुत सोच कर बनाई गई है। साथ ही लंबी एव नोकीली अगुलियो को बहुत सुंदर बनाया गया है। कलाकार का परिवर्तन इन चित्रों में कई स्थानों पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

यहाँ पर अप्सराओं का चित्रण है जिनके नीचे का भाग बादलों में छिपा दिखाया गया है। ऐसा लगता है कि खगोलीय का प्रारंभ जान कर किया लगता है। ये अप्सरायें राजकुमारियों की तरह बनाई गई हैं साथ में दासियों को फूलों की थालियाँ लिये दिखाया गया है।

सिजिरिया के चित्र कौशल में अजंता के चित्रों की बराबरी नहीं करते हैं परंतु शान में वे अजंता के चित्रों के समान ही हैं। यहाँ पर भी रेखायें अजंता के चित्रों के समान ही भाव को दिखाती हैं तथा तूलिका का प्रयोग विश्वास-पूर्वक किया गया है। उनकी विशेषता तूलिका को गतिवान ढंग से चलाने में है, यह तूलिका उसी ढग से चलायी जान पड़ती है जैसे शिल्पकला में छेनी चलाई जाती है। इनमें एकदम से प्रवर्त्तकता भी दिखती है। ये चित्र कलाकार के व्यक्तित्व को दिखाते हैं, विशेषकर काम करने की तीव्रता में यह स्पष्ट है। यहाँ आकृतियों का प्रतिमाकन (Modelling) देखने लायक है। यहाँ पर एक स्थान पर बीस नारियों का भावपूर्ण चित्रण है जो सिजिरिया का महत्त्वपूर्ण भित्ति चित्र है।

सित्तानवासन के गुफा चित्र (भित्ति चित्र)

सित्तानवासन की गुफायें मद्रास जिले में तंजावूर एव पुटूकोट्टै के पास कृष्णा नदी के कछार पर बनी है। इनकी खोज 1934 ई० में एम जोवेयन-डूब्रविल द्वारा की गई। यहाँ पर गुफा मंदिर मिले हैं, जिनके अवशेषों से पता चलता है कि उनके भित्ति चित्र बहुत उच्चकोटि के है। इन चित्रों की शैली अजता के चित्रों की शैली के समान है। ये विषय में जैनधर्म के हे परंतु इनकी शैली बौद्ध शैली है। इन जैन चित्रों को उनकी सुन्दरता के कारण महत्त्व दिया गया है। यहाँ पर आकृतियों के भाव-प्रदर्शन की मुद्रायें बहुत मोहक हैं।

अजता एवं बाघ के गुफा चित्रो के समय का ठीक से पता नहीं है, केवल कुछ चित्रों के ऐतिहासिक घटनाओं के चित्रण के कारण उनके समय का अनुमान किया गया है, परतु सित्तानवासन के गुफा चित्रों का समय ठीक से मालूम है ये राजा महेंद्र वर्मा के राज्य-काल में 600-628 ई० के बीच का बना बताया गया है।

पहले सित्तानवासन का यह मदिर पूरा चित्रों द्वारा अलंकृत था परतु इन चित्रों का अब कुछ ही भाग ठीक है। ये चित्र छत तथा खंभों के ऊपरी भागों में बने हैं। दालान की छत पर तालाब एवं उसके बीच मे कुछ कमल के फूलों का चित्रण है जिनके बीच में मगर, घोड़े, हाथी, भैंस तथा तीन आकृतियों का हाथ में कमल की डंडी लिये चित्रण किया गया है। यह चित्र बहुत सजीव है

तथा जैन धर्म की किसी कथा से संबंधित जान पड़ते हैं। खंभों पर विशेषकर नारी के नृत्य की मुद्राओं का चित्रण है। यहाँ चित्रों में रेखाओं की स्वतंत्रता तथा तीव्रता विशेषकर दिखाई पड़ती है।

यहाँ पर एक युगल का चित्र बना है जिसमें पुरुष के मुख से अभिजात्य तथा सम्मानित व्यक्ति का भास होता है, उसके बायें हाथ पर उसकी प्रेमिका का चित्र बना हुआ है। कुछ लोग इसे राजा महेंद्रवर्मा एव उसकी रानी का चित्र बताते हैं। इस चित्र में कलाकार की सफलता उल्लेखनीय है।

यहाँ के चित्रों में प्राचीन परपरा का पूर्ण विकास देखने को हमें मिलता है तथा चित्रों में बहुतायत से अलंकरण किया गया है। यहाँ पर विषय को स्पष्ट करने में चर एव अचर दोनो को ही महत्त्व दिया गया है। इनकी रेखायें भावपूर्ण, गतिमय एव प्रवाहयुक्त गुणों को अजता के चित्रों के समान ही दिखाती है। इस मदिर मे अर्धनारीश्वर शकर की मूर्ति बनी हुई है। इसमें भगवान् के मुख पर दु:ख तथा शांति दोनों ही के भाव स्पष्ट दिखते है।

कुछ लोग पल्लव काल को दक्षिण का स्वर्णयुग भी कहते है। इस काल में सगीत, साहित्य, स्थापत्य तथा चित्रकला को समान रूप से प्रोत्साहन मिला था, इसी कारण सित्तानवासन की गुफा मे स्थापत्य तथा चित्रकला का सुन्दर तथा सफल समन्वय आज भी हमे देखने को मिलता है।

बाघ की गुफाओं के चित्र

ये गुफायें ग्वालियर के पास विन्ध्य-श्रेणी मे बाघ नदी के तट पर बाघ गाँव के समीप ही बनी हुई है। लेफ्टिनेंट डगरल फिल्डको ने 1818 ई० में इन गुफाओ का पता लगाया था, इनके बाद डाक्टर इम्पसी ने इन गुफाओं का अध्ययन लोगों के सामने प्रकाशित किया। कर्नल ल्वारड बाघ की गुफा पर प्रकाश डालने वाले सबसे बड़े ज्ञाता थे। 1923 ई० मे असित कुमार हाल्दार ने अपनी बाघ की यात्रा का वर्णन छापा एवं 1925 ई० मे मुकुलचद ने बाघ की गुफा के चित्रो पर प्रकाश डाला। ये अजता के चित्रो से अधिक परिपक्व है। ये नाजुक एव कोमल भावो के चित्र है। ये सिजिरिया एव अजता के महान चित्रो की बराबरी करते हैं। बाघ के चित्र भी बौद्ध स्कूल की उत्पत्ति माने गये हैं। इन चित्रों का कोई समय नही निर्धारित हो सका है और न ही वहाँ से कोई शिलालेख ही ऐसा प्राप्त हुआ है जो उसके समय को स्पष्ट कर सके और न ही ऐसी कोई ऐतिहासिक घटना का चित्रण है जिससे उसका निश्चित समय का पता चले।

ये गुफायें अजंता से 150 मील दूर स्थित हैं, केवल नर्मदा नदी बीच से उन दोनों को अलग करती हैं। ऐसा जान पड़ता है कि ये गुफायें दो भिन्न राज्यों

के प्राचीन होंगी जिनका कुछ ठीक से पता नहीं है। इनके भित्ति चित्र अजंता के अंत के चित्रों से मिलते जुलते हैं, इस कारण इनका समय पाँचवी या छठी शताब्दी माना जा सकता है। यह भी हो सकता है कि बाघ के सब चित्र एक समय के न हों। इन गुफाओं के बहुत से चित्र नष्ट हो गये हैं जिससे इनका समय निश्चित करना कठिन हो गया है।

पहले इन गुफाओं में बहुत से महत्वपूर्ण चित्रो का संग्रह था। यहाँ की खुदाई में एक 90 × 90 वर्ग फीट क्षेत्रफल का बड़ा कमरा मिला है जिसकी दीवारें, छतें, तथा खम्भे भित्ति चित्रों से भरे हुए हैं पर जिसका अब बहुत थोड़ा सा अवशेष रह गया है। इन चित्रों के विषय केवल धर्म या लौकिक विषय नही हैं। अधिकतर ये निरंतर स्वभाव के हैं, ये किसी भी प्रकार से बौद्ध धर्म के कर्मकांडों से सबंधित नही हैं जैसे एक दृश्य में 'हल्लिसका' (एक प्रकार का गाने के द्वारा दिखाया नाटक) की स्पष्ट व्याख्या की गई है जो उस समय बहुत प्रचलित था। बौद्ध धर्म की अवनति के युग में जिन विषयों को बौद्ध धर्म में माना जाता था वही यहाँ पर चित्रित किये गय है, इसी कारण इन्हे बौद्ध धर्म के पतन के समय के चित्र भी कहा जा सकता है।

बाघ के चित्र अजता के बौद्ध धर्म के चित्रो के समान ही माने गए हैं क्योंकि उनके विषय अजता की कहानियो तथा जातक कथाओ से लिये जान पडते है इन चित्रो के बनाने की विधि भी अजता के भित्ति चित्रों के समान ही है। इसी कारण इन चित्रो का विषय बौद्ध धर्म ही माना गया है। इनका निर्माण समय समय पर गुप्त राजाओ द्वारा किया गया हालाँकि वैष्णव हिंदू गुप्त राज्य के राजा बौद्ध धर्म को नही मानते थे परतु इस धर्म की अवनति होने पर दूसरे धर्मों का प्रचार प्रारभ हुआ जैसे महायान एव हीनयान, परतु इस सब के होते हुए भी इस समय हिंदू धर्म की उन्नति दिखती है। गुप्त राज्य के पूरे भारत में फैले होने के कारण ही गुप्त काल के काम भी पूरे भारत में हमे बने मिलते हैं।

बाघ तथा अजन्ता के चित्र मुसलमानो के आक्रमणों के बाद भी बच गये क्योंकि ये पहाड़ों में छिपे हुए थे। ये चित्र अनश्वर पहाड़ों की सतह पर बने होने के कारण अभी तक सुरक्षित रह गये एवं इन पर प्रकृति तथा मौसम का कोई प्रभाव नही पड सका।

बाघ में नौ गुफायें है परंतु केवल चौथी तथा पाँचवी गुफाओ के चित्र ही आज स्पष्ट हैं। पहली गुफा गृह गुफा, दूसरी पाडुव गुफा, तीसरी हाथी खाना गुफा, चौथी रंग महल गुफा के नामों से प्रचलित हैं। चौथी गुफा की अनेक प्रतिलिपियाँ आज भी प्राप्त हैं। चौथी एवं पांचवीं गुफा मिला कर 220 फीट

लंबा बरामदा है, जिसमें बीस खभें हैं। छठी गुफा के भी कुछ चित्र ठीक हैं, सातवीं, आठवीं तथा नवी गुफा के चित्र पूर्णत नष्ट हो गये हैं।

बाघ के चित्र भी कई कलाकारों द्वारा बनाये जान पड़ते हैं। इस कारण इनमें भी अजन्ता के चित्रों के समान कई शैलिया दिखती हैं एवं उनके चित्रों में विविधता है। इनमें स्थानीय पत्थरों एव मिट्टी से बनाये रंगों का ही प्रयोग किया गया है।

इन गुफाओ में प्रकृति, पशु, पक्षियो एव मानव का चित्रण बहुत सुंदर एवं सजीव किया गया है। इन चित्रों की रेखायें, रंग आदि बहुत सजीव है।

चित्रो का वर्णन

चौथी गुफा में एक चित्र मे रानी अपनी दासियों के साथ विलाप करती दिखाई गई है। यह त्रित्र बहुत सुदर है। इसमें बहुत सुदर ढंग से दु ख के भावों को व्यक्त किया गया है। एक दूसरे चित्र में दो स्त्रियाँ मण्डप में बैठी दिखाई गई हैं जिसमें से एक नारी सफेद वस्त्र में शोकग्रस्त अवस्था में बैठी है। एक हाथ से वह मुँह ढँके है तथा दूसरे हाथ से अपनी मानसिक अवस्था को प्रकट कर रही है तथा दूसरी पहली को सान्त्वना देती दिखाई गई है। इन चित्रों को कुछ लोग भगवान बुद्ध के विरह में शोकातुर यशोधरा का भी बताते हैं। इस चित्र के ठीक बाहर पेड़ पर दो कपोतों को बैठे दिखाया गया है जिसको देखकर चित्रित दृश्य एकदम आँखों के सामने आ जाता है। यह चित्र बहुत सजीव है। एक दूसरे दृश्य मे चार बैठे हुए पुरुष बनाये गये हैं, ये शरीर पर धोती पहने हुए हैं एव बात करते हुए दो युगलों को चित्रित किया गया है, ये आभूषणों से युक्त हैं। दो व्यक्तियों के सिर पर मुकुट है तथा पाचवा व्यक्ति बौना है इस चित्र की पृष्ठभूमि में उद्यान दिखाया गया है। यह भी भावो को व्यक्त करने में बहुत सफल चित्र माना गया है।

तीसरे दृश्य में दो पक्तियो मे मानव आकृतियाँ दिखाई गई हैं, ऊपर की पंक्ति में छ मानव हैं इनका नीचे का भाग बादलो से ढका हुआ है एव वे बादलों मे विहार करते से जान पड़ते है। ये मानव साधु सतो के समान चित्रित किये गये हैं। नीचे के मानवो में पाच गायिकायें है जिनमें से एक के हाथ में वीणा है। सबके बाल बधे हुए दिखाये गये है एव ये आकृतियाँ आभूषणो से युक्त हैं।

एक अन्य चित्र में नारी गायिकाओ के दो समूहों का चित्रण किया गया है। बाँये समूह में एक स्त्री बीच मे खड़ी चित्रित की गई है और सात नारियाँ उसके चारो ओर नाचती सी जान पड़ती है। दूसरे समूह में भी एक गायिका के चारों ओर घेरे मजीरा, डडे, मृदग, ढोलकी इत्यादि लिए आकृतियाँ चित्रित की गई

हैं। ये दोनों ही चित्र एक अलग दीवार पर बनाये गये हैं। ये चित्र अजन्ता की पहली गुफा के चित्रों से मिलते जुलते है। ऐसा जान पड़ता है कि दोनों ही चित्र एक दूसरे के भाव हैं। इस चित्र में अजन्ता के चित्रों की कोमलता विद्यमान है तथा भाव में भी वे अजन्ता के चित्रों के समान हैं।

एक चित्र में सत्रह सवारों को घोड़े पर दिखाया गया है जो पाँच या छ की कतारों में हैं, उनके बीच का सवार छत्र लगाये हुए है। एक अन्य मनुष्य उन लोगों की ओर देखता सा जान पडता है, ऐसा भास होता है कि उसका घोडा खो गया है। इस चित्र में घोडो का चित्रण प्रशंसनीय है, इससे बढ़ कर घोडों का सजीव चित्रण दुर्लभ है। यह दृश्य मौलिकता का अच्छा उदाहरण है।

एक अन्य चित्र मे हाथियों का जाता हुआ झुण्ड चित्रित किया गया है जिसमें हाथियो की उदार गति दिखायी गयी है। बहती हुई पवन का उन पर कोई प्रभाव नही जान पडता है। हाथियों की आकृतियाँ पूरे स्थान पर घूमती सी जान पड़ती है। ये चित्र हाथियो के संसार का प्रदर्शन करते हैं। ये हाथी भी बहुत सुंदर चित्रित किये गए हैं। फाहियान ने कपिलवस्तु के महल को बौद्धधर्म का तीर्थ स्थान माना है। यहाँ के एक चित्र में भगवान बुद्ध सफेद हाथी की सवारी करके अपनी माता के बगल में आये चित्रित् किये गये हैं। यह भी बहुत सजीव चित्र है एव इसमे भी हाथी का बहुत सुदर चित्रण किया गया है।

एक चित्र में कुछ स्त्रियो एव एक मनुष्य को हाथी पर सवार चित्रित किया है। इसमें हाथी का सौंदर्य एवं गति आकर्षक है। यह दृश्य बाघ की गुफा का सर्वोत्तम दृश्य है।

एक चित्र गुफा के द्वार पर बना है जिसमे तथागत की मूर्ति के आगे कुछ स्त्री आकृतियाँ झुक कर प्रणाम सा कर रही है।

यहाँ पर पशु-पक्षियों का बहुत सुदर तथा स्वाभाविक चित्रण किय गया है। बैलो का यहाँ पर बहुत सुदर चित्रण है जिसे पृथ्वी की समृद्धि का सूचक माना गया है एवं हाथी को मगल का सूचक माना गया है इस कारण जान पड़ता है कि पशुओं के चित्रण में बाघ के कलाकारों का विचार लोक मगल की ओर अधिक होगा।

एक अन्य चित्र मे राजा को कोई समारोह करता दिखाया गया है। इस चित्र में हर्ष का भाव बहुत स्पष्ट है।

तीसरी गुफा में झूले में झूलती बालिका का चित्रण है। दूसरी तथा चौथी गुफा के छतों पर कुछ नमूने बने हैं जो अजंता के नमूनों से मिलते-जुलते हैं।

बाघ के चित्रों की विशेषतायें

बाघ के कुशल कलाकारों ने बौद्ध धर्म के विषयों के चित्रण में अजंता के समान ही सफलता प्राप्त की है। आकृति के भावों को कुशलतापूर्वक चित्रित किया है। यहाँ पर कमल के फूल का चित्रण भारतीय चित्रकला की परंपरा का अनुसरण करता दिखता है। यहाँ पर चित्रों के अलंकरण को महत्व दिया गया है। नारी का चित्रण भी अजंता के चित्रों से कम नहीं दिखता है इस कारण यह कहा जा सकता है कि ये चित्र अजंता की चित्रकला से अलग नहीं है।

बादामी के गुफा चित्र

ये गुफाएँ बम्बई प्रांत में ऐहोल नामक स्थान के पास स्थित हैं। ये चालुक्य राजाओं द्वारा बनाई गई थी। इसका प्रमाण बादामी की तीसरी गुफा के समय 578 ई० से मालुम होता है। इन चित्रों का समय भी अजन्ता के चित्रों का ही समय माना गया है। इन गुफाओं के चित्र शैव धर्म के माने गये हैं परतु सामाजिक एवं ऐतिहासिक घटनाओं का चित्रण यहाँ अधिक मिलता है। यहाँ के अधिकाश चित्र नष्ट हो गये है फिर भी ये चित्र दर्शको को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। इन चित्रो स प्राचीन परपरा का ह्रास होता जान पडता है। इनमे अनुपात का उपयोग भी बहुत कम किया गया है। रग भी यहा सीमित लगे हैं। आकृतियों में प्रखरता है। यहाँ के चित्रो मे चालुक्य कला विशेषकर दिखती है परंतु विष्णु की आकृति तथा खभो के कोष्टक (brackets) गुप्त काल की उत्पत्ति दिखाते है, परतु बादामी की वास्तुकला (Architecture) पर पल्लवो का प्रभाव स्पष्ट दिखता है। यहाँ के गुफा मदिरों के भित्ति चित्र अपने समय की सब से अच्छी कृतिया मानी गई हैं। यहा पर भी नारी का चित्रण उच्च कोटि का किया गया है।

यहाँ पर नृत्य की मुद्रा मे नग्न शिव का चित्रण किया गया है। यह भाव मे युक्त है। इस चित्र में नृत्य का पूरा आनद मिलता है एव इस चित्र का विषय शिव तथा पार्वती का प्रणय है।

एक अन्य चित्र में विरह युक्त स्त्री का चित्रण है एव एक दूसरे चित्र मे राज समाज के नृत्य का चित्रण है। इसमें राजा एव रानी सिहासन पर बैठ कर नृत्य का आनद ले रहे है एव दासियाँ उनके पीछे खडी हैं। यह बहुत सुदंर चित्र है। एक अन्य चित्र मे कुछ स्त्रियाँ झरोखे से देखती चित्रित की गई हैं, ये एक किशोर युवक का आपस में मजाक कर रही जान पड़ती हैं। इस चित्र में भी भाव को प्रधानता दी गई है।

बाघ में चार गुफायें है। पहली गुफा में शिव के अभ्युचित्र बने हुए हैं, दूसरी एवं तीसरी गुफा में विष्णु का मंदिर बना है एवं चौथी गुफा जैन धर्म के गुरुओं की मूर्तियों से सुशोभित है। पहली तीन गुफायें छठी शताब्दी की हैं तथा चौथी गुफा सातवीं शताब्दी की है।

गुप्तकला में एलोरा एवं एलीफैंटा को भी बहुत महत्त्व दिया गया है।

एलोरा

यह अजंता से 50 मील की दूरी पर स्थित है। यहाँ पूरे पहाड़ को काट कर एक सुंदर मंदिर बनाया गया है। इनका समय 8 वी से 10 वी शताब्दी के बीच का माना गया है। यह अपने ढंग की अलग ही चित्रावली है। इन भित्ति चित्रों में कैलाश नाथ, लकेश्वर, इद्रसभा तथा गणेश भगवान के चित्र विशेष उल्लेखनीय हैं। ऐसा जान पड़ता है कि ऐलोरा के चित्रों के बनने के बाद अजंता की शैली का ह्रास होना प्रारभ हुआ होगा।

यहाँ के सभी मंदिर बाहर एवं भीतर से चित्रित है। इन आकृतियों के चेहरे सवा चश्म बनाये गए है एव नाक बहुत लबी बनाई गई है। दूसरी आँख चेहरे के बाहर निकली हुई दिखाई गई है। यहाँ पर बादलो के चित्रण में अजंता का सौंदर्य नही दिखाता है। इन चित्रों में गति स्पष्ट दिखती है।

यहाँ के चित्रों में कमल का आलेखन भी है जिसमें हाथी, मछली, फूल एवं अप्सराओं का चित्रण किया गया है। इन चित्रों के चारों ओर चौडा हाशिया है जिनमें अनेक दृश्य चित्रित हैं। यहाँ पर देव बालाओं की आकृतियाँ प्रशंसनीय है। यहाँ पर कुछ जैन विषय के भी चित्र बने हैं। यहाँ पर चित्र निरतर न हो कर अलग-अलग हाशियें में बँधे हैं।

एलिफेंटा

इसका वास्तविक नाम घारानगरी है। इसे यह नाम पुर्तगालियों द्वारा यहाँ पर बने पत्थर के हाथी के कारण दिया गया। पाँचवी तथा छठी शताब्दी में आर्यावर्त की स्थापना हुई जिसमें एकता के भाव का स्पष्ट भास होता है। इस समय समाज में वर्णों की उत्पत्ति हो गई थी और समाज चार भागों में बँट गया था। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य समाज का अंग हो गया था, और वह अपने वर्ग का पालन ठीक प्रकार से करता था। ब्राह्मण पूजा एव शिक्षक वर्ग था, क्षत्रिय रक्षा करने वालों को कहते थे, वैश्य व्यापारिक वर्ग माना जाता था तथा शूद्र नीच काम करने वालों को पुकारा जाता था। ये इसी क्रम से एक दूसरे से ऊँचे

समझे जाते थे। इसी पर भारत की कला का मूल सिद्धांत निर्भर करता था और इन्ही के द्वारा एलिफेंटा, एलोरा, महाबलीपुरम् तथा पट्टाडिकल की स्थापना हुई। यह युग भारत की सभ्यता का महान युग माना गया है। इस प्रकार यहाँ पर हिंदू धर्म का विषय लिया गया है न कि बौद्ध धर्म का और इसी कारण यहाँ पर हिंदू देवी देवताओं की मूर्तियों की भरमार हुई।

यह भी बम्बई प्रांत में स्थित है तथा ये मंदिर पहाड़ियों को काट कर बनाये गये हैं। यहाँ पर नौ बड़ी प्रतिमायें हैं जो भगवान शंकर के विभिन्न रूपों तथा क्रियाओं को दिखाती हैं। इनमें शिव की 'त्रिमूर्ति' प्रतिमा सबसे आकर्षक है। यह 23 या 24 फीट लबी तथा 17 फीट ऊँची है। इस मूर्ति में शंकर के तीन रूपों का चित्रण किया गया है। इस मूर्ति में शकर भगवान् के मुँख पर अपूर्व गंभीरता दिखती है, नीचे का ओठ इसमे मोटा एव निकला हुआ है। यह मूर्ति विशेष महत्त्वपूर्ण मूर्ति मानी गई है। दूसरी मूर्ति शिव के 'पंचमुखी परमेश्वर' की है जिसमें मुँख पर शांति तथा सौम्यता का राज्य है। एक अन्य मूर्ति शंकर के अर्धनारीश्वर की है जिसमें दर्शन तथा कला का सुन्दर समन्वय किया गया है। इस प्रतिमा में पुरुष तथा प्रकृति की दो महान शक्तियों को मिला दिया गया है। इसमें शकर तन कर खडे दिखाये गये है तथा उनका हाथ अभय मुद्रा में दिखाया गया है। उनकी जटा से गंगा, यमुना एव सरस्वती की त्रिधारा बहती हुई चित्रित की गई है। एक मूर्ति सदाशिव की चौमुखी में गोलाकार है। शिव के भैरव रूप का भी सुन्दर चित्रण यहाँ पर किया गया है तथा ताडव नृत्य की मुद्रा में भी शिव भगवान् को दिखाया गया है। यह मूर्ति भी विशेष महत्त्वपूर्ण है। इस दृश्य में गति एव अभिनय है। इसी कारण बहुत लोगों के विचार से एलिफेंटा की मूर्तियाँ सबसे अच्छी तथा उन्नतिशील मानी गई हैं। यहाँ पर शिव एव पार्वती के विवाह का भी सुन्दर चित्रण किया गया है।

मध्यकालीन युग की मूर्तिकला में अकेली आकृतियों के उदाहरण हमें बहुत कम देखने को मिलते है। परंतु इस युग के अच्छे उदाहरण एलिफेंटा की मूर्तियाँ हैं। ये गुफायें पूर्व मध्यकाल की मानी गई है। इस काल की मूर्तियों में गुप्त काल की मूर्तियो की विशेषता विद्यमान है तथा इनमें जो घटनाओं के बड़े-बड़े दृश्य अंकित किये गये हैं वह इस काल की निजी विशेषताओं के सूचक हैं।

आठवी शताब्दी के बादभित्ति चित्रो का स्थान छोटे-छोटे चित्रों ने ले लिया, जिनके दो प्रधान केंद्र हो गये बगाल एवं गुजरात। बंगाल केंद्र नौवी से बारहवी

शताब्दी तक रहा तथा गुजरात केंद्र ग्यारहवीं से सोलहवीं शताब्दी तक रहा। ग्यारहवीं से बारहवीं शताब्दी में बौद्ध धर्म के 'प्रज्ञापारमिता सूत्र' के ताड़पत्र पर कई दृष्टांत चित्र बने। गुजरात शैली में दो प्रकार के दृष्टांत चित्र बने—एक ताड़ पत्र पर तथा दूसरे कागज पर। 13 वीं शताब्दी के अंत तक पहली शैली वर्तमान रही तथा दूसरी शैली 1350 ई० से 1450 ई० तक अपनी चरम सीमा पर रही।

●

अध्याय 7

दक्षिण भारत की कला तथा वास्तुकला

800 ई०-1563 ई०

उत्तरी भारत पर सर्वदा सीमांत प्रांतों से विदेशियो के आक्रमण होते रहते थे, इस कारण उत्तरी भारत की कला एव सम्यता पर विदेशियों का भिन्न-भिन्न प्रभाव पड़ता रहता था, परतु दक्षिण भारत इस प्रभाव ने बचा रहा, इसी कारण दक्षिण भारत में कला तथा सम्यता में अधिक परिवर्तन नही हुए। वहाँ पर उत्तरी भारत का प्रभाव बहुत धीरे-धीरे जाता था इसी कारण दक्षिणी भारत की कला तथा वास्तुकला में केवल प्रारभिक परिवर्तन ही हुए, इसी से दक्षिण भारत की कला में उन्नति बहुत सीमित हुई। इसी कारण से मुगल कला भी उत्तरी भारत में अधिक उन्नत हुई न कि दक्षिण भारत में। मुगल प्रभाव दक्षिण भारत में गया अवश्य परतु बाद में। दक्षिण भारत में कला के बहुत से स्थान अभी तक लोगों को नही मालूम है क्योकि ये गुफा, पहाड़ों तथा जगलों में छिपे हुए हैं।

तीसरी सदी में उत्तरी भारत की कला पर कोई यूनानी प्रभाव नही था परंतु उत्तरी भारत की कला ने अधिकतर गुप्त आदर्शों को बिना उत्साह के अपना लिया था। उस समय की गुप्तकला तथा सम्यता बहुत उन्नत थी। इस कारण दक्षिण भारत की कला ने भी उसका प्रभाव अपने में लिया एव इसी से दक्षिण भारत की कला पर भी उस समय की गुप्त शैली का प्रभाव अधिक मात्रा में दिखाई देता है। इस प्रभाव के कारण ही दक्षिण भारत की कला उत्तरी भारत की कला से अधिक अलकृत हुई। आकृतियाँ मौलिक रूप में करीब-करीब एक-सी बनी, केवल दक्षिण की मूर्तियाँ अधिक अलंकृत बनाई गई, क्योंकि उन पर स्थानीय कला का प्रभाव था और साथ ही वे गुप्त कला पर भी निर्भर थी। गुप्त काल के समाप्त होने पर राज्य छोटी-छोटी रियासतों में बँट गया तथा उनकी कला पर स्थानीय कला का प्रभाव अधिक हो गया, इन राज्यों की कला गुप्त कला पर निर्भर होते हुए भी भिन्न-भिन्न हो गई। इस कारण दक्षिण भारत से कई प्रकार की कलायें प्राप्त होने लगी जिनका नाम उनके राजवंशों के नाम पर दिया गया परतु इनमें से प्रारंभिक दो कलायें विशेष महत्त्वपूर्ण कलायें हुईं, इनके नाम निम्नलिखित हैं —

1. पल्लव कला—300-880 ई० तक।
2. चालुक्य कला—500-757 ई० तक।
3. चोल कला—850-1267 ई० तक।
4. राष्ट्रकूटों की कला—758-973 ई० तक।
5. होसला कला—1110-1294 ई० तक।
6. विजयनगर कला—1316-1563 ई० तक।

यदि भारतीय कला को दक्षिण शैली का योग न मिला होता तो दसवीं से चौदहवी शताब्दी के बीच की भारतीय चित्रकला का इतिहास अज्ञात ही रहता। दसवी से चौदहवी शताब्दी की भारतीय कला दक्षिण भारत में ही सुरक्षित थी, क्योंकि उस पर विदेशियों का प्रभाव नही पड़ा था। समय की परिस्थितियों के कारण उत्तरी भारत में कला करीब समाप्त-सी हो गई थी परंतु दक्षिण भारत में वही कला सुरक्षित थी। दक्षिण की समृद्ध कला से ही हम उत्तरी भारत की उन्नत कला का अन्दाज लगा सकते हैं। दक्षिण भारत के लोग मूर्ति-कला एव चित्रकला दोनों में ही समान रूप से रुचि लेते थे।

1 पल्लव कला—300-880 ई०

हूणों के आक्रमणो के बाद दक्षिण भारत में दो मुख्य राज्यों की स्थापना हुई जो पल्लव तथा चालुक्य राज्यो के नाम से विख्यात हुए। 300-880 ई० में कान्जीवरम की पल्लव जाति ने अपना राज्य समस्त दक्षिण भारत में फैलाया। इस युग में गुप्त कला एवं सभ्यता दक्षिण भारत में केवल राज्य के सभ्य समाज का रूप बन कर रह गई। केवल पल्लव राज्य ही दक्षिण भारत की कला के जन्मदाता माने गये तथा चालुक्य राजा दक्षिण एवं उत्तरी भारत की कला के मध्यस्थ माने गये, जिन्हे दक्षिण भारत की शैली को रूप देने का उत्तरदायित्व प्राप्त है। दसवी शताब्दी में दक्षिण भारत की कला को प्रेरणा चालुक्य राजा महेंद्र वर्मा प्रथम (600-630 ई०) के द्वारा प्राप्त हुई। इसी कला को बाद में पल्लव राज्य में स्वतंत्र रूप मिला, क्योंकि पल्लव राजाओं की कला तथा साहित्य में पूर्ण रुचि थी। पल्लव सभ्यता सातवी तथा आठवी शताब्दी की महत्त्वपूर्ण सभ्यता मानी गई है। हिंदू धर्म के प्रचार में इसने बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

पल्लव कला पर वंगी स्कूल का अधिक प्रभाव पडा। लोगों के विचार से पल्लव राजाओं ने कला में कोई विशेष योग नही दिया, परंतु उनकी सभ्यता में बहुत उन्नति हुई इसका कारण उनका ममेलिपुरम बदरगाह था। जिसके द्वारा इन्होंने अपना व्यापार बाहरी देशों से स्थापित किया विशेषकर लंका तथा

जावा द्वीपों से। पल्लव तथा चालुक्य राजाओं में शत्रुता थी इस कारण उनमें परस्पर स्पर्धा का भाव था। पल्लव वास्तुकला संसार में इतनी विख्यात थी कि चालुक्य राजा विक्रमादित्य द्वितीय कांची की विजय के बाद वहाँ से कलाकारों को अपनी राजधानी पट्टाडिकल में मंदिर बनवाने के लिए अपने साथ ले गया।

कई शताब्दियों तक लकड़ी, धातु तथा ईंटों की इमारतें बनती रही, इन्हें पल्लव राजाओं ने पत्थर तथा गुफा मदिरो में बदल दिया। इन गुफा मदिरों की बराबरी चालुक्य राजा पुलकेसिन द्वितीय (609-642 ई०) द्वारा बनाये मंदिर नहीं कर सके। पल्लव शैली में राजा महेंद्र वर्मा प्रथम ने कांची के पास गुफा मंदिरों का निर्माण करवाया। ये शिवलिंग के मदिर हैं। यहाँ पर प्रार्थना के बड़े कमरे में सादे खभे बने है। इनकी वास्तुकला गुप्त कला से ली हुई जान पड़ती है।

दूसरी प्रकार की पल्लव शैली ममेलिपुरम के राजा नरसिंह वर्मा भमला द्वारा बनाये रथो एवं गुफा मदिरों में मिलती है। यहाँ भी हमें गुप्त कला का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पडता है। यहाँ की कला में गुप्तकला तथा हिंदू कला आपस में मिल कर एक हो गई और एक नई शैली का जन्म हुआ।

गुप्त कला हमे पल्लव मूर्ति कला मे भी स्पष्ट दिखाई पडती हैं। पल्लव मूर्ति कला के अच्छे उदाहरण महेंद्र वर्मा के राज्य से प्राप्त हुए हैं। इन मूर्तियों की झांकी गुफाओ के मदिरो मे भी हमे देखने को मिलती है, ये ऐहोल के चालुक्य मदिरों की मूर्तिकला से भी हल्की दिखाई पडती है।। इस समय की कोई भी अच्छी मनुष्य आकृति नही मिली है। कही पर भी मूर्तियो का आतरिक खिचाव नही दिखाई पडता है जो गुप्पकाल की मूर्तियों का विशेष गुण है।

ममेलिपुरम—यह कांची के समुद्रतट पर बसा पल्लव राज्य का मुख्य बंदर गाह तथा राजधानी थी। इसका निर्माण सातवी तथा आठवी शताब्दी में राजा महेन्द्र वर्मा प्रथम (600-625 ई०) के राज्य काल में माना जाता है। यहाँ पर पत्थरो को काट कर मदिर बने हैं यहाँ का सबसे पुराना रथ ममेलिपुरम के मंदिर का है। इन्हे सात मेरु मदिर (Pagodas) भी कहते हैं। इसका भी निर्माण राजा महेन्द्रवर्मा प्रथन के ही राज्यकाल में माना गया है। इस नगर का नाम महेन्द्र वर्मा के पुत्र नरसिंह वर्मा प्रथम (625-650 ई०) के द्वारा ममेलिपुरम दिया गया था परंतु आजकल इसे महाबलीपुरम भी कहा जाता है। ममेलिपुरम के मंदिरों को 'रथ' कहा जाता है। ये विशेष महत्त्व के हैं। इनकी गणना अदभुत वस्तुओं में भी की जाती है। इस बदरगाह को पल्लव राज्य में

बहुत महत्व दिया गया है क्योंकि इसी के कारण उनका व्यापारिक संबंध जावा तथा लंका द्वीपों से बना हुआ था। यहाँ के मंदिरों में सबसे महत्त्वपूर्ण दृश्य भगीरथ की तपस्या का दिखाया गया है। यह एक विशाल चट्टान पर बना हुआ है। पल्लव राज्य परिवार की रुचि वास्तुकला में दिखाई पड़ती है। नरसिंह वर्मा का स्थान इसमें सबसे महत्त्वपूर्ण है, इसकी स्पष्टता ममेल्लिपुरम के समुद्रतट के मंदिरों में विद्यमान है। यहाँ के मंदिरों से बहुत से अभ्युचित्र (Reliefs) प्राप्त हुए हैं, जिनमें कमल पर बैठी देवी लक्ष्मी, देवताओं द्वारा विष्णु की उपासना तथा पहाड़ों को काट कर बने अभ्युचित्रो में 'गंगावतरण' तथा 'अर्जुन की तपस्या का भाव' विशेष उल्लेखनीय है। ये मूर्तियाँ चिपटे डौल के अभ्युचित्रों (Low Reliefs) में बनी हुई हैं। यहाँ से कुछ गोलाकार मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं जो कि पशुओं की हैं जैसे बैल, हाथी, शेर तथा जूं निकालते हुए बंदरों की विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। ये मूर्तियां सजीव जान पड़ती हैं। इनका शरीर कोमल तथा पतला बना हुआ है। पतले शरीर को ही यहाँ पर बढ़ा कर बनाया गया है। इनके कपड़े इतने पतले बनाये गये हैं कि कई बार एकदम नही दिखाई पड़ते हैं, ये मूर्तियाँ ऊचे मुकुट पहने हुई हैं। यहाँ पर देवी तथा देवताओं को बहुत सुंदर ढंग से बनाया गया है। राजा एव रानियों की मूर्तियाँ आर्कषक हैं। इनकी शैली अंत की गुप्त शैली के समान है साथ ही इन्होने अमरावती की शैली को एकदम अपना लिया है। इस समय आकृतियो का शरीर कोमल न बना कर हृष्ट-पुष्ट बनाया गया है। यहाँ से 'दुर्गा तथा महिषासुर' एव 'अर्जुन की तपस्या' की मूर्तियाँ ऊपर लिखे गुण को स्पष्ट करती है। ये मूर्तियाँ गोलाकार हैं। 'अर्जुन की तपस्या' की मूर्ति में सयोजन (Composition) को कमी दिखती है। यहाँ से गोलाकार सात फीट लंबी शेर की मूर्ति मिली है, इसका अनुपात बहुत सुंदर एव परिष्कृत है तथा यह बहुत श्रेष्ठ मूर्ति मानी गई है।

महेन्द्रवर्मा के समय के कुछ भित्ति चित्र यहाँ की जैन गुफाओं के मंदिरों से भी प्राप्त हुए हैं। इनकी शैली छठी शताब्दी की अजन्ता की शैली से समानता दिखाती हैं। यहाँ पर आकृतियाँ हृष्ट-पुष्ट, आधीन की हुई तथा जीवन के भिन्न आनद को दिखाती है। यहाँ पर इनका रेखाचित्र (Drawing) भाव पूर्ण है। कही-कही पर ये ढाँचे के समान भी बनाई गई हैं। कमल के फूल या गोल गहने या कही पर शरीर की आकृतियाँ भी यहाँ पर दिखाई गई हैं। इनमें से दो विशेष महत्त्व के मंदिर है :—

1. कृष्ण गोवर्धन पर्वत को उठाये हुए है।

2. दुर्गा—महिषासुर एवं विष्णु-अनन्तशायन का संयोजन (Camposition)

इसमें सात मेरु मंदिरो का झुंड बना है जो द्रविण शैली में है। ये कुछ-कुछ बौद्ध विहार के समान हैं। इनकी छतों पर बाँसो की वास्तुकला दिखती है जो अभी भी पश्चिमी भारत में कहीं-कहीं पर दिखाई पड़ती है। आठवीं शताब्दी को भारतीय कला में शिरोबिन्दु भी माना गया है। इस समय वास्तुकला, मूर्तिकला तथा चित्रकला सभी की समान रूप से उन्नति हुई थी।

त्रिचनापल्ली—यहाँ से प्राप्त अभ्युचित्र भी पल्लव राज्य के समय के बने माने गये हैं। इनकी शैली बहुत उन्नत है। यहाँ पर शिव भगवान के सामने झुके हुए पाँच बौनों का गोलाकार अभ्युचित्र है, जिसकी शैली बहुत कुछ गुप्त शैली के समान है। मैसूर के बाँस अभ्युचित्र (Bas reliefs) की गोलाकार मूर्तियाँ भी इस उन्नत कला के सामने बहुत अपरिष्कृत हैं।

पाँचवी शताब्दी में चालुक्य राज्य केवल एक साधारण राज्य था परतु छठी शताब्दी में राजा हर्षवर्धन द्वारा यह समाप्त कर दिया गया और हर्षवर्धन का राज्य दक्षिण भारत में फैल गया, साथ ही यह उत्तरी भारत का भी महान राजा माना गया। परतु बाद में पल्लवो ने उन पर आक्रमण करके अपना बदला लिया और अपने राज्य को पूरे दक्षिण भारत में फैला दिया। इस राज्य को बाद में बहुत महत्त्व मिला क्योंकि उत्तरी भारत का बौद्ध धर्म एव दक्षिण भारत का हिन्दू धर्म यहाँ के मदिरों में एक हो गया और इसके बाद ही मध्यकालीन हिंदू धर्म का जन्म हुआ।

2 चालुक्य कला—550—757 ई०

चालुक्य राजाओ का योगदान दक्षिणी कला में बहुत है। छठी शताब्दी के राजनीतिक परिर्वतनो मे कर्नाटक के इस छोटे से परिवार ने पुलकेशिन प्रथम द्वारा अपने को स्वतत्र घोपित कर दिया, और इसने अपनी राजधानी ऐहोल से बदामी को बना लिया, इस कारण इस राज्य को भी दक्षिण भारत के महान राज्यों में माना जाने लगा। आज के युग में चालुक्य कला को पल्लव कला से अधिक महत्त्व दिया गया है। गुप्तकाल के बाद केवल इन्ही के द्वारा कला में पुर्नजागरण (Renaissance) हुआ। इस समय की इमारतों में सब समय की कला का अच्छा मिश्रण दिखता है। चालुक्य राजाओं ने दक्षिण भारत की कला अथवा सभ्यता में बहुत परिवर्तन किये। ये कला के क्षेत्र में सृष्टिकर्ता न हो कर केवल मध्यस्थ ही बने। उत्तरी भारत में ये दक्षिणी गुप्त शैली के सपर्क में आये परतु बाद में इनके ऊपर गुजरात तथा उत्तरी भारत की सभ्यता का प्रभाव पड़ा, दक्षिण भारत से इन पर आध्र सभ्यता का भी प्रभाव पड़ा। पल्लव तथा चालुक्य राज्यों का व्यापारिक सबंध ससेनियन (Sassanian) राज्यों से था।

इस प्रकार चालुक्य कला कई अवस्थाओं से गुजरी और इसी कारण हमें चालुक्य कला पर समय-समय पर भिन्न प्रभाव देखने को मिलता है।

छठी शताब्दी में सबसे प्रथम प्रभाव ऐहोल में चालुक्य राजाओं का दिखाई पड़ता है। यह नगर उनकी राजधानी थी एवं यह मंदिरों से भरा हुआ है। यहाँ का सबसे पुराना शिव का मंदिर बौद्ध धर्म के मंदिरों के समान बनाया गया है। यहाँ का दुर्गा का मदिर भी विशेष महत्त्वपूर्ण है। इन मंदिरों में बौद्ध चैत्य के बड़े कमरे को अपनाया गया है जो कि गुप्त शैली का गुण है।

चालुक्य कला पर गुप्त शैली के प्रभाव के अच्छे उदाहरण सबसे अधिक बादामी से प्राप्त हुए है। बादामी से प्राप्त विष्णु की मूर्ति, खभें तथा कोष्ठक (Brackets) गुप्त काल की उत्पत्ति है, परतु इनकी वास्तुकला पर पल्लव शैली का प्रभाव स्पष्ट दिखता है। बादामी का महाकुतेश्वर का मदिर भी ऐहोल के मदिरो के समान है। एलोरा (Elura) का शिव को गुफा-मदिर तथा शिव का एलिफेंटा (Elephanta) का मंदिर विशेष महत्त्वपूर्ण है। एलोरा के गुफा-मंदिरों की वास्तुकला तथा मूर्तिकला दसवी से बारहवी शताब्दी के बीच की बनी बतायी जाती है। आठवी शताब्दी में इस प्रकार के बहुत कम मदिर बने एव बारहवी शताब्दी के बाद इन चालुक्य कलाओ का प्रभाव समाप्त हो गया।

ऐहोल (Aihole)

विदेशी एतिहासकार कॉज़ेन (causens) ने 1892 ई० में ऐहोल का पता लगाया। उनके विचार से इस नगर पर आधुनिक प्रभाव नही पडा था। 450 ई० मे चालुक्य राजाओ ने आर्यवोल अर्थात् एहोल (आर्यों का नगर) को राजधानी के रूप में बसाया। बारहवी शताब्दी की उपेक्षा के बाद इस नगर के महल तथा रहने के स्थान जो कि लकड़ी, मिट्टी तथा ईंटों के बने थे नष्ट हो गये, परंतु यहाँ के पत्थरों के मंदिर अभी भी अच्छी अवस्था में स्थित हैं। इस नगर में इतने अधिक मदिर बने हुए हैं जिसके कारण इस नगर को आर्यों का नगर कहना गलत नही लगता। इन मंदिरों के चारों ओर अभी भी झोपड़ियाँ बनी हैं जो कि पाचवी शताब्दी के नगर का भास कराती हैं। इसे गुप्त काल का भी समय कहा जा सकता है। इस नगर का महत्त्व अभी हाल में ही लोगों द्वारा माना गया है। यहाँ के मदिर भारतीय कला के हिंदू धर्म के अच्छे उदाहरण हैं। यहाँ पर हिंदू कला के उदाहरणों की भरमार है। इस नगर की कला दक्षिण शैली पर आधारित है।

हिंदू धर्म के एहोल के मंदिर—उस समय कलात्मक प्रेरणा पहले से ही हिंदू धर्म में केंद्रित थी हालाँकि इस समय का हिंदू धर्म फिर से दक्षिण भारत में जागरूक हुआ। यह प्राचीन हिंदू धर्म से भिन्न था। 1000 वर्ष के बौद्ध धर्म के प्रचार का प्रभाव भारत की कला तथा धर्म पर अधिक गहरा था, इस समय के धर्म की उन्नत अवस्था मे भी लोग अपने पुराने स्थानीय एवं परंपरागत भगवान की उपासना करते दिखते थे। बौद्ध धर्म की अवनति के साथ ही एक नई प्रचलित हिंदू धर्म की शक्ति का जन्म हुआ। ऐहोल से अनन्त मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं जिससे ऐसा लगता है कि पुराने हिंदू देवताओ, शिव तथा विष्णु आदि को लोग एक साथ उस समय पूजते थे। मदिरो के अंदर की दीवारें मूर्तियों से भरी हुई हैं, इनका विषय प्रेमियों के जोडे, गले लगाने इत्यादि मुद्राओं के दृश्य, मनुष्य का अधिकार माँगना, मृत्यु पर जीवन की विजय निर्वाण द्वारा बताना प्रचलित विश्वासों, भगवान के धर्म की स्थापना जिसमे त्याग को महत्त्व देना इत्यादि दृश्य बने हुए हैं। प्रारंभिक ऐहोल की मूर्ति कला बहुत-प्रभावशाली थी। ये मूर्तियाँ दीवारो तथा खभो पर ऊचे डौल के अध्युचित्रो (High relief) में मंदिर के अदर बनी हुई हैं। यहाँ के दुर्गा एव लादखान के मंदिरों की मूर्तियाँ गुप्त शैली में कटी हुई हैं। ऐहोल के दुर्गा का मदिर भी महत्त्वपूर्ण है जहाँ बौद्ध धर्म के बडे कमरे को यहाँ की वास्तुकला में अपनाया गया है यह भी गुप्तशैली की विशेषता है। ऐहोल मे दो मदिर पहाडों को भी काट कर बनाये गये हैं, इन्हें भी उसी समय की शैली का कहा गया है। इसमे भी देवालय, मण्डप तथा द्वार मण्डप हमे देखने को मिलता है। इनकी दीवारों पर बहुत पुराने भित्ति चित्र बने हैं जो करीब-करीब नम जलवायु के कारण नष्ट से हो गये हैं। ऐहोल के मदिरों की कला भारत की और कलाओ से भिन्न है। यहाँ पर बौद्ध एवं हिंदू धर्म की कलाओ का समावेश है। जीवन का भास सबसे अधिक ऐहोल के मदिरो में होता है। यहाँ की मूर्तियाँ एवं मंदिर पेडो एवं मकानों के बीच में बने हुए हैं। यहा पर 78 ऐसी इमारतें बनी हुई है। इनका एक साथ इतना अधिक होना आश्चर्यजनक है। कोई भी दो मंदिर बारीकी से देखने में एक से नही मालूम होते हैं।

ऐहोल के छठी शताब्दी के मंदिर अधिकतर सुशील एवं सुन्दर परिमाप के बने हुए है। यहाँ के मदिरो मे चौकोर देवालय एक चौकोर बडे कमरे में जिसे मण्डप कहते हैं खुलता है।

देवालय का एक छोटा 3 × 3 वर्ग गज क्षेत्रफल का कमरा बनाया जाता था जिसके अदर की दिवारें सादी बनाई जाती थी। इन देवालयों में अधिकतर लिंग की मूर्ति स्थापित की जाती थी। मदिर की बाहरी दीवारें मानवी सम-

कथता के प्रतिदर्शनों (Representation) से भरी हुई है। ये मूर्तियाँ खड़ी पूजा की मुद्रा में हैं। अधिकतर ये हर तीन दीवारों के बीच में या भित्ति स्तंभों के नीचे बनाई गई हैं। इन मंदिरों की ड्योढी या द्वार मण्डप चार खंभों पर टिका बनाया गया है। जो मण्डप का रास्ता दिखाता है। इन मंदिरों के देवा-

चित्र - २४
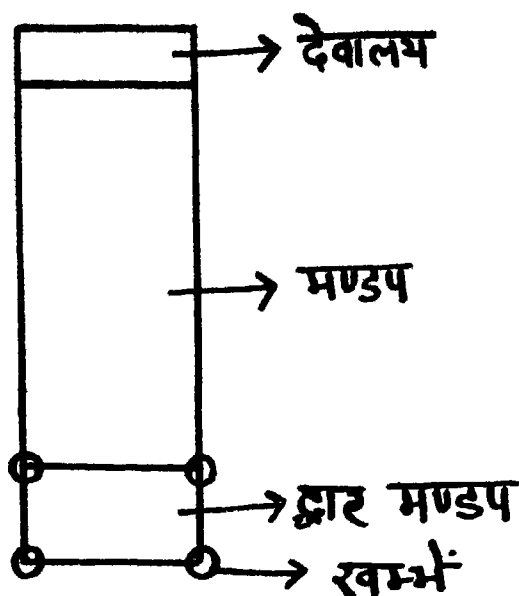
लयों के ऊपर सूची स्तंभ (Pyramid) बनाया गया है जिसे शिखर कहते हैं। कहीं-कहीं पर यहाँ बैल भी बने मिले हैं। यहीं पर दूसरे स्थानों पर छतें बनाई गई हैं जो धीरे-धीरे क्रमानुसार नीची होती गई हैं। इन मंदिरों में मूर्ति कला से अधिक वास्तुकला में भिन्नता दिखती है। इन मंदिरों में जैसे-जैसे आगे बढ़ते जाते हैं तो अंधेरा होता जाता है और फिर हम भगवान की मूर्ति के सामने पहुँच जाते हैं। ये मूर्तियाँ महीन छेनी द्वारा अलंकृत की गयी हैं। ये मालायें पहने, बड़े कूल्हे, एवं भरी छातियों वाली आकृतियाँ हैं जो खंभे से निकली सी जान पड़ती हैं जिनके हाथों में अधिकतर कमल का फूल है इसे लक्ष्मी की मूर्ति भी कहा जा सकता है। इन ऐहोल की मूर्तियों में हमें दो प्रकार की शैलियां देखने को मिलती हैं। दक्षिणी एवं उत्तरी शैली। दक्षिणी शैली देवालय के

कमरों में मिलती है, जिसके ऊपर वक्ररेखीय अट्टारिकायें (Curvilinear Towers) बनी हुई हैं, इनके सामने द्वार मण्डप है। तालाब के दोनों ओर बने दो बड़े मंदिरों में उत्तरी शैली हमें स्पष्ट दिखती है। हालाँकि ऐहोल में दोनों ही शैलियों का प्रभाव दिखता है परंतु तीन शताब्दियों तक इनमें कोई परिवर्तन नही हुए। मदिरों की वास्तुकला में कोई परिवर्तन नही दिखता है परंतु उनके देवालय के ऊपरी आकार में भिन्नता अवश्य दिखती है जैसे एक स्थान पर गोल शिखर बना है तथा दूसरे स्थान पर शिखर धीरे-धीरे कम होता गया है। पाँचवी शताब्दी के ऐहोल का मदिर जो सबसे पुराना माना गया है उसमें तथा विरुपाक्ष के पट्टाडिकल के आठवी शताब्दी तक के मदिरो के बनाने के सादे ढंग को ही सब स्थानों पर अपनाया गया है। इसमें इस बीच कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

हर्षवर्धन के विख्यात होने के बाद पल्लव राज्य समाप्त हो गया तथा चालुक्य राज्य भी अपनी समाप्ति पर आ गया। इस समय दक्षिण भारत में हिन्दू धर्म का प्रचार था। इसी कारण हमे वहा के मन्दिरो मे हिन्दू देवी देवताओ की मूर्तिया देखने को मिलती है और यह विशेषकर ऐहोल एव पट्टा-डिकल मे हमें आज भी देखने को मिलती है। क्योकि यह पल्लव तथा चालुक्य राजाओ की राजधानी थी।

इस समय थोडी सी तान्त्रिक कला भी प्रचलित थी जिसका प्रभाव खजराहो के मदिरो की भीतरी एव बाहरी दीवारों पर बने मिथुन के अभ्युचित्रो के दृश्यो में हमें देखने को मिलते है।

पुलकेशिन तृतीय के राज्यकाल में कला तथा वास्तुकला की बहुत उन्नति हुई। पुलकेशिन तृतीय ने पल्लवो की कांजीवरम को सातवी तथा आठवी शताब्दी में जीत कर उसे पट्टाडिकल के नाम से पुकारा एवं इसी शताब्दी में यहाँ पर विरुपाक्ष के मन्दिर की स्थापना की। इस मन्दिर का नाम उसने अपनी पत्नी के नाम पर रखा। यहाँ पर ऊँचे एव नीचे दोनों ही प्रकार के डौल के अभ्युचित्र बने है। पुलकेशिन तृतीय की दो पत्नियाँ थी इसी कारण इसी विरुपाक्ष के मन्दिर के पास इसने एक दूसरे मन्दिर का निर्माण करवाया तथा इसे दूसरी रानी का नाम दिया जो मल्लिकार्जुन के नाम से विख्यात है। इसमें चालुक्य परपरा अधिक दिखती है, इससे पता चलता है कि इसका निर्माण स्थानीय कलाकारो द्वारा किया गया होगा, परन्तु विरुपाक्ष का मंदिर पल्लव परपरा का बना हुआ है। मल्लिकार्जुन के मदिर में भी ऊँचे तथा नीचे डौल के अभ्युचित्र बने मिलते है जो भारतीय कला के अच्छे उदाहरण हैं। ऐहोल के समान यहाँ पर भी अब एक ग्राम बसा हुआ है। यहाँ पर भी ऐहोल के

समान ही दक्षिणी तथा उत्तरी भारत की शैलियों का मिश्रण है। इसके मंदिरों की वास्तुकला में परिवर्तन केवल उसके देवालय की बाहरी आकार में ही दिखता है। साथ ही एक मंदिर का शिखर गोलाकार है।

मल्लिकार्जुन के मंदिर में एक ओर सांप के आकार का मेहराब बना हुआ है, जिससे इसके ऊपर लंका की कला का प्रभाव दिखता है, क्योंकि इस प्रकार के आकार के मेहराब लंका, चीन तथा जापान की कला में बहुत प्रचलित थे। तीन शताब्दीयों (500-700 ई०) तक चालुक्य राजाओं की उन्नति हुई, उसी समय उनकी कला की भी उन्नति हुई जिसके अच्छे उदाहरण भुवनेश्वर, खजराहों, बेलूर तथा कोनारक के मदिर हैं। ये गुप्त शैली से पूर्ण रूप से भिन्न हैं परंतु यहाँ पर उत्तरी तथा दक्षिणी कला का मिश्रण स्पष्ट दिखता है। पुलकेशिन तृतीय के बाद धीरे-धीरे चालुक्य राजाओं की शक्ति समाप्त होने लगी और साथ ही इसके बाद कला में कोई विशेष परिवर्तन नही हुये। तीसरी से सातवी शताब्दी तक की कला का कुछ विशेष पता नही है परंतु हमें जान लेना चाहिए कि इसी चालुक्य कला ने ही एक नये स्वर्ण युग को मार्ग दिखाया न की दूसरी कोई कला ने। चालुक्य कला को अप्रचलित स्थानीय कला में दूसरा स्थान दिया गया है। हालाँकि अजन्ता, ऐलोरा, एलिफेंटा इत्यादि का ज्ञान लोगो को बहुत पहले ही हो गया था परतु और स्थान जगलो में छिपे होने के कारण लोगो को उसका ज्ञान शीघ्र नही हो सका था।

ग्यारहवी शताब्दी की वास्तुकला

मगलों भारत में आगमन के पहले वास्तुकला में अधिक परिवर्तन देखने ... नही मिलता है। परतु बाबर के बाद भारत की वास्तुकला में विशेष परिवर्तन हुए। मुगलो के आगमन से पहले भारत की वास्तुकला मदिरों की वास्तुकला थी। छठी से ग्यारहवी शताब्दी तक मदिरों की रचना एक सी ही हुई, तथा उनका आकार भी एक सा ही रहा, जो कि शिखर के रूप में था। शिखर के नीचे मदिर में उस समय एक छोटा अधेरा कमरा बनाया जाता था जिसमे भगवान की मूर्ति की स्थापना होती थी इसी में पूजा की जाती थी। इस कमरे में पूर्णरूप से अंधेरा होता था क्योंकि हिन्दूओं के विचार से अंधेरे में आसानी से ध्यान लगाया जा सकता था। बीच में बडा प्रार्थना का कमरा बनता था इसकी दीवारों को मूर्तियों से अलंकृत किया जाता था एव इस कमरे की एक ओर मंदिर का द्वार होता था यह दो या चार खंभों पर टिका बनाया जाता था इसे मंदिर का तीसरा भाग कहना ठीक होगा जैसा चित्र 24 में स्पष्ट है। ऐहोल के मंदिरों के शिखर पत्ती के आकार के बने मिले हैं। (चित्र 18)।

चित्र-18
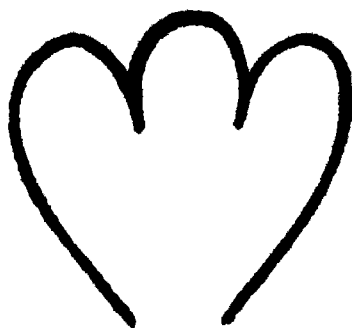
परंतु पाँचवी शताब्दी में मंदिरों के शिखर गोलाकार होने लगे थे (चित्र 19)
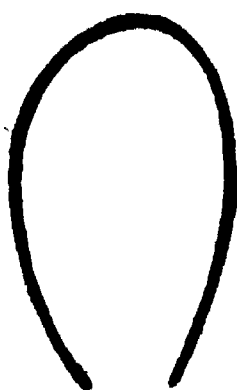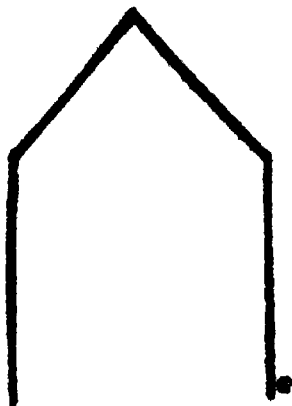
चित्र-19 चित्र-20

एवं ग्यारहवीं शताब्दी के मंदिरों के शिखर नोकीले बनाये जाने लगे थे। (चित्र 20) इस प्रकार से इस समय के मंदिरों के शिखरों में थोडा सा परिवर्तन हुआ था और बाकी मंदिरो की वास्तुकला तीसरी से ग्यारहवी शताब्दी तक एक सी थी।

3. चोल कला 850-1267 ई०

चोल राज्य का प्रारंभ पाल राज्यों के बाद 850 ई० से माना जाता है। यह बाद में दक्षिण भारत का स्थापित राज्य हो गया और इन्होंने तामिल राज्य

के मुख्य स्थानों को धर्म की मूर्तियों से भर दिया। इस राज्य का महान् राजा राजराजा था जिसका समय 925-1019 ई० तक का माना गया है। इसने स्वतंत्र रूप से इमारतों का निर्माण कराया जिसमें से दुनिया का महान तंजाबूर का मंदिर विशेष महत्त्वपूर्ण माना गया है। इसके ही राज्य में दक्षिण भारत में सब से सुन्दर मंदिरों का निर्माण हुआ। इसके समय की विख्यात मूर्तियां इस प्रकार हैं—

1. तांडव नृत्य की मुद्रा की शिव की मूर्ति
2. शिव एवं पार्वती की मूर्ति
3. शिव की मूर्ति जिसे जावा के शिल्पकारों का उत्तम काम कहा जा सकता है। इस मूर्ति को अभी तक भारत की सबसे अच्छी मूर्ति माना गया है।

चोल राजाओं ने अपनी राजधानी तंजाबूर (तानजोड़) नंदी वर्मा तृतीय द्वारा 946 ई० में फिर से बसाई। दक्षिण भारत की कला एव सम्यता में चोल राज्य को मध्यकाल का स्वर्णयुग माना गया है। इस समय भारत के मंदिर केवल धर्म के ही स्थान नही थे बल्कि ये सामाजिक केंद्र भी होते थे। पुजारी का महत्व धर्म में गरीबों एवं जाति द्वारा तिरस्कृत लोगों पर ही निर्भर करता था। इस समाज की भाषा तामिल थी परतु साथ ही इन्हे संस्कृत भाषा का अच्छा ज्ञान होता था। चोल कला का पुर्नजागरण (Renaissance) गुफाओं की मूर्तिकला में दिखाई देता है कुछ चोल कला भित्ति चित्रो के रूप में भी मिली है।

4 राष्ट्रकूटों की कला 758-973 ई०

विक्रमादित्य का पुत्र अपने उत्तरी सीमा पर स्थित पडोसी राष्ट्रकूट राजाओं द्वारा हराया गया। यह राज्य तीन शताब्दियों तक धीरे-धीरे उन्नत हुआ परंतु अंत में यह पूर्ण रूप से समाप्त हो गया। राष्ट्रकूटों की कला में उत्तरी तथा दक्षिणी आर्य एव द्रविड सम्यताओ का मिश्रण बहुत साधारण ढंग से हुआ। बाद में ये दो सम्यतायें साथ में उन्नत नही हो सकी और ये दो भिन्न शैलियों के समान उन्नत हुई। इनमें उनका अपना अलग व्यक्तित्व था।

5. होसला कला 1110-1294 ई०

यह भी दक्षिण भारत का मैसूर का एक छोटा सा राज्य था। मैसूर के मंदिर के अत्यंत समृद्ध तथा मोहनीय वास्तुकला की मूर्तियां होसला राजाओं द्वारा 12 वी शताब्दी में बनाई गई थी। इन मूर्तियों के निर्माण करने वाले कलाकारों का ध्येय मनुष्यों पर न भूलने वाला प्रभाव डालना था न कि एक विशेष आकृति की ओर लोगो को आकर्षित करना था। ये मूर्तियाँ आभूषण युक्त

शैली में बनी हुई हैं। इसमें भी हमें उत्तरी एवं दक्षिणी भारत की कला का मिश्रण देखने को मिलता है।

6 विजयनगर कला 1316-1563 ई०

15वीं से 16वीं शताब्दी में यह शैली हम्पी तथा बलारी प्रांतों के गाँवों में पाई गई थी। इनमें द्रविड वास्तुकला की विशेषता स्पष्ट दिखती है।

1336 ई० में दो हिंदू भाईयों ने विजयनगर राजधानी की स्थापना तुंगभुद्रा नदी के पास की, जो शीघ्र ही दक्षिण के एक महान राज्य में बदल गया। इस राज्य ने 16वीं शताब्दी के प्रारंभ में कृष्णदेव राय के अंतर्गत महान उन्नति की। इसने 1535 ई० तक केवल हिंदू धर्म का प्रचार दक्षिण के सुलतानों के मुसलमान धर्म के विरोध में किया।

विजयनगर कला की शैली में उस समय की बर्बरता दरबारी कला में स्पष्ट दिखती है। एक खभे पर मनुष्य की शेर के आकार की मूर्ति बनी है। यही से 22 फीट ऊँची हनुमान की मूर्ति भी प्राप्त हुई है जिसे इसी युग की बनी माना गया है तथा इसके बनाने का ढंग अति उत्तम है। यहाँ से कई जानवरों की मूर्तियाँ प्राप्त हुई है जो कलात्मक नही हैं। इन सबसे यह स्पष्ट होता है कि उस समय की मूर्तिकला मूर्तियों के बनाने के ढग में उत्तम थी परतु उनमें सुन्दरता तथा ऊँचे आदर्शों का आभाव था। विजयनगर की कला के अच्छे उदाहरण तारपती से भी प्राप्त हुए हैं।

विजयनगर शैली की कुछ मूर्तियाँ गाधार तथा मथुरा की कला में भी प्रचलित मिली हैं। इनमे स्त्री मूर्तियो में विशेष समानता दिखती है, जिसमें स्त्री आकृति का पैर मुडा हुआ है, उनका दाहिना हाथ उपर को उठा हुआ बना है एव बाँया हाथ पेड के तने के चारों ओर लिपटा हुआ है, यह मूर्ति बैठने की मुद्रा की है। इस प्रकार की मूर्तियाँ विजयनगर एवं मथुरा दोनो ही की कला में हमें देखने को मिलती हैं।

कृष्णदेव ने ताँबे की श्रीनिवास परुमल की मूर्ति को तिरुमालाय के त्रिपुरा के मदिर में स्थापित करवाई थी, एव अपने राज्य में विट्ठला के मंदिर का निर्माण करवाया था। इसने दक्षिण भारत में सुन्दर-सुन्दर इमारतो का भी निर्माण करवाया था। इन सब की शैली उन्नत द्रविड शैली है। कट्टोलिकुला का गणेश मंदिर सादे पत्थरों की दीवारें तथा समतल छत से बना है, इसकी छत खंभों के मंडप को एक विशेष प्रतिष्ठा देता है। यहाँ से कुछ महत्त्वपूर्ण जैन मंदिर भी मिलें हैं साथ ही हिंदू धर्म की अलग-अलग मूर्तियाँ गणेश एवं नरसिंह भगवान की पाई गई हैं।

राजा राजदेव द्वारा शिव की मूर्ति तंजावूर के मंदिर में स्थापित है तथा सारस्वती का मंदिर हरे पत्थरों का बना हुआ है। यह दोनों ही मंदिर विजयनगर शैली के अच्छे उदाहरण हैं। उपयण्य मठ को विजयनगर के राजा देवराज ने बनवाया था। इसके चित्र विजयनगर शैली के हैं। डा० मोतीचन्द ने इन चित्रों की विशेषताओं का इस प्रकार वर्णन किया है "कि ये चित्र रंग से पोत दिखाने की क्रिया के अवशेष हैं तथा इनकी रेखाओं में नुकीलापन एवं सरलता है साथ ही आकृतियों में लोच एवं गति है। इन चित्रों के मुकुट, वस्त्र एवं गहने विजयनगर शैली पर आधारित है एवं अजंता से एकदम भिन्न हैं।" विजयनगर के राजाओं के साथ ही दक्षिण भारत में सुल्तानों के राज्य की भी स्थापना हुई। इनके समय में भी कला की बहुत उन्नति हुई और इन्होंने अपने महलों को अलंकृत किया, साथ ही इन्होंने कुछ मकबरों का भी निर्माण करवाया। ऐतिहासिक दृश्यों के कारण हम दक्षिण भारत की कला को दो भागों में बाँट सकते हैं—

1. विजयनगर कला जो हिन्दू कला थी।
2. बहमनी सुल्तानों की कला जो मुगल कला थी।

दक्षिण भारत की महत्त्वपूर्ण मूर्तियाँ

दक्षिण में सभी प्रकार के धातुओ तथा पत्थर से मूर्तियाँ बनाई गई थी इन्हें इस प्रकार दो भागो में बाँटा जा सकता है—

1 पत्थर की मूर्तियाँ।
2 काँसे की मूर्तियाँ।

पत्थर की मूर्तियाँ

मध्यकालीन भारत में नर्मदा नदी के दक्षिण तट के कई राज्यों में पत्थर पर अलकृत कटाई तथा मूर्तिकला के अच्छे नमूने पाये गये हैं। कुछ 11वी शताब्दी की चोल कला की मूर्तियों के अलावा, जो बहुत सुदर बनी हुई थी परंतु दक्षिण की मनुष्य आकृतियों की मूर्तियाँ अधिकतर उन्नत न थी। विशाल द्रविड राज्य के मंदिर इस प्रकार की मूर्तियों से भरे हुए हैं एवं ये मूर्तियाँ अलंकारों से युक्त बनाई गई हैं। इनके विषय पुराण तथा तत्र हैं। इनका विचार धर्म के सिद्धांतों को सुंदर ढंग से व्यक्त करना था न कि सुंदर मूर्तियों को केवल बनाना। इसी कारण इन मूर्तियों में उनका यह विचार स्पस्ट दिखता है, जिसके कारण केवल उस समय कुरूप मूर्तियों का ही अधिकतर निर्माण हुआ, बहुत थोडी-सी ही उस समय सुंदर मूर्तियाँ बनाई गई परंतु सब ही मूर्तियाँ विचार में उच्च हैं। इनमें सजीवता बहुत कम दिखाई पडती है परंतु इनमें प्रचलित प्रभाव तथा बर्बरता का पुट स्पष्ट दिखता है।

12 वीं शताब्दी में चालुक्य तथा होसला के मंदिरों में पूर्णतः अलंकृत नमूने ही कटे, जिनको बराबरी कोई नही कर सकता तथा इन्हीं मंदिरों की मूर्तियाँ परंपरागत तथा अधिक महत्त्व की हैं।

काँसे की मूर्तियाँ

उस समय की काँसे तथा पीतल की मूर्तियाँ विशेष महत्त्वपूर्ण हैं तथा वे उन्नत भी हैं। इस समय दक्षिण भारत में धातु की मूर्तियों का प्रचलन था परंतु तिब्बत एव नेपाल में यह प्रथा पुरानी हो चुकी थी इनमें से कुछ मूर्तियों को विशेष महत्त्व दिया गया है वे इस प्रकार हैं :—

1 काँसे की नट राज की मूर्ति

2. 12 वी शताब्दी की बनी पार्वती जी की काँसे की मूर्ति।

3 14 वी शताब्दी की देवी काली की काँसे की मूर्ति।

काँसे की नटराज की मूर्ति

यह मूर्ति 13वी शताब्दी में दक्षिण भारत में बनाई गई थी तथा इसकी शैली द्रविड है। इसका सयोजन (Composition) तारे के समान है (चित्र 21)। इस
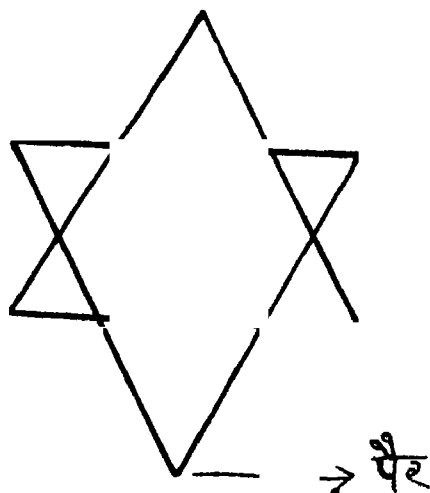
चित्र - 21.

मूर्ति में नटराज के एक ही पैर पर पूरी मूर्ति टिकी हुई बनाई गई है जिसको मूर्ति में बनाना कठिन काम है। पृथ्वी की गति में शक्ति की केवल एक ही दिशा

मानी गई है परंतु नटराज की मूर्ति में शक्ति की गति को चारो दिशाओं में दिखाया गया है, क्योंकि नटराज की नृत्य की मुद्रा ली गई है, इस कारण यहाँ पर सब दिशाओं में गति दिखती है न कि एक दिशा में। इसमें शिव की आकृति के चारों ओर आग की लपटो का घेरा बना है जिसे तृपशी कहते हैं। इस मूर्ति में गुरुत्वाकर्षण भी एक ही पैर पर है एवं मूर्ति के दोनों भाग गुरुत्वाकर्षण की रेखा के दोनों ओर बराबर बटे हुए हैं। नटराज की मूर्ति के एक हाथ में डमरु है जो स्वर या जागरण का सूचक है, इसके दूसरे हाथ में अग्नि है जो प्रत्यावर्तन (Involution) का संकेत करता है, इसका तीसरा हाथ अभय मुद्रा में है जो रक्षा का द्योतक है तथा चौथा हाथ गजहस्त मुद्रा में है जो मूर्ति के पैर को हाथी की सूंड के समान दिशा का भास कराता है। पूरी मूर्ति की मुद्रा "ॐ" का सकेत बनाती है। श्री असितकुमार हाल्दार द्वारा इस मूर्ति के छ. कोनों को भारतीय कला के छः नियम माने गये हैं। इस प्रकार पूर्ण भारतीय कला इस नटराज की मूर्ति पर निर्भर मानी गई है। यह काँसे की ठोस मूर्ति मोम की मूर्ति बनाने के ढंग के द्वारा बनाई गई है। इस मूर्ति को भारतीय शिल्प कला में बहुत महत्त्व दिया गया है।

पार्वती जी की काँसे की मूर्ति

यह मूर्ति 12 वी शताब्दी की दक्षिण भारत में चोल राजाओं द्वारा बनी मानी गई है। यह आजकल वाशिंगटन की कलावीथिका (washington Art Gallery) में रखी हुई है। यह पूर्ण स्त्री आकृति है जो कि किसी चोल रानी की बताई जाती है। इसमें बहुत पतले शरीर की रचना दिखाई गई है। इसकी शैली द्रविण हैं।

देवी काली की काँसे की मूर्ति

इसका निर्माण 14 वी शताब्दी में हुआ था और यह अब अमेरिका में हैं। यह काँसे की देवी काली की दक्षिण भारत में बनी मूर्ति है।

दक्षिण भारत की मूर्तियों की शैली

शैली की दृष्टि से हम इन मूर्तियों को चार भागों में बाँट सकते हैं। पहला भाग सातवी शताब्दी के पाल राज्य के अंतर्गत अध्युचित्रित (Reliefs) मूर्तियों से प्रारंभ होता है जो कांजीवरम् (कांजी) में पाई गई हैं। दूसरी शैली की मूर्तियाँ 11 वी शताब्दी में चोल राज्य में बनी मानी गई है। तीसरी शैली आभूषण युक्त शैली की मूर्तियों में है जिसे दक्षिण के चालुक्य तथा होसला राजाओं ने 12 वी शताब्दी में महत्त्व दिया था। चौथी शैली विजय नगर की बर्बरता से युक्त शैली को कहा गया है जो 15वी तथा 16 वी शताब्दी की

मूर्तियों में प्रचलित थीं। इसे लेविश के द्वारा बाद में अपनाया गया। तामिल देश के विख्यात विशाल मंदिरों का अलंकरण 17 वी तथा 18 वीं शताब्दी में हुआ, जो कोई विशेष महत्त्व के नही थे। अंत में मैसूर के महाराजा द्वारा कुछ आधुनिक क्रांतिवृत्त सुन्दर मूर्तियों का निर्माण हुआ।

दक्षिण द्रविड शैली के चित्र दृष्टांत तथा स्फुट दोनों ही प्रकार के मिलते हैं। इस समय के स्फुट चित्रों में दक्षिण, उत्तर तथा पश्चिमी शैलियों का मिश्रण हैं। इस शैली में 'रागमाला' के भी चित्र बने जो बड़ौदा के संग्रहालय में रखे हैं। दक्षिण शैली को बीजापुर अथवा गोलकुण्डा शैलियों के नामों से भी पुकारा जाता है। उत्तर की मुगल तथा राजपूत शैलियों ने भी दक्षिण की शैली को प्रभावित किया इसके उदाहरण कपड़े पर चित्रित बीजापुर के राजाओं के विशाल पटचित्र हैं। बीजापुर तथा गोलकुण्डा शैलियों के कई चित्र भारत के विभिन्न संग्रहालयों में अभी भी सुरक्षित हैं। दक्षिण शैली के चित्रों में भी मूर्तिकला की आकृतियो के गुण मिलते हैं। इन चित्रों में भी उत्तरी आर्य शैली तथा दक्षिणी द्रविण शैली एक हो गई है।

●

अध्याय 8

मध्यकालीन हिंदू कला

(पालराज्य 760-1142 ई०, सेनराज्य 1118-1199 ई०)

दसवीं से पन्द्रहवीं शताब्दी तक भारतीय कला को जीवित रखने का श्रेय पाल, जैन तथा गुजरात शैलियों को ही है। इस युग में अधिकतर पुस्तकों के दृष्टान्त चित्र ही प्राप्त हुए हैं। इस समय मूर्ति कला प्रायः समाप्त सी हो गयी थी। इन पुस्तकों का निर्माण बंगाल, बिहार और नेपाल में हुआ। ये पुस्तकें विशेष-कर नालंदा तथा विक्रमशिला स्थानों से प्राप्त हुई हैं, इन सबकी शैली एक है। इन चित्रों के रंगों के बारे में रायकृष्ण दास ने कहा है कि "इनमें लाल, पीले, नीले, सफेद तथा काले रंगों एवं इन रंगों के मिश्रण से बने बैंगनी, हरे गुलाबी, फाखताई आदि रंगों का ही प्रयोग किया गया है। यहाँ पर सोने का प्रयोग नहीं किया गया है।"

इस युग की प्रमुख तीन शैलियाँ मानी गयी हैं जो पाल, जैन (अपभ्रंश) या गुजरात एवं सेन शैलियो के नाम से विख्यात हैं। ये तीनों शैलियाँ आपस में बहुत कुछ एक समान-सी हैं, इस कारण इनमें भिन्नता दिखाना बहुत कठिन है।

मध्य युग के अंत में जैसे-जैसे दरबारी धर्म छिछला होता चला गया, उसके साथ सुंदर बालाओं का प्रचार 'देव-दासियों' के रूप में मंदिरों में होने लगा, वे तंत्र के कामों में भी साथ देने लगी, इसी समय रत्यात्मक स्त्री मूर्तियों के बनने का प्रचार प्रारंभ हुआ। इस प्रकार की मूर्तियाँ मंदिरों की दीवारो, खंभों तथा छतों पर बनने लगी। मुसलमानो के भारत में आगमन के पहले इनमें से कई में असली स्त्री आकृतियों को लेकर उनकी मूर्तियों के छबि चित्र (Portraits) बनाने की प्रथा भी प्रचलित थी, एवं इस काल के अंत में इन अश्लील मूर्तियों के बनने का प्रचार बहुत हो गया था जो तांत्रिक धर्म का प्रभाव था।

प्रत्येक मंदिर में इस समय की एक लौकिक कला का झुंड विद्यमान है। इन मूर्तियों में मनुष्य के जीवन के प्रत्येक पहलू के दृश्यों को दीवारों पर अंकित किया गया है।

दक्षिण की कला का पुर्नजागरण (Renaissance) उत्तरी भारत के गुप्त काल की राष्ट्रीय सभ्यता की कला से भिन्न प्रकार का हुआ, साथ ही दक्षिणी कला मलाबार, तथा तमितंत्र (Tamitrad) की कला से भिन्न थी। उत्तरी भारत में उस समय दो मुख्य राज्य बंगाल एव बिहार थे। ये पाल तथा सेन राजाओं के राज्य थे। इनकी कला भी इन्हीं नामों से विख्यात हुई।

पाल शैली—नवी शताब्दी में पाल राज्य अपनी उन्नति के शिखर पर

पहुँच गया था हालाँकि इनका राज्यकाल बगाल में आठवीं शताब्दी से प्रारंभ हो गया था। इस वंश के राजाओं का जन्म स्थान पूर्वी भारत था। इस प्रकार इस राज्य की स्थापना पूर्वी भारत के प्रदेशो में हुई परंतु बाद में ये उत्तरी भारत के मुख्य राज्यों में माने गये। पाल शैली के ग्रंथों में पाल राजाओं का उल्लेख है इस कारण इस शैली को पाल शैली कहना उपयुक्त होगा। इन पाल राजाओं की छत्रछाया में मूर्तिकला तथा चित्रकला दोनों ही बहुत प्रचलित हुई। बंगाल एव बिहार में यह शैली 13वी शताब्दी तक जीवित रही परंतु नेपाल में यह 16 वी शताब्दी तक प्रचलित रही। ये चित्र पुस्तकों के रूप में ताड़पत्रों पर बने हैं एव ये पाल पुस्तकें नेपाल, कलकत्ता, काशी के कला भवन में तथा बडौदा के संग्रहालय आदि में रखी हैं। इसके उदाहरण विदेशों में भी कई सग्रहालयों में सचित हैं। ये चित्र पुस्तकों में दृष्टात चित्रों के रूप में हैं, एवं ये महायान की पुस्तकों में विशेषकर पाये जाते हैं क्यों की पाल राजाओं ने क्षत्रिय होते हुए भी नवी तथा दसवीं शताब्दी में बौद्ध धर्म को अपना लिया था। इस प्रकार के दृष्टान्त चित्र नालदा, बंगाल, विक्रमशिला एवं नेपाल से दसवी से तेरहवी शताब्दी के बीच के बने मिले है। इस शैली का प्रचार नेपाल तथा तिब्बत तक हुआ इसके प्रमाण उनके शिल्प, काँसे की मूर्तियाँ एवं चित्रकला है साथ ही इस शैली के प्रमुख केन्द्र बगाल, विहार तथा नेपाल थे। पाल राज्य की महान उन्नति रामपाल (1084-1126) ई० के राज्य में सबसे अधिक हुई। इस शैली के प्रमुख कलाकार धीमन तथा उसका पुत्र वित पाल हुए है। इन्होने नवी शताब्दी मे धर्मपाल तथा देवपाल राजाओ के राज्यकाल में अजता की शैली के आधार पर एक नई शैली को जन्म दिया जिसका केंद्र बंगाल था। पाल राजाओं के बौद्धधर्म को अपनाने के कारण इन चित्रो का विषय मुख्यत. बौद्धधर्म है और साथ ही ये चित्र बौद्ध धर्म के विख्यात स्थानों से ही प्राप्त हुए हैं।

पाल एवं सेन राजाओ के युग की कम ही वास्तुकला हमें अब देखने को मिलती है। परतु इनकी चित्रकला बहुत उन्नत थी।

पाल राजाओ के समय में बौद्ध मदिर हिंदू मंदिरों के समान बनने लगें थे तथा पाल राज्य के अंत मे दसवी शताब्दी में उनकी मूर्तियो में उडीसा की मध्य-कालीन आकृतियाँ आई। इस सलय ईंटो की इमारतो का प्रचार हुआ एव इनमें सादी दीवारो का बनना प्रारभ हुआ, इन सादी दीवारों मे खडे बल के 'पागा' के निर्माण का प्रचार प्रारभ हुआ।

पाल मूर्तियाँ भी चित्रकला की आकृतियों की तरह पहले गुप्त शैली से अपनी समानता दिखाती हैं जैसे बेढगें, बिना हड्डी एव माँस के शरीर, भारी तथा जल्दी घूमने वाली आकृतियाँ बनी, ये सभी गुप्त शैली के गुण थे। दसवीं शताब्दी में कपडे, गहने, सुदर पृष्टभूमि, पतले शरीर, लबा सजीव मुंह इत्यादि

गुण मूर्तियों में दिखने लगे परंतु 11वी शताब्दी के सेन राजाओं के समय में छिछली सुंदरता ही मूर्तियो की विशेषता हो गई और मूर्तियाँ अधिक सुंदर शरीर की, सुघड़ आकार, मुँह पर मुस्कराहट एवं जीवन्त हाव भाव, सुंदर नाक, हास्य-कटाक्ष, गति में सुंदरता, मंहगे कपड़े, जड़ता, वस्त्रों की सुस्पष्ट भांज, मुकुट आदि से युक्त होने लगी। साथ ही इन प्रतिमाओं में धर्म का भाव दिखने लगा। इस समय धर्म के कर्मकाण्ड ठीक प्रकार से किये जाते थे परंतु उनमें आतरिक जीवन का भाव नही रह गया था। इस समय कांसे की मूर्तियों का प्रचार हुआ तथा ये मूर्तियाँ बहुत सुंदर बनाई गई जिनमें सोना तथा चांदी लगाया गया। इस समय लंबे, नोकीले तथा पतले शिला लेखों का भी प्रचार हुआ।

पाल चित्रकला—पाल राजाओ के द्वारा चित्रकला में विशेष उन्नति हुई परतु सेन राजाओ के समय में विशेष चित्रकला नही हुई। यह पाल कला प्रारभ में पूर्वी भारत मे विशेष प्रचलित थी। इनका स्थान सातवीं से दसवीं शताब्दी तक बगाल, बिहार तथा उड़ीसा में था। पाल राजाओं के समय बौद्ध धर्म, स्तूप तथा भारत के तीर्थ स्थानों का चित्रण ताड़पत्रों के ऊपर हस्तलिपि (Manuscripts) चित्रों के रूप में हुए एव इन चित्रों के पास ही चित्र की व्यवस्था लिखी होती थी। अधिकतर इन ताडपत्रो के दोनों ओर हाशियों पर चित्र का विवरण लिखा जाता था और बीच में चित्र बनाया जाता था या बीच में विवरण और हाशियों पर चित्र बनाया जाता था। (चित्र 25)

विवरण	चित्र	विवरण

या

चित्र	विवरण	चित्र

चित्र - २५

इन चित्रों की शैली अंतिम गुप्त कालपर निर्भर थी। इनके ऊपर उस समय की मूर्तियों की शिल्पकला का प्रभाव पडा था जो हमें स्पष्ट दिखता है। इन चित्रों के विषय मुख्यत: बौद्ध धर्म ही था। पाल राज्य के समय की 8000 ज्ञान पुस्तकों का विवरण आज भी मिलता है। तिब्बतीय इतिहासकार तारानाथ के अनुसार धीमन् तथा वित्तपाल ही इस चित्रकला की शैली के जन्मदाता माने गये तथा इस शैली के ये ही मुख्य कलाकार भी हुए।

पाल कला का प्रभाव बाद में नेपाल की कला पर भी पड़ा, एवं नेपाल में उसे टंखा कहा गया। ये हस्तलिपियाँ (Manuscripts.) दीवारों पर भी टाँगी जाती है और उसके बाद उनको लपेट कर भी रखा जा सकता है। अब यह

कला भारत में प्राय समाप्त होने लगी तो यह नेपाल के द्वारा तिब्बत तथा उसके बाद पश्चिमी चीन में भी गई, जिसके उदाहरण हमें पश्चिमी चीन की तुनवांग की गुफा में देखने को मिलते हैं। इस गुफा में ये चित्र भित्ति चित्रों के रूप में हैं। जिस प्रकार बौद्ध धर्म चीन में तिब्बत के द्वारा गया एवं उसका वहाँ पर प्रचार हुआ, उसी प्रकार से यह धर्म हिंदेशिया (Indonesia) में भी गया। जैसे-जैसे बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ उसके साथ-साथ बौद्ध शैली का भी इन देशों में चित्रों के द्वारा प्रचार हुआ।

पाल चित्रों में गुप्तकाल के चित्रो का संयोजन तथा प्रतिमांकन (Iconography) पूर्णरूप से देखने को मिलता है। वे हूबहू गुप्त चित्रों के समान हैं, केवल इनमें उनका सयोजन (Composition) दीवारों पर निरंतर नहीं होकर हस्तलिपि (Manuscripts) चित्रों के रूप में है। इनकी शिल्पकला के भी नियम गुप्तकाल की शिल्पकला के नियमो के समान ही हैं। इस समय भी चित्रों के छ अगों को चित्रों मे महत्व दिया जाता था साथ ही इन छः अंगों का प्रचार उस समय की शिल्प कला मे भी था (रूप भेद, प्रमाण, भाव, लावण्य, ऊजानम् (सादृश्य) तथा सद्रिका भग' (वर्णनिकाभग)। पाल चित्रों में भी एक साथ बहुत-सी आकृतियो का चित्रण किया गया है जैसे अजन्ता के चित्रों में। ये चित्र बहुत ही सजीव बने हैं।

पाल शैली के चित्रो की विशेषतायें

शैली के अनुसार इन चित्रों को दो भागों में बाँटा जा सकता है। पहली दसवी शताब्दी में बगाल, बिहार (नालन्दा एव बिक्रमशिला) तथा नेपाल में महायान की बौद्ध पुस्तको के चित्र, तथा दूसरी शैली के चित्र जिनमे ह्रास के चिह्न कम हैं, जिन्हें पूर्वमध्यकाल के चित्रों के साथ मिला दिया गया है। इस कला पर बौद्ध शैली का प्रभाव स्पष्ट दिखता है। इस प्रकार के चित्र नेपाल, बंगाल तथा बिहार में भी पाये गये हैं।

पाल शैली के चित्र ताड पत्र पर बने हैं। ये 22¼ " × 2¼" के नाप में हैं। कहीं-कहीं पर चित्र के अक्षर श्वेत हैं तथा पृष्ट भूमि (Background) काली बनाई गई है। इन ताड़पत्रो के बीच में चौकोर आकार में महायान के देवी, देवता या बौद्ध धर्म के चित्र बनाये गये हैं जिनका विषय जातक की कहानियों में से लिया गया है तथा ये अपने में बौद्ध धर्म का प्रभाव दिखाते हैं। इन चित्रों में लाल, नीले, सफेद, एव काले रगों का प्रयोग किया गया है एवं इन रंगों के मिश्रण से बने रगों का भी प्रयोग हुआ है। इनमें कहीं-कहीं पर चटकीले रंगों का भी प्रयोग किया गया है। इनके रगों में बहुत मिलावट की गई है। सुनहले

रंग का प्रयोग यहाँ पर नहीं किया गया है। बाद के हस्तलिपि चित्रों में काले रंग के कागज का भी प्रयोग किया गया है। इन चित्रों पर अजन्ता के चित्रों का प्रभाव स्पष्ट दिखता है। किसी-किसी चित्र में महायान की भयंकर आकृतियों का भी चित्रण है। पाल चित्रों में भित्ति चित्रों के सभी गुण मिलते हैं, केवल वे आकार में छोटे हैं। इन चित्रों की भिन्नता केवल नेपाल के चित्रों से दिखती है, जिसमें आकृतियों का मुँह मंगोल ढग का बना है। हालाँकि इन चित्रों में अजन्ता के चित्रों की विशेषतायें हैं परंतु ये ह्रासप्रद चित्र हैं। इन चित्रों मे सवा चश्म चेहरों को मुख्यतः बनाया गया है। लंबी आँखों को भी महत्त्व दिया गया है।

भारत में गुप्त राज्य सातवीं शताब्दी में समाप्त हो गया था परतु गुप्तकाल के बड़े भित्ति चित्रों को बनाने की प्रथा पाल राज्य की हस्तलिपियों (Manuscripts) के छोटे चित्रों मे पाई जाने लगी थी। इनमें भित्ति चित्रों की लबी रेखाओं का प्रयोग होने लगा था, केवल इन चित्रों का नाप छोटा हो गया था। ये चित्र छोटे होते हुए भी गुप्तकाल की चित्रकला के सभी गुणों से युक्त थे, जिससे हमें पुराने चित्रों की परम्पराओं की निरतरता स्पष्ट दिखती है। उस युग में लका मे भी कला की उन्नति पाल राज्य की कला की पद्धति पर होने लगी थी, जो उस समय पूर्वी भारत की प्रचलित कला थी।

पाल तथा सेन कलाओं का बहुत अधिक प्रभाव भारत की दूसरी कलाओं पर पडा। जैसे उडीसा के मदिरों (जो राजपूत परपराओं के थे) ने भी पाल राज्य के आदर्शों को अपना लिया। साथ ही बरमा की मूर्तियो पर पाल मूर्तियों तथा मंगोल मूर्तियों का सम्मिलित प्रभाव पड़ा था। यही प्रभाव उनके भीत्ति चित्रों मे भी दिखता है। साथ ही पाल कला का प्रभाव स्याम की कला पर भी दिखता है। इस समय बगाल की कला पर विदेशी प्रभाव भी हमें देखने को मिलता है। पहला विदेशी प्रभाव इन पर चीनी कला का था साथ ही इन पर दूसरा विदेशी प्रभाव बरमा की कला का पड़ा जो कि उनके मदिरों की वास्तुकला में स्पष्ट दिखता है इसका अच्छा उदाहरण आनंद मेरु मदिर (Anand Pagoda) है। पश्चिमी भारत में पाल कला की ही अपभ्रंश शैली जैन लघुचित्रो (Jain Miniature) में हमें देखने को मिलती है, केवल यहाँ पर इनका विषय जैन धर्म की कथायें हैं।

सेन कला एवं शैली (1118-1199 ई०)

सेन राजाओं ने पाल राजाओं को 1150-1199 ई० में जीत कर सेन राज्य की स्थापना की। ये राजा दक्षिण के ब्राह्मण थे परतु इन्होंने अपने राज्य की स्थापना बंगाल में की साथ ही 12वीं तथा 13वी शताब्दी की बंगाल की कला में इनका योग दान बहुत महत्त्व रखता है। ब्राह्मण होते हुए भी ये हिंदू धर्म

की कट्टरता को बहुत घृणा की दृष्टि से देखते थे क्योंकि इन्होंने बाद में बौद्ध धर्म को अपना लिया था। ये कला के अच्छे पारखी थे। इनका राज्य 1199 ई० में मुसलमानों के विजय कर लेने पर समाप्त हो गया। इस समय का बौद्ध धर्म अंतिम बौद्ध धर्म था, जिसको पूजा के ढंग की उत्पत्ति तथा स्त्रियों द्वारा देवी देवताओं की उपासनाओं के कारण बाद में गुह्यसमाज तंत्र में लाया गया। इसी से बंगाल, उडीसा, तथा आसाम में विजरायन तंत्र का जन्म हुआ एव उसकी उन्नति हुई। इसमें स्त्री एव पुरुष दोनों ही को देवी तथा देवता के रूप में पूजा जाता था। इस तत्र मे गहन दैवि शक्ति, प्रेम संबंधी कार्य तथा सांकेतिक भाषा को ही महत्त्व दिया जाता था। सेन राजाओं के समय में कुछ ही ब्राह्मण परिवार इस पूजा के कार्य को करते थे, जो अभी भी बंगाल की अभिजातीयता को बनाये हुए हैं। ये सेन राजा शिव एव शक्ति की उपासना करते थे। इनमे पहले केवल सर्पों की देवी ही प्रचलित थी परन्तु बाद में काली ही की पूजा सबसे अधिक बगाल मे की जाने लगी थी यह हिंदू धर्म का प्रभाव था क्योंकि हिंदू धर्म बगाल मे बहुत बाद में प्रचलित हुआ था। ये स्वय आधे मगोल थे इसी कारण ये काली की उपासना मे मिथुन के ढंग तथा बलिदान को महत्त्व देते थे। शक्ति को यहाँ पर बहुत नामो से पुकारा जाता था जैसे काली, माया, दुर्गा, महाकरुणा, उमा, चडी इत्यादि।

सेन राज्य में हिंदू धर्म के ब्राह्मणीय विचारो पर भी विश्वास किया जाता था। ये विशेषकर सूर्य तथा विष्णु भगवानकी उपासना करते थे, जिनकी मिट्टी की मूर्तियाँ (terractta) विशेष महत्त्व की हैं। पाल एवं सेन कला में बहुत अधिक अलकरण किया गया है। साथ ही ये मूर्तियाँ अपने में बरोक शैली (Baroque) को भी दिखाती हैं।

तांत्रिक कला

सातवी से ग्यारहवी शताब्दी में तान्त्रिक कला काबगाल में बहुत प्रचार हुआ। इसका प्रभाव हिंदू तथा बौद्ध धर्म दोनों पर ही समान रूप से पडा। इस प्रकार से तान्त्रिक कला के दो भाग हो गये बौद्ध तत्र तथा हिंदू तंत्र।

बौद्ध तंत्र—इसकी उत्पत्ति बौद्ध धर्म पर तान्त्रिक धर्म के प्रभाव के कारण हुई इसी से इसे बौद्ध तंत्र कहा गया। यह निश्चेष्ट शक्ति (Passive force) की स्थिति थी। बौद्ध तत्र की हस्तलिपियाँ (Manuscripts) बंगाल, उडीसा, एव नेपाल से ग्यारहवी शताब्दी की बनी प्राप्त हुई हैं। नेपाल से प्राप्त चित्र लघुचित्रों (Miniature) में हैं। इनमें 85 हस्तलिपियाँ (Manuscripts) हैं एव 37 लघु चित्र (Miniature) हैं। इन सभी का विषय बुद्ध भगवान की

जीवनी एवं बौद्ध धर्म के सिद्धांत हैं। ये ताड़पत्रों पर बने हैं। ये चित्र बौद्ध चित्रों की परंपरागत शैली को दिखाते हैं। भारत पर मुगलों के आक्रमण के साथ जिस प्रकार हिंदू धर्म का प्रचार कम होता गया उसी प्रकार से इस बौद्ध तंत्र का भी प्रचार कम हो गया, एवं यह तिब्बत, बरमा इत्यादि स्थानों पर चला गया। यह धर्म इतना नष्ट हो गया कि इसका अवशेष भी अब हमें नहीं दिखाई पड़ता है।

हिंदू तंत्र--यह हिंदू कला पर तांत्रिक कला के प्रभाव के कारण जन्मा इसी कारण इसे हिंदू तत्र का नाम दिया गया। इसमें शक्ति की क्रियात्मक शक्ति (Active force) को लिया जाता है। यह धर्म 750-1150 ई० में बंगाल में अपनी चरमसीमा पर था। बौद्ध तंत्र तथा हिंदू तंत्र में मुख्य अतर उनके सोचने के ढंग में है, पर हिंदू तंत्र में ऐसा विश्वास किया जाता है कि तंत्र की दार्शनिकता में आध्यात्मिक शक्ति (Spiritual Power) केवल शक्ति की क्रियाओं के मिलने से या नारी की ही पूजा के द्वारा प्राप्त हो सकती है, परतु बौद्ध तत्र धर्म में उन्हे स्वतत्र रूप से निश्चेष्ट ब्रह्माण्डीय माँ से ही मिलने पर प्राप्त होती है।

योरपीय लोग जब भारत के मदिरों में प्रेम सबधी भोग की मूर्तियो को देखते हैं तो आश्चर्यचकित रह जाते हैं, साथ ही भारतीय सभ्य लोगो की गर-दनें उन्हे देख कर शर्म से झुक जाती हैं। मंदिरों में इस प्रकार की मूर्तियो का प्रचार केवल हिंदू धर्म में तात्रिक धर्म के मिलने के कारण हुआ। इस प्रकार की मूर्तियां भुवनेश्वर, कोणार्क तथा खजुराहो के मदिरों में विशेषकर मिलती हैं।

शक्ति को ही सृष्टि का जन्मदाता कहा गया है, इसी कारण हिंदू तत्र में शक्ति को महत्त्व दिया गया है। वेदात के मूल सिद्धातों को ही तत्र के भाव में लिया गया है, एवं ब्रह्म तथा माया (शक्ति) का संबध इसमें दिखाया गया है। इस तात्रिक धर्म में बिना शक्ति (माया) के किसी भी ब्राह्मण की कल्पना नही की जा सकती है इसी कारण देव दासियों का प्रचार प्रारंभ हुआ। तंत्र में अंतिम सत्य तक ब्राह्मण केवल माया या लीला द्वारा ही पहुंच सकते थे, ऐसा विश्वास किया जाता था। हिंदू धर्म की पाँच वस्तुयें (मद्य, मांस, मीन, मुद्रा तथा मैथुन) जो ब्राह्मणों को मना थी वही अब उनके धर्म की प्रधान वस्तुयें बन गई, एवं उनका विचार हो गया कि बिना इन्हें अपनाये ज्ञान नही प्राप्त हो सकता। इसमें शक्ति को आदि शक्ति माना गया जो सर्वदा लोक में ही रहती थी। हिंदू तथा बौद्ध धर्म के कर्मकाण्डों पर भी इसका प्रभाव पड़ा एवं उसमें तंत्र के कर्मकाण्डों को अपनाया गया।

कौल कपालिक तंत्र धर्म खजुराहो के आस पास मध्य युग में फैला हुआ था। सबसे पुराना इस धर्म का मंदिर "चौसठ योगिनी" का माना गया है।

यह संप्रदाय मैथुन तथा मद्य से संबंधित था, एवं उनका विचार था कि मोक्ष केवल भोग द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। इस धर्म का भी अंत मुसलमानों की भारत पर विजय के साथ समाप्त हो गया। इस हिंदू तंत्र धर्म के मुख्य मंदिर खजुराहो एवं कोणार्क के हैं।

खजुराहो के मंदिर

ये मंदिर उत्तर मध्यकाल में छतरपुर राज्य मे बनाये गये थे। इन मंदिरों के बनने के समय के बारे में मतभेद है, कुछ के विचार से इनका समय 10 वी से 16 वी शताब्दी कहा गया है परतु कुछ लोगो के विचार से ये 10 वी से 11 वी शताब्दी के बीच में ही बने माने गये है परतु कुछ विद्वानों के विचार से इनका निश्चित समय 958-1002 ई० कहा गया है। बुंदेलखंड में बहुत-सी महत्त्वपूर्ण इमारतें चंदेल राजाओं द्वारा दसवी शताब्दी में बनायी गयी थी। इस कारण इसे भी उसी समय का बना कहा जा सकता। खजुराहो के मंदिर ढागा तथा गाडा राजाओं द्वारा बनाये गये थे। खजुराहो 'जहोति' नाम के राज्य की दसवी शताब्दी में राजधानी मानी गयी है। यह भारतीय आर्य शैली में बना हुआ है। इस संप्रदाय के मंदिरो में 'भुवनेश्वर' का मंदिर सबसे पुराना माना गया है साथ ही इस शैली में खजुराहो के मंदिरों का दूसरा स्थान है।

खजुराहो में 30 मंदिरो का समूह है। ये अपनी वास्तुकला की उत्तमता तथा मूर्ति कला की सुदरता के लिए विख्यात है। यहाँ के मंदिरों के अंदर तथा बाहर की दीवारें बहुत ही कोमल तथा भावपूर्ण दृश्यो के अध्युचित्रों (Reliefs) से भरी हुई है।

खजुराहो की मूर्तियों मे गुप्तकाल की विशेषतायें विद्यमान हैं तथापि इनमें जिन घटनाओं के बड़े-बड़े दृश्य अंकित किये गये हैं वे इस काल की निजी विशेषताओं के सूचक हैं। इन दृश्यों में गति तथा अभिनय स्पष्ट दिखता है, इस कारण इस काल को भारतीय मूर्ति कला का सबसे उत्तम काल माना गया है। यहाँ के मंदिर वर्जनों प्रेम संबंधी स्पष्ट अध्युचित्रो के लिए विख्यात हैं। सबसे प्रथम कन्नौज के महान प्रतिहार शिक्षकों द्वारा ये बनाई गई थी तथा बाद में इनमें तांत्रिक शिव की उपासना के भावों को व्यक्त किया गया, इसी कारण यहाँ की मूर्तियों में तांत्रिक भाव बहुत साधारण तथा अत्यधिक स्पष्ट है। "64 योगिनी" का मंदिर इसको स्पष्ट करता है। यह मैथुन तथा मद्य संबंधी कर्म-काण्डों से भरा हुआ है। यहाँ की मूर्तियाँ योग भोग के द्वारा ही प्राप्त होता है के सिद्धांतों पर आधारित हैं। यहाँ की बनी मूर्तियों को थोड़ी दूर से देखना चाहिये क्योकि इन मूर्तियों में थोडा अलग हटकर विलक्षणता को बनाया गया है यहाँ पर देखने वालों को प्रेमियों की उत्कंठा बुरी नहीं लगती है।

यहाँ का 'कंदरिया महादेव का मंदिर' बहुत प्रशंसनीय है। इस मंदिर का बाहरी रूप अंदर के रूप को बहुत सुन्दर ढंग से दिखाता है जो धीरे-धीरे चढ़ता चला गया है और एक ऊँचे शिखर में समाप्त हो गया है। यह एक छोटी प्रतिकृति द्वारा मंदिर के ढालू ओर को सम्हालता है। यहाँ पर भी आश्चर्यजनक प्रेम संबंधी मूर्तियाँ बनी हुई हैं। ये कोणार्क की मूर्तियों से अधिक सुंदर हैं।

खजुराहो की मूर्तियों में मौलिकता का अभाव है। इस काल में मूर्तियाँ केवल सजावट की दृष्टि से बनाई गई थी क्योंकि इस समय कलाकारों की विचार शक्ति क्षीण होने लगी थी। यहाँ की बहुत सी मूर्तियाँ असावधानी से बनाई गई हैं। ये शरीर रचना (Anatomy) की दृष्टि से बहुत असंभव है।

खजुराहों में कुछ मूर्तियाँ पश्चिमी सभ्यता की भी बनी मिली हैं जिनके शरीर की रचना अति उत्तम है। ये यहाँ की सबसे परिष्कृत मूर्तियाँ हैं। इन पश्चिमी सभ्यता की मूर्तियों से हमें स्पष्ट पता चलता है कि इस समय विदेशियों के आक्रमणों के कारण यह विशेष परिवर्तन मूर्तिकला में आया होगा। इसी कारण इन्हें विशेष महत्त्व दिया गया होगा। खजुराहों की मूर्तियों को हिन्दू तंत्र पर आधारित होने के कारण भी बहुत महत्त्व दिया गया है। ये अपने समय की कलापूर्ण कृतियाँ मानी गई हैं।

कोणार्क के मन्दिर

कोणार्क के मंदिर में हमें मध्ययुगीन उत्तरी भारतीय हिन्दू कला का चरमोत्कर्ष देखने को मिलता है। यहाँ की कला उस समय के उत्तरी पूर्वी राज्य की नवी से तेरहवी शताब्दी की कला एवं गुप्तकाल के बीच के युग की कला को दिखाती है। यहाँ की कला खजुराहो तथा भुवनेश्वर के मंदिरों के समान है परंतु फिर भी यह गुप्त शैली से पूर्ण रूप से भिन्न है। यह मंदिर चन्द्रभागा नदी के किनारे पर बसा हुआ है। इसके निर्माण का प्रारंभ दसवी शताब्दी में हुआ था परंतु इसकी समाप्ति तेरहवी शताब्दी में मानी गई है तथा 1237 ई० में राजा नरसिंह वर्मा ने इस मंदिर को आधुनिक रूप देना प्रारभ किया था परंतु श्री पर्सीब्राउन के विचार से यह मंदिर कभी पूरा हुआ ही नहीं। इस मंदिर के पूजा गृह में भी किसी मूर्ति की स्थापना नही जान पडती है जिससे श्री पर्सीब्राउन के मत की पुष्टि होती है। इस काल में कलाकारो की विचार शक्ति क्षीण हो रही थी इसीसे उनकी मूर्तियो में मौलिकता का अभाव हो गया था। इस समय मूर्तियाँ केवल सजावट की दृष्टि से बनाई जाने लगी थी। इन मंदिरों की मूर्तियों के मुखमण्डल के कपोल स्थूल तथा उभरे हुए बनाये गये हैं एवं बल खाती देह का प्रदर्शन यहीं से ही प्रारंभ हुआ जान पड़ता है, साथ ही इनमें वास्तविकता का ध्यान नहीं रखा गया है।

यहाँ पर सूर्य भगवान के मंदिर को बहुत महत्त्व दिया गया है। यह रथ के आकार का है जिसे सात घोड़े खींच रहे हैं तथा यह बारह जोड़ी पहियों पर टिका हुआ है, इसी कारण इस मंदिर को रथ भी कहा जाता है। इसको देखकर जान पड़ता है कि सूर्य भगवान आकाश मार्ग पर भ्रमण के लिए निकले हुए हैं। इस मंदिर की बहुत कुछ समानता उड़िसा के सूर्य भगवान के रथ (मन्दिर) से दिखती है। यह काला मेरु-मंदिर है एवं यह पुरी से 19 मील उत्तर पूर्व में बना हुआ है। इसे सूर्य भगवान की उपासना के लिए बनवाया गया था। इसकी पद्धति विष्णु की पद्धति से बहुत मिलती है। ऐसी किंवदंती है कि इस मंदिर का निर्माण कृष्ण एवं जबावती के पुत्र सबा द्वारा किया गया था। परंतु यह तो निश्चित ही है कि केसरी कुल के राजा ने कोणार्क में एक मंदिर का निर्माण कराया था। पुरी के मंदिर के इतिहास में भी कोणार्क का वर्णन है। इसके पास 28 मदिर बने है ये सभी मंदिर पत्थरों के बने हुए हैं। कोणार्क का सूर्य भगवान का रथ अद्वितीय है। इस मंदिर में कोई भी पत्थर बिना मूर्तियों के नही काटा गया है। मूर्तियाँ छेनी द्वारा बहुत कुशलता से काटी गई हैं परंतु ये बहुत उन्नत नही हैं। इसका कारण भारत पर मुगलों के आक्रमणों का प्रारंभ भी माना गया है साथ ही कलाकारों की विचार शक्ति की क्षीणता भी। ये हजारों की सख्या में बनी हैं साथ ही ये भिन्न-भिन्न नाप की हैं। इन मूर्तियों के नाप की मूर्तियाँ कही से भी प्राप्त नही हुई हैं। इन्हें ऐसे व्यवस्थित किया गया है कि ऐसा भास होता है कि पूरी ही इमारत सजीवता से झूल रही है। रथ के पहियो पर जीवन की विभिन्न झलकियाँ चित्रित है जिनमें मनुष्य की विलासिता का स्पष्ट चित्रण दिखता है। मंदिर की भीतरी दीवारों पर मिथुन के दृश्य अध्युचित्रो में बने हुए हैं, जो कि तान्त्रिक कला के भात्र की हैं। ये सजीव एवं स्वाभाविक है। मंदिर का बाहरी अलकरण मनुष्य के जीवन की विभिन्न झलकियों को दिखाता है तथा सूर्य की शक्ति का भी प्रदर्शन करता है। अदर से यह और हिन्दू मदिरों के ही समान सादा बना हुआ है। कोणार्क की सर्वोत्कृष्ट कृतियाँ पशुओ की हैं जैसे शेर, हाथी, घोड़ा इत्यादि। ये मूर्तियाँ बहुत ही सजीव जान पड़ती हैं।

●

अध्याय 9

भारत के हस्तलिपि
(Manuscripts) चित्र 900–1500 ई०
(जैन शैली या अपभ्रंश शैली एवं पाल शैली)

प्राचीन कलाकारों ने भारत में पहली से सातवी शताब्दी तक भित्ति-चित्रों की परंपरा को चलाया परंतु इसके बाद भारतीय कला में यवनों के भारत पर आक्रमणों के कारण बहुत परिवर्तन हुए। यवन मूर्तिकला तथा चित्रकला के प्रेमी न थे। इस कारण इस युग में कलाकार बहुत निराश हो गये और वे अपने भावों को पुस्तकों के रूप में चित्रित करने लगे। इस प्रकार लघुचित्रों (Miniature) तथा हस्तलिपि (Manuscripts) चित्रो की परपरा का प्रारंभ हुआ, साथ ही पश्चिमी भारत मे ताडपत्रों पर धर्म की पुस्तकों की रचना हुई।

लघु चित्रो (Miniature Paintings) के बनने की प्रथा का प्रारंभ विशेषकर मध्यकाल में हुआ। पश्चिमी भारत में पाल शैली की ही अपभ्रंश शैली हमें जैन हस्तलिपियों में देखने को मिलती है। इन चित्रों में जैन संप्रदाय की पुस्तकें मुख्यत हैं, इसी कारण इस शैली को जैन शैली के नाम से पुकारा गया। सातवी से सोलहवी शताब्दी में ताडपत्रो पर अलकृत चित्रो का प्रचलन हुआ। इन चित्रों का भारतीय चित्रकला में महत्त्वपूर्ण स्थान है परतु इसके बहुत थोडे ही उदाहरण अभी तक प्राप्त हुए हैं। कही-कही पर इन हस्तलिपि चित्रों का विषय बौद्ध धर्म भी है। भारत के हस्तलिपि (Manuscripts) चित्र जैन एव बौद्ध धर्म के विषयों को चित्रित करते हैं इस कारण इन्हें दो प्रकार के चित्रों में बांटा जा सकता है—

1. मध्यकालीन बौद्ध हस्तलिपि चित्र
2. मध्यकालीन जैन हस्तलिपि चित्र

मध्यकालीन बौद्ध हस्तलिपि चित्र

बौद्ध हस्तलिपि चित्रों में बौद्ध धर्म ही चित्रों का विषय है। भारतीय बौद्ध धर्म की हस्तलिपियों (Manuscripts) के दो महत्त्वपूर्ण उदाहरण बगाल से प्राप्त हुए हैं। एक पर लकड़ी का चित्रित आवरण भी बना है। दोनों में ही बौद्ध धर्म के ज्ञान के दृश्य चित्रित हैं तथा भगवान बुद्ध के जीवन से संबंधित दृश्य बने हुए हैं। ये शैली में बहुत कुछ नेपाली हस्तलिखित ग्रथों (Mss) से मिलते

हैं विशेषकर के अष्टशास्त्रोका प्रजनापारमिता बहुत मिलती है। पहली दोनों ही पुस्तकों में क्रमश. 85 तथा 37 लघुचित्र (Miniature) हैं। दोनों ही ग्यारहवी शताब्दी के प्रारंभ की बनी मानी गई हैं। इसी प्रकार की 1137 में रचित एक पुस्तक बोस्टन के संग्रहालय (Bostan Museum) में है। इसमें 18 लघु-चित्र हैं। इसका लकड़ी का आवरण बहुत अच्छी अवस्था में है, इसमें भी पूजा की वस्तुएँ तथा भगवान बुद्ध के जीवन की घटनायें चित्रित हैं विशेषकर माया दर्शन, सात बुद्ध भगवान तथा मैत्रिया हैं। बौद्ध हस्तलिपि (Manuscripts) चित्रों के उदाहरण की एक पुस्तक प्रो० अवनीन्द्रनाथ टैगोर के पास थी जिसका आवरण जातक की कहानियों से भरा हुआ है। ये सभी चित्र ताड़पत्र पर बने है। इनके लघुचित्र मौलिक रूप में अलकृत लिखाई से संबंधित नही हैं, क्योंकि इनमें लिखने के बाद बचे हुए स्थान पर कलाकार द्वारा चित्र बनाये गये हैं। इनके अतिरिक्त कुछ हस्तलिपियाँ दसवी शताब्दी के नेपाल तथा भारत के बोधिसत्व के टंखा के चित्र पश्चिमी चीन में पाये गये है। यही से कुछ पुराने तिब्बत की बौद्ध धर्म की पताकायें (Bannars) भी प्राप्त हुए हैं। हस्तलिपियों के विवरण की परपरा तथा मंदिरों के पताका के चित्र अभी भी नेपाल तथा तिब्बत में पाये जाते हैं।

इन बौद्ध हस्तलिपिचित्रों का सग्रह हमें पुरानी परपरा की निरतरता को दिखाता है, जिसमें संयोजन (Composition) तथा प्रतिमाकन (Iconography) एकदम नही बदला है। यहाँ चित्रो के दृश्य अधिक भरे हुए हैं एवं रग तीव्र तथा नियमानुसार है। यह शैली गुणो में मदिरो से सबधित है किंतु कम भावनात्मक है। ये चित्र अधिक अलंकृत हैं। इन हस्तलिपियो के चमकीले रग मुख्यत काले, पीले, लाल एवं सफेद रंगों का प्रयोग है तथा निष्पत्ति का रेखांकन ऊची सौंदर्यानुभूति को दिखाते हैं।

जब यह कला भारत मे समाप्त होने लगी तो यह नेपाल के द्वारा तिब्बत एव उसके बाद पश्चिमी चीन में भी गई जिसके अच्छे उदाहरण हमें तुनवागक की गुफा में देखने को मिलती हैं।

इन पुस्तक चित्रो के अतिरिक्त इस शैली के नेपाल एव बगाल में परवर्ती काल में पट चित्र भी बनाये गये, जिनमें अजंता की शैली की यथोचित विशेषतायें हैं। इस शैली में अजता की परपरा होते हुए भी अजंता की शैली का पुष्ट रूप नही है। बाद के हस्तलिपि चित्रों में काले कागज का भी प्रयोग मिलता है। इन चित्रो की अपूर्वता अपने में बड़ा ऐतिहासिक गुण रखती है।

इन चित्रो में भी चित्र के छः अंगों को महत्त्व दिया गया है। पाल चित्रों में भी एक साथ कई आकृतियों का चित्रण मिलता है जैसा अजंता के चित्रों में

साथ ही ये चित्र बहुत सजीव जान पड़ते हैं। ये चित्र $22\frac{1}{2}'' \times 2\frac{1}{4}''$ के नाप के हैं। कहीं-कहीं पर चित्र की लिपि श्वेत एवं पृष्ठभूमि काली बनाई गई है। 17 वीं तथा 18 वीं शताब्दी के कुछ चित्र महत्व के हैं। ये उन्नत शैली के हैं बाद की हस्तलिपियाँ अधिकतर मोटे काले कागज पर लिखी गई हैं न कि ताड़ पत्र पर।

इनमें सुनहले रंग का प्रयोग नही है। चित्रों की रेखायें काले रंग से बनाई गई हैं। आकृतियों में सवा चश्म चेहरों की अधिकता है। साथ ही आकृतियाँ सुडौल हैं एवं उनमें भंग की प्रधानता है परंतु फिर भी उनमें अति भंग का अभाव है। मानव आकृतियों की नाक लंबी है एव वह परले गाल से आगे निकल गई है। आकृतियों के हाथ एवं पैरों मे जकड़ है। आँखें बड़ी एवं वक्र रेखाओं से बनाई गई हैं। सर चपटे हैं। इस शैली में केशो को कोमल और गुच्छों में अंकित किया गया है। पृष्ठ भूमि में केले एवं नारियल की हरियाली देखने को मिलती है।

लंका में पोलोमारुवा के महादेभालासाया की दीवारों पर जातकों के भित्ति चित्र बने हुए हैं। ये चित्र हर प्रकार से तेरहवी शताब्दी के पहले के बने हैं। काँडी के पास हिंडागला में छोटा सयोजन मिला है जो सातवी शताब्दी का बना बताया जाता है परतु देखने में बारहवी से चौदहवी शताब्दी का लगता है। रिदी विहार की पहाडी के चित्र अधिक पुराने हैं, मध्यकालीन सिंहाली चित्र सिजिरिया के समय के तथा 18 वी शताब्दी की अलंकृत कला के बीच के माने गये हैं, जो कि अभी भी बहुत से विहारों की दोवारों पर बने हैं जैसे कृतिश्री (जो कि कैंडी के पास है) में दिखते है। यहाँ से 18 वी तथा 19 वी शताब्दी के सिंहाल बौद्ध हस्तलिपियाँ भी प्राप्त हुई हैं। बौद्ध धर्म के चित्रो का बरमा, स्याम एवं कंबोडिया में भी प्रचार था, इस कारण यहाँ से भी बौद्ध धर्म की पुस्तकें प्राप्त हुई हैं। बारहवी शताब्दी से अब तक ऊँचे इंद्रियजनक तथा सुंदर बौद्ध तथा हिंदू धर्म के चित्रों का स्कूल "बाली द्वीप" में दीवारों, कपड़ों तथा हस्तलिपियों के रूप में फला फूला है। इन सब ही चित्रों को मध्ययुगीन बौद्ध हस्तलिपि चित्र माना गया है।

शैली की दृष्टि से इन चित्रों को दो भागों में बाँटा जा सकता है :—

1. दसवीं शती में बंगाल, बिहार एवं नेपाल में महायान की बौद्ध पुस्तकों के चित्र।

2. जिन चित्रो में हास्य के चित्र कम है, साथ ही इन्हें पूर्व मध्यकाल के चित्रों के साथ मिला दिया गया है।

जैनधर्म के हस्तलिपि चित्र या जैन शैली

पश्चिमी भारत में पाल कला की ही अपभ्रंश शैली हमें जैन लघु चित्रों के रूप में देखने को मिलती है। केवल यहाँ पर इनका विषय जैन धर्म की कथायें है।

जैन कला भी भारतीय हस्तलिपि चित्रों की ही कला है एवं इनमें जैनधर्म के दृष्यों की भरमार है। जैन चित्रकला का आरंभ गुजरात के श्वेतांबर कलम से माना गया है। जैन कला को पश्चिमी भारतीय लघुचित्रों की कला या गुजराती कला भी कहा गया है। सबसे प्रथम जैनकला गुजरात में ही प्रचलित थी, इसी कारण से इसे गुजराती कला भी कहा गया है, परंतु बाद में इस शैली के चित्र पश्चिमी भारत के दूसरे प्रान्तों से भी प्राप्त हुए इस कारण इस शैली को "पश्चिमी भारतीय लघुचित्रों" का नाम दिया गया। इसी नाम को अधिक ठीक माना गया है। अधिकतर ये हस्तलिपियाँ गुजरात के जैन धर्म की पुस्तकालयों तथा ज्ञानभद्र की पुस्तकालय से भी प्राप्त हुईं हैं। इनमें जैन विद्वानों के जीवन का चित्रण है इसी कारण कुछ विद्वानों ने इसे "जैन कला" के नाम से पुकारा तथा चित्रों की शैली को "जैन शैली" का नाम दिया।

जैन धर्म में स्वामी महावीर को पूजा जाता है। यह धर्म मुख्यत: 12 वी शताब्दी में गुजरात में फैला हुआ था, इसी कारण इस धर्म के चित्र गुजरात तथा उसके आसपास के स्थानों से प्राप्त हुए हैं। इसी से वहाँ पर जैन धर्म के प्रचार का भी पता चलता है। जैनकला की परंपरा बारहवी तथा उसके बाद के हस्तलिपि चित्रों से मिलती है। इस शताब्दी के प्रारंभ में बहुत-सी हस्तलिपियों के धर्म के विषय के विवरण ताडपत्र, कागज तथा लकडी के किताबो के चित्रित आवरण जो कि बारहवी शताब्दी तथा उसके आगे की तिथियों के है, प्राप्त हुए हैं। इन चित्रकारों ने बगाल के ताडपत्रों के चित्रों की परपरा को ही अपनी किताबों मे नवी शताब्दी मे अपनाया। उन्होंने इन्ही ताडपत्रों की नकलें की परतु बारहवी शताब्दी के जैनधर्म के चित्र कागज पर भी बने। बाद में 'बसत विलास', 'गीत गोविंद', 'रति रहस्य' इत्यादि में भी इनके विवरण चित्र मिले। भद्रबाहु के कल्पसूत्र मे जैन धर्म के विद्वानों की जीवनी चित्रित मिली है। इसमें अधिकतर स्थान स्वामी महावीर के चित्रो से भरा है। यहाँ पर पूरा चित्र एक चौकोर दिल्हे के आकार का पूरे पृष्ठ की ऊँचाई में बना है और रिक्त स्थान पर सुदर ढग से टाइप की तरह के हाथो के अक्षरो द्वारा लिखा गया है, केवल कुछ ही स्थानों पर पूरा पृष्ठ चित्र के प्रयोग में लाया गया है। कहीं-कहीं पर दो लिखाई भी की गई है, पहली लिखाई विषय के बारे में है तथा दूसरी लिखाई कलाकार को समझाने के लिए लिखी गई है। एक ही विषय को

जैन शैली के चित्रों में कई बार बनाया गया है, जिनमें कोई भी एक दूसरे से संयोजन में भिन्न नहीं है, क्योंकि यह सच है कि ये चित्र संयोजन तथा शैली में एक पुरानी एवं परिरक्षित परंपरा को दिखाते हैं। इस चित्रकारी के स्कूल का

चित्र-22
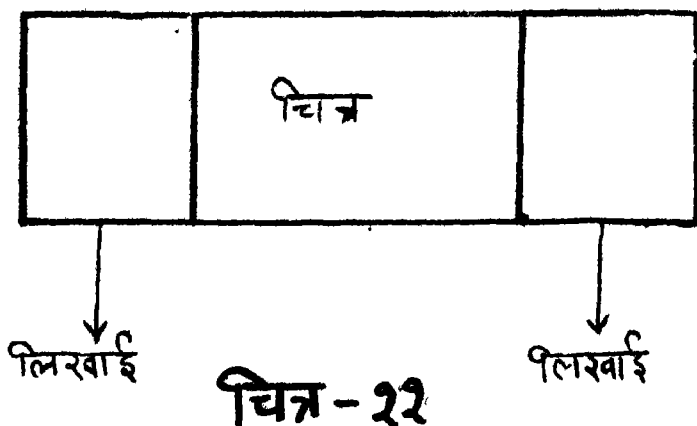
विशेष गुण उन चित्रों के रेखिक विचार (Linear Conception) का विवरण करना है। यहाँ पर सौंदर्यानुभूति के विचार का परिवर्तन कोमलता (Plastic) से रेखिक की ओर हुआ है। यह सबसे प्रथम एलोरा की गरुड पर विष्णु भगवान की सवारी का दृश्य है जो कैलाश मंदिर मे बना है। परंतु ऐसे भी बहुत से चित्र प्राप्त हुए हैं जो कि भिन्न प्रकार के नापों में हैं। इन चित्रों में थोडी बहुत पश्चिमी भारतीय चित्रकला की परंपरा दिखती है।

पन्द्रहवी शताब्दी के कल्पसूत्र के कुछ विवरण चित्र अभी भी नहार के कलकत्ता संग्रहालय में है। यहाँ पर कुछ विश्व विज्ञानों (Cosmologies) तथा विश्वविज्ञान आरेखों (Cosmological diagrams) को भी कल्पसूत्र मे कालिकाचारय की कथा मे चित्रों के रूप में वर्णित किया गया है। सबसे पुरानी हस्तलिपियाँ पाटनभद्र में 1237 ई० की ताडपत्रों पर प्राप्त हुई हैं।

इन चित्रों में अधिकतर विषय किनारों पर कथाओं के रूप में चित्रित किये गये हैं जिनका विषय राग रागिनियाँ, तान, नृत्य की विभिन्न मुद्रायें तथा मूर्छना हैं। कही कही पर चित्रो के किनारो पर आकृतिक चित्रण रेखांकन के रूप में किया गया है। कागज पर बने इस शैली के चित्र भारतीय कला मे कागज पर बने हुये सर्व प्रथम चित्र हैं। बाद के जैन धर्म के चित्रकारों ने मुगल तथा राजपूत शैली के कलाकारों से प्रेरणा ग्रहण कर के चित्र बनाये। बल्कि जैन चित्रकला

गुजरात के श्वेताम्बर शैली से प्रारम्भ होकर वर्षों तक राजपूताने में उन्नत होती रही, एवं अंत में ईरानी प्रभावों से मुक्त होकर 'राजपूत शैली' के नाम से प्रचलित हुई।

जैन शैली में तान्त्रिक देवी देवताओं के वस्त्र चित्र भी बने। इन वस्त्र चित्रों की परपरा तिब्बत की थी। इस प्रकार के चित्र सोलहवी से अट्ठारहवीं शताब्दी तक बनते रहे। ताड पत्रों के चित्रो में स्थानाभाव के कारण उनकी रेखायें महीन बनाई गई जो कि कलाकार की प्रतिभा का कौशल दिखाती हैं। परंतु कागज पर बने चित्रों मे यह प्रभाव कम हो गया। ताड़पत्रों पर स्थानाभाव के कारण कागज पर चित्र अधिक बनने लगे, साथ ही इन चित्रों में वैशिष्टयता का अभाव हो गया।

अहमदाबाद के मुनि दयाविजयजी के सग्रह में पन्द्रहवी शताब्दी के बने कल्पसूत्रो के अच्छे उदाहरण मिलते हैं। ये अपभ्रंश कला इन चित्रों मे अपनी पराकाष्ठा पर है। तथा इन चित्रों की अलंकारिता भी बहुत उच्च कोटि की है। ये चित्र अजता के छोटे रूप ही लगते हैं। साथ ही इन चित्रों में गति तथा सजीवता है। इस शैली का कोई भावात्मक निजस्व नही है, ये कही से भी प्रगति के सूचक नही है इसी कारण इसे अपभ्रश शैली का नाम दिया गया। इस शैली के चित्रों को उत्तम चित्र नही माना गया है बल्कि ये चित्रकारी का बिगडा रूप ही है। अभी तक यह चितन का विषय ही बना हुआ है कि इस शैली को क्या नाम दिया जाये। इसे राय कृष्णदास ने बहुत सोचने के बाद "अपंभ्रश शैली" नाम दिया है। उन्होंने इस नामकरण का यह तर्क दिया है कि "इन चित्रों के आलेखन में उत्थान नही है परतु ये प्राचीन विकृति अवश्य है और यह पतन के युग के समय की कला है। इस समय भाषा भी अपभ्र श रूप में हो गई थी तथा चित्र भी। इस कारण चित्रों का विकृत रूप हो गया और इस कारण इस विकृत शैली को 'अपभ्रंश शैली' का नाम देना युक्ति सगत है।"

जैन चित्र जिन पुस्तको में हैं वे निम्नलिखित हैं—

श्री कल्पसूत्र, सचित्र कल्पसूत्र, जैन चित्रकल्पलता, श्री जैन चित्रकल्पद्रुम, महाप्रभाविक नवस्मरण, Story of Kalam, Miniature Paintiug works of Jain Kalpsutra, उत्तराध्ययन सूत्र, एशियेंट विज्ञप्ति पत्राज इत्यादि।

जैन शैली के चित्र जोनपुर, काश्मीर, राजस्थान, सिंहल द्वीप तथा नेपाल से प्राप्त हुए हैं। इस शैली के चित्र उड़ीसा एव बगाल से ताडपत्र चित्रों के रूप में भी प्राप्त हुए हैं। चौदहवी शताब्दी के बने इस शैली के चित्र दक्षिण भारत से भी प्राप्त हुए हैं। विजयनगर के चित्रों पर भी इस शैली का प्रभाव दिखता है।

जैन चित्रों की विशेषतायें

ये चित्र विशेषकर ताड़पत्र या कागज पर धर्म ग्रंथों के विवरण के रूप में बनाये गये हैं। ये चौकोर आकार के चित्र हैं एवं पूरी पृष्ठभूमि के बीच में ये चित्र बने हुए हैं तथा उसके दोनों ओर लिखाई की गई है एवं कई बार इसके विपरीत भी बनाया गया है। इन चित्रों का विषय जैन धर्म हैं। ये 10" × 3" के नाप के बने हैं। इन चित्रों में सिंहल बौद्ध कला के समान ही खाली स्थानों को कमल के समूहो, स्वास्तिक तथा छत्र से भर दिया गया है। इन चित्रों में विवरण तथा चित्र में सबंध है। जैन ग्रंथों में लिपि के बीच-बीच में चित्रण के लिए स्थान छोड दिया जाता था।

जैन चित्रों का सयोजन नियमबद्ध तथा परपरागत ढंग से निश्चित ही किया गया है। इन चित्रों में संयोजन करीब-करीब एक ही विषय के चित्र में एक-सा बनाया गया है। एक ही विषय को कई बार बनाया गया है। जिससे इन चित्रों का मध्यकालीन होने का पता चलता है। प्रारंभिक जैन चित्रों में सयोजन सादा बनाया गया है। इन चित्रों में आकृतियों की भीड नही है केवल तीन या चार आकृतियों से अधिक एक चित्र में नही बनाया गया है और न ही आकृतियों को बहुत से गहने ही पहनाये गये हैं। आकृतियों के कपडे मँहगे होते हुये भी बढाकर नही बनाये गये हैं। इन चित्रों के हाशियो पर भी अलंकरण किया गया है एव ये चित्र अलंकृत अधिक है इन चित्रों में पशु-पक्षी, फूलपत्तों, तथा कपडो के नमूनो मे बहुत अलकरण किया गया है। राजपूत एवं मुगल चित्रों ने बेल-बूटों की परंपरा इन्ही जैन चित्रो से ली जान पडती है।

इस शैली के कई हस्तलिपि (Manus cripts) चित्रों में लाल रंग को भूमि रग (Ground colour) के स्थान पर प्रयोग किया गया है, परंतु कुछ का भूमि रंग सोने के रंग का बनाया हुआ है जो बिना रगे छोड दिया गया है। कही-कही पर शरीर के रंग को दिखाने में भूमि के सुनहले पत्ते को भी बिना रंगे छोड दिया गया है एवं कहीं-कहीं पर पीले रंग का प्रयोग भी भूमि के रंग में किया गया है। ताडपत्रों पर बनाये हुए चित्र विशेष कर पीले रंग के हैं। किसी किसी चित्र में वस्त्रों पर लाल रग के धब्बे भी दिखाये गये हैं। तनसोर महा-वीर के चित्र मे भूमि का रंग लाल है। इसमें महावीर स्वामी को एक पेड के नीचे बैठे दिखाया गया है जिसका दृश्यचित्र (Landscape) पहाडी है। इस चित्र में चार हाथों वाले इन्द्र भगवान को चित्रित किया गया है जो राजकीय वस्त्र ले रहे हैं एवं बैरागी वस्त्र को दे रहे हैं। महावीर स्वामी को सर्वत्र इन चित्रों में पीले रंग का, पार्श्वनाथ को नीला, नेमिनाथ को काला तथा ऋषभ-नाथ को सुनहला बनाया गया है। इन चित्रों में विशेष कर ईंटों के लाल रंग

(Indian Red), पीला, नीला तथा सफेद रंग का प्रयोग किया गया है। 'बसंत विलास' की आकृतियाँ ईंटों के लाल रंग की बनाई गई है तथा बाद में उसमें पीले, नीले, हरे तथा हल्के गुलाबी रंग का प्रयोग किया गया है। इन चित्रों में मुख्यतः तीव्र एवं अमिश्रित (Tempra) रंगों का प्रयोग किया गया है। इन चित्रों में रंग रेखांकन से कम महत्त्व का है। ऐसा जान पड़ता है कि जैन कलाकार रंगों तथा रेखाओं की दिशा में बड़े सजग थे।

इन चित्रों में रेखाओं भावों को व्यक्त करने के लिए विशेषकर प्रयोग में लाई गई है। ताडपत्री चित्रों में कलाकारों में सूक्ष्म तथा सार्थक रेखायें बनाई है परतु कागज पर के चित्रों में भावों को दिखाने में रेखाओं का उद्देश्य समाप्त हो जाता है। जैन चित्रों में कला बारीक तथा ओजस्वी मान चित्र बनाने की कला है। 'बसतविलास', 'गीत-गोविंद' तथा 'रति रहस्य में' रेखाकन गतिशील है। इन चित्रों मे आकृतियो की बारीकियो को नही बनाया गया है।

जैन चित्रों के हाशियों पर बहुत सुदर दृष्य चित्र (Landscapes) भी बने मिलते हैं। भारतीय कला में इससे पहले अच्छे दृष्यचित्र नही बनाये जाते थे। इस शैली का महत्त्वपूर्ण गुण घने तथा काले बादलों तथा पेडों के बनाने में दिखता है। ये बादल चित्र में बहुत नीचे बनाये गये हैं, हिंदू सभ्यता में इसे शुभ का द्योतक माना जाता है जो प्रारभिक राजपूत चित्रों के समान है, जिससे ऐसा जान पडता है कि राजपूत कला इसी जैन कला से उत्पन्न हुई है। जैन चित्रों में प्राकृतिक दृष्यो की कमी है। एक ही धरातल पर अनेक दृष्यों का अंकन है कोई भी वस्तु चित्र में एक दूसरे से दूरी नही दिखाती है, तथा इन चित्रों में स्थिति की जन्मलघुता (Foreshortening) की कमी है। पद्रहवी से सोलहवी शताब्दी के चित्रों में हाथियों का भी चित्रण किया गया है।

जैन कला में कुछ प्रतीकों का भी प्रयोग किया गया है साथ ही जैन धर्म के 24 तीर्थंकरों के चित्र भी बनाये गये हैं। इनके लिए जैन कला में भिन्न-भिन्न प्रतीक निश्चित किये गये हैं। मुख्यतः चार तीर्थंकरों के चित्र अंकित किये मिलते हैं। जैन चित्रों में तीर्थङ्करों के आसन भाग के स्थान पर तिर्यक अर्ध चंद्राकार वस्तु बनायी गयी है जो उसका संकेत करती है, इसे सिद्धशिला या ईषत्प्रमभार कहा जाता है। जैन कला में हमें क्षत्राणी माता त्रिसला के 'चतुर्दश स्वप्न' के अनेक चित्र देखने को मिलते हैं, इन स्वप्नों में हाथी, वृष, सिंह, पद्मावती, पुष्प मालायें, सूर्य, चद्र, ध्वजा, कलश, पद्म सरोवर में, पालकी, मणि-भडार तथा अग्नि को चित्रित किया गया है। यहाँ पर 'अष्ट-मंगल-दृश्यों' को भी सुंदरता से चित्रित किया गया है। जैन कला में पौराणिक चित्रों का भी चित्रण किया मिलता है, इसी से इस शैली के प्राचीन होने का पता चलता है।

हालाँकि धर्म से संबंधित जैन पुस्तकों में नारी के रूपों का चित्रण एक निश्चित सीमा में हुआ है । इस प्रकार के चित्र लोहनीपुर (पटना) तथा मथुरा से प्राप्त यक्ष-युगल के चित्र हैं जो सुंदरता के द्योतक हैं । इन्होंने नारी रूप में अपनी देवियों का चित्रण किया है जैसे अंबिका, पद्मावती, सरस्वती, शासन, सोलह विद्या देवियाँ आदि विशेष महत्त्वपूर्ण हैं । यहाँ पर स्त्री आकृतियों में अप्राकृतिक रूप से उभरी हुई छातियों को बनाया गया है । चित्रों के आकृतियाँ सजीव तथा आवश्यकता से अधिक अलंकृत हैं । यहाँ पर आकृतियों के मुँख एक चश्म, दो चश्म, डेढ़ चश्म ही बनाये गये हैं परंतु $1\frac{1}{2}$ चश्म के मुँख मुख्यतः चित्रित मिलते हैं । साथ ही आकृतियों के मुँख अण्डे के आकार के बनाये गये हैं । इन चित्रों में आकृतियों का शरीर सामने से पूरा दिखाया गया है परंतु मुँख दो चश्म तक ही दिखाया गया है । 'वसंत विलास', 'रति रहस्य' तथा गीत गोविंद में $\frac{1}{3}$ चश्म मुँख की आकृतियो को बदल कर पार्श्व चित्र तथा सीधे बगल से जैसा दिखेगा वैसा चित्रित किया गया है ।
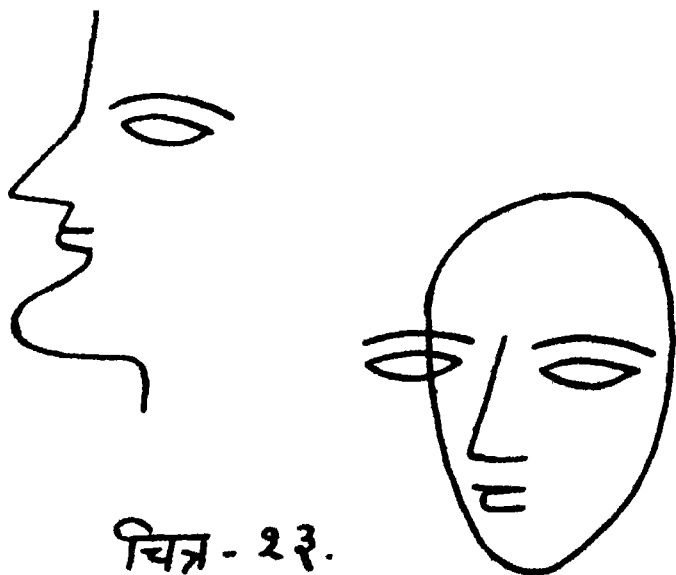
चित्र - २३.

परंतु जैन चित्रों में दूसरे स्थानों पर $\frac{1}{3}$ चश्म मुँख की आकृतियों को ही बनाया गया है । इन चित्रों में आकृतियों का रेखाकन (Drawing) एवं कोणीय आकृति विशेष महत्त्व की है । इनमें नाक नोकीली बनाई गई है एवं यह अनुपात से बडी है । आँखों के किनारे को खीच कर बाहर निकले हुये चित्रित किया गया है । ये चित्र बहुत कुछ भारतीय कविता के समान लगते हैं । यहाँ पर

दूसरी आँख मुँह की बाहरी रेखा के बाहर निकली हुई बनाई गई है (Profile Perdu)। ये आँखें परवल के आकार की है। स्त्री आकृतियों में आँखें कान तक पहुँची हुई बनाई गई हैं। जैन चित्रकला में आँखो की बनावट विशेष महत्त्व की है। यह आँखों के बनावट की शैली वस्तुत. जैन चित्रों की देन न होकर जैन शिल्पों एव स्थापत्य कला की देन है। यह जैन प्रतिमाओं में बहुत प्रचलित है। इस प्रकार की आँखों के बनाने को राजपूत एवं मुगल शैली में भी विशेष महत्त्व दिया गया है। भवें तथा नेत्र इन चित्रो मे एक ही फैलाव के है। विजय नगर से कुछ जैन चित्रों के प्रभाव के चित्र मिले है जिनमें चेहरे सवा चश्म न होकर एक चश्म बनाये गये हैं। एक चश्म चेहरे अजन्ता के चित्रो से अपनी उत्पत्ति दिखाते है। इन चित्रो में आकृतियो की दोहरी ठुड्डी बनाई गई है। इन चित्रों में ठोढी के नीचे की रेखा मे गौरव, गर्व तथा अभिमान का पता चलता है एव आँखो की बनावट लोक कला की देन मालूम होती है। जैन कलाकारो की निपुणता नाक तथा नेत्रो के चित्रण में स्पष्ट दिखती है। जैन चित्रो में आकृतियो के हाथ मुडे हुये बने है तथा उगलियाँ ऐंठी हुई हैं। वस्त्र के रूप में इनमें धोतियो की सजावट सुदर है। प्रारभिक जैन चित्रों मे साधुओं को श्वेत या सुनहले रग के वस्त्र पहनाये गये है, परंतु बाद में जैन कला पर ईरानी प्रभाव पडने लगा जिसके कारण मगोल ढग के चित्र बनने लगे। वस्त्रो के नमूनो में चारुता एव विभिन्नता दिखती है। गहनो के रूप मे मुकुट तथा मालायें विशेषकर बनाई गई है। जैन चित्रो को बारीकी से देखने पर पता चलता है कि ये चित्र अजन्ता के चित्रो के छोटे रूप ही हैं।

जैन कला भावात्मकता से अधिक बुद्धित्वता की कला है। यह कला मुँख सबधी तथा सुलिपि (Calligraphic) की कला है। इन चित्रों में संपुजन का अभाव दिखता है, विशेषकर एक चौकोर स्थान पर एक आकृति बनाई गई है जिसका कोई निजस्व नही है, फिर भी कही-कही पर भावभंगिमा मे चारुता दिखती है, पृष्टभूमि (background) सादी तथा एक ही रग की बनाई गई हैं।

कागज पर भी जैन पुस्तकें बनी जो जौनपुर से प्राप्त हुई हैं जिनमें मुख्य कल्पसूत्र है, जिसके चित्र जैन शैली के है एवं ये सुनहले अक्षरों मे लिखे हुए हैं। माडू से भी एक कल्पसूत्र प्राप्त हुआ है जिसके चित्र जौनपुर की जैन शैली के चित्रों से बहुत कुछ मिलते जुलते है। किसी किसी जैनधर्म के ग्रथ में लकडी का आवरण भी चित्रित किया गया है। जैसलमेर के जैन मदिर में लकड़ियों पर भी बहुत सुदर चित्रकारी की गई है।

जैन कला का संबंध लोक कला से भी बताया जाता है क्योंकि यह कला

भी धर्म की सीमाओं में बंधी थी एवं यह राजाओं की विलासिता की वस्तु नहीं बन सकी इसी कारण इनमें लोक कला का समावेश हो सका इस कला में आकृतियों, रेखाओं तथा साज-सज्जा में लोक कला का रूप स्पष्ट दिखता है। इसमें लोक शैली की अल्हड़ता, वस्त्र तथा हस्त-मुद्रायें चित्रित की गई हैं। इसमें लोक कला के तत्त्व उसी प्रकार छिपे हैं जिस प्रकार साँची तथा भरहुत की मूर्तियों में। इस कारण लोक कला का जो रूप हमें जैन कला में दिखता है वैसा कहीं नहीं। जैन कला में चित्रित कथायें लोक कला पर आधारित है, एवं इसमें लोक-जीवन, संस्कृति तथा विचार बहुत स्पष्ट दिखते हैं। जैन चित्रों में यक्ष-यक्षिणियों के युगल चित्रों को विशेष महत्त्व दिया गया है। इन सबसे जैन-कलाकारों का लोक-जीवन के ओर अनुराग प्रकट होता है। मथुरा से प्राप्त अर्धनग्न चित्र इसकी लोक कला की ओर आस्था दिखाती है, एवं यह इस शैली का अच्छा उदाहरण है। जैन धर्म की प्रारंभिक पुस्तकों से पता चलता है कि इस शैली का उद्गम भी लोक शैली से हुआ होगा। इसने अपने में लोक परंपराओं तथा विश्वास को अपनाया है, इससे यह स्पष्ट होता है कि जैन कला की उत्पत्ति लोक प्रेरणा के द्वारा ही हुई होगी।

कुछ समय के बाद धीरें-धीरे जैन कला राजपूत तथा मुगल शैलियों के प्रभाव में आ गई एवं जैन कला का प्रभाव भी राजपूत तथा मुगल शैली के चित्रों में दिखने लगा जो कि चित्रो के अलंकरण से स्पष्ट होता है। धीरे-धीरे जैन कला राजपूत कला से मिल कर समाप्त हो गई। 18 वीं तथा 19 वी शताब्दी में कलाकारो ने इस चित्र शैली के अतर्गत बहुत ही सुंदर चित्रों का चित्रण किया और लोगो की यह धारणा हो गई कि भारतीय कला के मध्य युग में जैन चित्रों से अधिक सुंदर चित्र कहीं नहीं बने अत: मध्य युग में जैन चित्रकला का स्थान सबसे ऊपर रखा गया। इसी जैन कला के स्थान को बाद में हिंदू या राजपूत कला ने ले लिया।

●

अध्याय 10

भारत के लघुचित्र

(Miniature Paintings 1500–1900 ई०)

भारत में लघुचित्रों (Miniature Paintings) की परम्परा का प्रारंभ बहुत तीव्रता से पंद्रहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ। उससे पहले भारत की चित्रकला में केवल भित्ति चित्रों (Frescoes) की परंपरा थी एवं बाद में हस्तलिपि (Manuscripts) चित्रों का प्रचलन हुआ। ये लघुचित्र राजस्थान में राजपूत कलाकारों द्वारा हिंदूधर्म पर आधारित विषयो के चित्र बने, जिनके ऊपर जैन शैली का बहुत प्रभाव था। इस शैली को 'राजपूत शैली' कहा गया। इसके साथ ही उस समय मुगल राज्य की भारत में स्थापना हो जाने के कारण ईरानी प्रभाव के भी चित्र मुगल बादशाहो के अंतर्गत बने जिन्हें 'मुगलशैली' के चित्र कहा गया। दोनों ही प्रकार के चित्र भारत में लघुचित्रों को परपरा का प्रारभ दिखाते हैं। इस कारण भारत के लघुचित्रों को हम दो भागों में बांट सकते हैं—

1. मुगल शैली के लघुचित्र
2. राजपूत शैली के लघुचित्र

मुगल शैली के लघुचित्र

मध्ययुग के बाद भारत मे ऐसे युग का आगमन होता है जिसमें चित्रकला की अत्यधिक उन्नति हुई। यह मुगल युग था। मुगल युग की चित्रकला की उन्नति तथा अवनति मुगल साम्राज्य के उत्थान एवं पतन के साथ चलती है। इस प्रकार मुगलकला भारत में ढाई शताब्दियों तक रही और इसे भारत के इतिहास मे एक देदीप्यमान युग कहा गया। मुगलकला का जन्मस्थान समरकन्द तथा हेरात जो अफगानिस्तान में है माना गया है, यहाँ पर फारस की ईरानी कला 15वी शताब्दी में तैमूर राजाओ के अतर्गत अपनी चरमसीमा पर पहुँची हुई थी, यह कला भारत में 'मुगल कला' या 'केंद्रीय एशियन कला' (Central Asian Art) या 'भारतीय ईरानी' या भारतीय तुर्क कला' इत्यादि नामों से विख्यात हुई एवं भारत में भारतीय कला के अंतर्गत पनपी। बाबर के समय का मुख्य कलाकार बहज़ाद था जो अपने समय का श्रेष्ठ कलाकार कहा गया था, इसे 'पूर्व का रफेल (Raphael)' भी कहा जाता है। बाबर ने 'तुज़कि बाबरी' में बहज़ाद का वर्णन 'कलाकारों में सबसे अच्छा कलाकार'

कह के किया है। 1526 ई० में बाबर इसे भारत लाया तथा भारतीय कलाकारों को इससे शिक्षा दिलवायी। भारत में मुगल कला ने इस कलाकार तथा कला के प्रेमी बादशाह अकबर के अन्तर्गत प्रगति की, इस प्रकार भारत में मुगल कला के स्कूल का जन्म हुआ। इस समय भारतीय कला को एक नयी दिशा मिली और उसकी प्रारम्भिक कलाकृतियों में हिंदू तथा फारस की कला शैलियों का मिश्रित प्रभाव दिखायी पड़ने लगा। इस प्रकार भारत में ईरानी तथा राजपूत शैली (परपरागत हिंदू शैली) के मिश्रण से एक नयी शैली का जन्म हुआ जिससे 'मुगल लघुचित्रों' के नाम से पुकारा गया। ये मुगल लघुचित्र भारत में 16वी से 19वी शताब्दी तक प्रचलित रहे। इस शैली ने अपने व्यक्तित्व को बनाये रखा इसी कारण यह कला भारतीय वातावरण में मिलकर भारतीय कला का अभिन्न अग बन गई। मुगल चित्रों में अंत. सौंदर्य के भाव को भारतीय हिंदू शैली द्वारा दिखाया गया तथा बाह्य-सौदर्य को ईरानी शैली के माध्यम से चित्रित किया गया है। इस प्रकार से भारतीय हिंदू शैली की भावना तथा ईरानी शैली के उत्तम रेखांकन को चित्रो में लिया गया। हूमायूँ ने ही तैमूर तथा हेरात की शैली को भारत में प्रचलित किया। इस प्रकार भारत में फारस की चित्रकला का प्रवेश हुआ इसके आने के बाद फारस की ईरानी कला जब भारत की हिंदू कला के प्रभाव में आयी तो ये अलकारिक नमूनों से हटकर यथार्थता (Realistic) के रूप में बदल गई और इससे भारत की शैली मे एक नई वास्तविकता का जन्म हुआ।

मुगलवश के सर्वप्रथम बादशाह बाबर ने 1526 ई० में भारत पर आक्रमण किया और उत्तरी भारत के दो बडे राज्यो को (लोदी सुलतान तथा मेवाड़ के राजपूत) हरा कर भारत में अपने राज्य की स्थापना की। बाबर की माता मगोल वश की थी, इसी कारण बाबर का शाही वंश मुगल वश के नाम से विख्यात हुआ, हालांकि बाबर स्वयं तैमूर था। मुगल राज्य के सभी उत्तराधिकारियों ने मंगोल तथा तैमूर दोनों ही वंशों की परंपरा को निभाया। बाबर कला का प्रेमी होते हुए भी कला की ओर ध्यान न दे सका क्योंकि वह अधिक समय अपने राज्य की स्थापना में ही लगा रहा। बाबर ने चित्रकला तथा साहित्य को उच्चस्तर पर पहुँचाने का भरसक प्रयत्न किया। उसने अपने दरबार में सय्यद अली तथा ख्वाजा अबुल समद को संरक्षण दिया। हुमायूँ ने भारत में तैमूर शैली को प्रचलित किया और बहुत से फारस के सफाविद (Safavit) कला की शैली के विख्यात कलाकारों को भारत में बुलवाया। इस प्रकार से फारस की ईरानी शैली का भारत में प्रचलन हुआ। हुमायूँ ने 1530–1556 ई० में बंगाल, मेवाड़ तथा गुजरात में अपने राज्य की स्थापना

की। इस समय मुगलों के लिये भारत की कला एकदम अपरिचित थी। इस कारण इस समय चित्रकला की कोई विशेष उन्नति नहीं हुई परंतु उन्होंने भारत की वास्तुकला (Architecture) को बहुत पसंद किया विशेषकर अष्ट-पार्श्वीय भवन (Octagonal Pavillions), बड़े खुले कमरे, बगीचे, चीन की सुलिपि (Calligraphic), रंगीन पत्थरों के शिखर, भारी नक्काशी इत्यादि। बाबर तथा हुमायूँ ने बहुत कम इमारतों का निर्माण करवाया क्योंकि इनका अधिक समय युद्ध में ही बीता। परंतु अकबर ने भारत में बहुत-सी इमारतों का निर्माण करवाया तथा चित्रकला की इसके समय में उन्नति हुई।

1556 ई० में बादशाह अकबर (1556–1605 ई०) ने चित्रकला को बढ़ावा दिया। इसने बाहरी कलाकारों को भारत में आमन्त्रित किया और उन्हें पुरस्कृत किया। इसने कला को धर्म के बंधनों से हटा कर जनता मे लोकप्रिय किया। इस समय चित्रकला की उन्नति दिन दूनी रात चौगुनी हुई, इसका कारण उस समय के बादशाह अकबर तथा राजकुमारों का कला की ओर प्रेम था। इस समय मुगल कला केवल दरबारी कला ही होकर रह गयी एवं इसकी उन्नति भी केवल दरबारी कला के क्षेत्र में हुई। मुगल शैली की प्रारंभिक चित्रकला मे केवल विदेशी कारीगरी ही थी। यह मुगल राज्य के प्रारंभिक काल मे ही प्रचलित हुई। हुमायूँ के समय मे ईरानी शैली के चित्र बहुत प्रचलित हुए जो फारस के कलाकारों द्वारा तथा उनसे शिक्षा प्राप्त भारतीय कलाकारो द्वारा बनाये गये। परतु अकबर के समय की दरबारी कला अपने गुणो में धर्मनिरपेक्ष तथा क्रांतिवृत्त थी। यह कला केवल राजकुमारो की प्रसन्नता पर ही निर्भर थी और इससे महल के बाहर की साधारण जनता बहुत कम परिचित थी, परतु समय के साथ यह कला धीरे-धीरे अधिक प्रजातांत्रिक हो गयी और इसका स्तर बहुत गिर गया। इसने प्रचलित छविचित्रों (Portraits) का रूप अपना लिया। इस समय मुगल छविचित्रों का गुण चित्रित व्यक्ति (Model) की समानता को अपने छविचित्रों में सफलतापूर्वक दिखाना था, अर्थात् यथार्थता इसका विशेष गुण हो गया था। मुगल शैली के अंतर्गत इसी कारण छविचित्रों का प्रचलन हुआ। हालाँकि मुस्लिम धर्म में छविचित्रों का बनाना मना था परंतु फिर भी अकबर ने स्वय बैठकर अपना छविचित्र बनवाया। उसका विचार था कि चित्र बनाना ईश्वर की सुंदरता की प्रशसा करने का माध्यम है इसी कारण अकबर के समय से ही छविचित्रों के बनने का फिर से प्रचलन हुआ।

अकबर के समय में कला को पुनरुत्थान का उचित अवसर मिला, इस तथ्य की पुष्टि अकबर के समय की व्यावसायिक कला एवं वास्तुकला से होती है।

अकबर के समय में ही ईरानी शैली का स्थान भारतीय हिन्दू शैली ने ले लिया। उस समय के भित्तिचित्रों तथा पटचित्रों के कलाकारों का ध्यान रंगों की ओर कम था परन्तु ईरानी कलाकार रंगों के द्वारा ही अपने चित्रों में प्राणों का संचार करते थे। इसका मिश्रितरूप उस समय के कलाकारों के कार्यों में स्पष्ट दिखता है। अकबर के विचार से कला केवल विनोद की वस्तु न होकर जीवन की आवश्यकताओं की सहायक मानी गई। अकबर के युग की कला का वर्णन अबुलफजल की 'आयने-अकबरी' में किया गया है। अकबर का प्रिय कलाकार अबदुल समद था जिसे अकबर ने 'शीरी कलम' की उपाधि से सम्मानित किया था। यह सुलिपि (Calligraphy) का माना हुआ कलाकार था। दूसरा सुलिपि का माना हुआ कलाकार काश्मीर का मुहम्मद हुसन था। अकबर के दरबार में मुसलमान तथा हिन्दू दोनों ही धर्मों के कलाकारों को समान स्थान प्राप्त था। इस समय के विख्यात हिन्दू कलाकार दसवन्त, बसावन, केसूदास इत्यादि थे। दसवन्त को ख्वाजा अबदुल समद ने शिक्षा दी थी। इस समय के विख्यात मुसलमान कलाकार अबुल-फजल, फरुखन्द कलमारक, मीर सय्यद अली, फरुखबेग इत्यादि थे। 'आइने-अकबरी' मे 13 मुख्य कलाकारों का वर्णन मिलता है जिनमें केशवदास, लाल, मुकुन्द, मिसकीन, फरुखबेग, माधो, जगन्नाथ, महेश, खेमकरन, तारा, साँवला, हरिवंश तथा राम का उल्लेख है। 'रज्यनामा' का चित्रण दसवन्त तथा बसावन ने किया था। इसके दरबार में करीब 40 कलाकार काम करते थे। कलाकारों के काम करने के स्थान को अकबर के समय मे कारखाने का नाम दिया गया था तथा इन कारखानों तथा पोथीखानो को बहुत महत्त्व दिया गया एव इनकी स्थापना भी हुई। इस समय 'राग-माला' तथा 'बारह-मासा' के विषयों पर भी चित्र बनाये गये। इस युग में पुस्तकों को चित्रित करने की परम्परा में बहुत वृद्धि हुई। तथा इन चित्रों को ईरानी पुस्तको में दृष्टान्त चित्रो के रूप में भी बनाया गया। अकबर के समय में ही मुगल लघुचित्रों को हम दो भागों में बाँट सकते हैं पहला मुगल छबि चित्र तथा दूसरा दरबारी एवं शिकार के दृष्य।

अकबर के समय की चित्रकला में जहाँगीर (1605–1628) के युग में विशेष प्रगति की। जहाँगीर के दरबार में समरकद से भी कुछ कलाकार आये, जिससे हमें भारत एव ईरान के पारस्परिक संबधों का पता चलता है। साथ ही मुगल कला की प्रेरणा का भी पता चलता है। जहाँगीर में जोधाबाई का पुत्र होने के कारण हिन्दुत्व की भावना अधिक थी। कला के क्षेत्र में जिस भारतीयकरण का बीजारोपण अकबर ने किया था उसने जहाँगीर के हाथों आने पर बहुत उन्नति की। इसके समय में चित्र शैली तथा रूप की दृष्टि से भार-

तीयता के अधिक निकट दिखती है। इस समय के कलाकारों ने रंगों के अति-रिक्त रेखाओं में भी अपनी विशेषता का परिचय दिया। उनकी भी दृष्टि यथार्थता पर अधिक थी। इसके समय में विशेषकर दरबारी दृश्यों तथा पशुओं का ही चित्रण हुआ है क्यों की जहाँगीर को इसमें रुचि थी। इसे पशुओं से बहुत प्रेम था इसी कारण वह दुर्लभ पशु एवं पक्षियों का चित्रण करवाता था। उस समय पशुओं के चित्रण का महान कलाकार मंसूर को माना गया है, 'तुर्क-मोर' नाम के शीर्षक का चित्र इसका अच्छा उदाहरण है। इसके समय के 'तुर्क मोर' के चित्र में रंगों, भावयुक्त रेखांकन तथा बारीकियों की स्वाभाविकता कलाकार की कला की महानता को दिखाते हैं। इसके समय की मुख्य कलाकृति कलाकार मनोहर का अश्व चित्र है जिसका शीर्षक 'दिलपसन्द' है। जहाँगीर के समय के दूसरे विख्यात चित्र 'भारतीय सुन्दरी' है जो मुगल शैली की सभी विशेषताओ को दिखाता है। इस चित्र में एक सुन्दरी शिवपूजन हेतु एक हाथ में फूलों का हार तथा दूसरे हाथ में फूलों की डाली लेकर जाती चित्रित की गई है। इसमें स्त्री के सुन्दर सुडौल शरीर को सुन्दर ढंग से आभूषणों से युक्त चित्रित किया गया है। मुगलकालीन चित्रों में शरीर की बनावट को जिस सुन्दर ढंग से चित्रित किया जाता था उसके सभी गुण इस चित्र में स्पष्ट है। इसमें अलकारिता के साथ स्वाभाविकता स्पष्ट दिखती है। जहाँगीर के समय में जीवित व्यक्तियों के छबि चित्र बनाने का भी प्रचलन हुआ। ज्ञानचन्द्र का छबि चित्र मुख्य कलाकृति माना गया है। जहाँगीर के समय में पौराणिक कथाओं का भी बहुत सुन्दर चित्रण किया गया। जहाँगीर को अच्छे आलबम बनवाने का भी शौक था। दाराशिकोह के विख्यात आलबम को भी इसी युग में बनाया गया। जहाँगीर को प्रकृति से भी बहुत प्रेम था इसी कारण इसके समय में दृश्य चित्रों (Landscapes) का भी प्रचलन हुआ। अकबर के समय में चित्र पुस्तकों के रूप में प्रचलित थे परन्तु जहाँगीर के युग में चित्र स्फुटचित्रो के रूप में भी बने। सुन्दर चित्रों में हाशिया बनाने की शैली जहाँगीर के युग में विशेषरूप से प्रचलित हुई। इसी समय हाशिया बनाने की शैली को चित्रों में अलग शैली के रूप में महत्त्व दिया गया। जहाँगीर के प्रिय कलाकार आका-रिजा तथा उसका पुत्र अबुल हसन था। जहाँगीर ने अबुल हसन का उल्लेख सर्वोत्कृष्ट चित्रकार के रूप में किया है साथ ही बिसनदास तथा मसूर को भी जहाँगीर ने बहुत महत्त्व दिया। सत्रहवी शताब्दी में योरपीय लोगों का जहाँ-गीर के दरबार में आगमन हुआ इस कारण इस समय योरपीयन प्रभाव के भी चित्र बने। इस समय स्वाभाविक ऐतिहासिक घटनाओं का चित्रण विशेषकर हुआ।

जहाँगीर के बाद शाहजहाँ (1628–1658 ई०) के युग का प्रारंभ हुआ।

इस समय चित्रकला की अवनति प्रारंभ हुई क्यों कि इसकी कला में विशेष रुचि न थी। इस कारण कलाकारों के चित्रण में कृत्रिमता आने लगी और वे केवल मुगल राज्य के वैभव का ही प्रदर्शन करने लगे। इस युग के चित्रकारों ने स्त्री अंगों का प्रदर्शन बहुत सुंदर किया। हालाँकि शाहजहाँ का युग मुगल वैभव का युग माना जाता है परन्तु यह चित्रकला के पतन का युग था। शाहजहाँ के युग में उच्चकोटि की वास्तुकला का प्रारंभ हुआ जिसका उदाहरण "ताज-महल" है।

शाहजहाँ के बाद औरंगजेब (1658–1707 ई०) का युग आया। इसकी धर्म में कट्टर आस्था होने के कारण उसे चित्रकला से कोई लगाव नही था इसी से उस समय कला का पतन बहुत शीघ्र हुआ क्यों कि कला ऐसे कोमल विषय को वातावरण का अभाव मिला। इस कारण इस युग में कलाकार दिल्ली से भागकर दूसरे स्थानों पर जाने लगे जैसे राजस्थान एवं पजाब तथा पंजाब के पहाड। इसके बाद कला का धीरे-धीरे पतन होने लगा एवं इन भागे कलाकारों द्वारा भिन्न-भिन्न स्थानों पर भारतीय चित्रकला की शाखाओं की स्थापना हुई। इन प्रातीय शाखाओं में पहाडी कला (काँगडा एवं कुल्लू शैलियों) तथा राजपूत कला को विशेष महत्त्व दिया गया।

1707 ई० में मुगल लघु चित्रों का पतन हुआ तथा इस समय कला अवध के नवाबों के अन्तर्गत आ गई और थोडी बहुत मात्रा में अंग्रेजों के भारत आगमन तक रही। परतु 18 वी शताब्दी में शाह आलम एव मुहम्मद शाह के युग में फिर से लघु चित्रों का चित्रण प्रारभ हुआ एव उनके विषय गाने वालों के समूह, नाचने वाले, प्रेम के दृष्य तथा पीने के दृश्य ही हो गये। 1857 ई० में मुगल लघु चित्रों का प्रचार पूर्णरूप से समाप्त हो गया।

मुगल लघु चित्रों की विशेषतायें

ईरानी तथा राजपूत शैली के मिश्रण से मुगल शैली का जन्म हुआ, इस कारण इन लघु चित्रों में ईरानी एव हिंदू राजपूत शैली के चित्रों के सभी गुण मिलते हैं। मुगल चित्रों में अलंकारिता के स्थान पर वास्तविकता पर अधिक ध्यान दिया गया है। अलंकारिता ईरानी शैली का गुण है तथा वास्तविकता भारतीय हिंदू चित्रो का। इन दोनों ही गुणों का समावेश इन मुगल लघु चित्रों मे स्पष्ट दिखता है। मुगल लघु चित्र दूसरी भारतीय चित्रकलाओं से भी भिन्न है जिससे हमें तुरंत ही इसकी विदेशी उत्पत्ति का पता चलता है जैसे मुगल चित्रों की बाहरी सुलिपित (Calligraphic) रेखायें, जो एक ओर ईरानी हैं तथा दूसरी ओर अपने में चीनी प्रभाव को दिखाती हैं। चित्रों में कलाकार के भाव तूलिका के प्रयोग से व्यक्त होते हैं। मुगल कलाकारों की

तूलिका का प्रयोग आदर्श ढंग का होता था इसी कारण मुगल लघु चित्र भारत के और चित्रों से अपनी भिन्नता को दिखाते हैं। मुगल चित्रों में कुछ आकृतियों का एक साथ चित्रित करना बहुत प्रचलित था, परंतु भारतीय विद्वानों द्वारा इसे 'ईरानी शैली' का प्रभाव कहा गया है एव इसे तैमूर चित्रकला से संबंधित माना गया है जो फारस में 15 वीं से 16 वी शताब्दी में प्रचलित थी। इन आकृतियों को चित्रों में हल्की छायाओं तथा प्रत्याशिता (Perspective) की स्वदेशी व्याख्या द्वारा व्यक्त किया गया है। प्रारंभिक मुगल चित्रों में सतह का प्रतिमाकन (Surface Modelling) विशेषतया किया गया है परंतु शैली की उन्नति के साथ यह प्रभाव अधिक स्पष्ट हो गया और यह समतल घनों (Tesserae) के बनाने के ढंग से स्पष्ट दिखने लगा जिसे ईरानी शैली का भारतीय कला पर प्रभाव माना गया है। आकृतियों के चित्रण में ये पूर्णरूप से परपरागत चित्र है परंतु दृश्य चित्र (Landscape) पूर्णरूप से स्वाभाविक है जो कि सर्वदा मुगल चित्रो में दिखता है। प्रारंभिक मुगल चित्रों में रग, सुन्दर लाल तथा नीले परंपरागत मोजैक (Mosaic) तथा सोने का प्रयोग स्वतत्रता से किया गया है जो पूर्वी कलाकारों का मूल प्रभाव है। इनके रगो के विशेष गुण जैसे आकाश के नीलेपन तथा पहाडो के दृष्यों को लाजर्वत के नीले रंग द्वारा बनाया गया है यह भी पूर्ण रूप से पूर्वी कलाकारों का प्रभाव है। कपडों पर कठिन नमूने मुगल चित्रो में बने दिखते हैं यह सब ही मुगल चित्रो पर ईरानी प्रभाव को स्पष्ट करते हैं।

मुगल शैली के दृश्य चित्रों (Landscapes) की पृष्ठभूमि (background) में दूरी तथा वातावरण का अधिक स्वाभाविक चित्रण किया गया है। इस समय वायवीय समपरिमित दृश्य (aerial perspective) को प्रत्यक्षरूप मे चित्रों में माना जाने लगा था, और प्रत्याशिता (perspective) की भिन्न सतहों को अच्छे प्रकार से संयोजित कर चित्रित करना आरंभ हुआ। कुछ चित्रों मे स्थिति जन्म लघुता (Foreshortening) का विशेष भाव दिखने लगा। प्रकृति की विवेचना करना इस कला का विशेष गुण हो गया।

मुगल लघुचित्रों में दैवित्व नही था और न ही भावुकता ही थी क्योंकि मुगल लोग दैवित्ववादी नही होते हैं और न ही भावुक ही होते हैं अपितु वे कठोर स्वभाव के होते हैं इसी कारण उनकी चित्रकला में उनके कठोर व्यक्तित्व का प्रदर्शन मिलता है जैसे शिकार तथा युद्ध के दृश्यो के चित्रण में।

मुगल चित्रों में घरेलू जीवन का चित्रण नाम मात्र को हुआ है क्योंकि इनके समाज में परदे का प्रचलन था। यद्यपि इनका धर्म दूसरे धर्मों से अधिक प्रचलित धर्म था एवं यह सचित्रता की सतह से ऊपर था, इस कारण इसका कोई

भी संबंध सचित्र कला (Pictorial Art) एवं धर्म से नहीं दिखता है। इनकी कला में केवल असली घटनाओं का चित्रण है। मुगल राज्य की प्रारंभिक कला अभिजातीय (Aristrocratic) थी परंतु धीरे-धीरे यह राज्य के दूसरे लोगों को भी प्रभावित करने लगी, जिसके परिणामस्वरूप निकृष्ट कोटि के छविचित्रों का बनना प्रारंभ हुआ। छविचित्रों की नकलें भी इस समय होने लगीं।

मुगल लघुचित्रों में कोई भी चित्र बड़े नाप का नहीं मिलता है, इसी कारण इन्हें लघुचित्र कहा गया। इनमें चित्र एक कलाकार द्वारा बनाया जाता था, लिखाई दूसरा कलाकार करता था तथा तीसरा व्यक्ति उसकी जिल्द बनाता था। इस प्रकार ये मुगल चित्र किसी व्यक्ति विशेष की कृति न होकर कई कलाकारों द्वारा समाप्त होती थी। इस प्रकार ये चित्र राजपूत चित्रों से भिन्न है क्योंकि राजपूत चित्र एक ही कलाकार द्वारा बनाये जाते थे। इसी कारण मुगल चित्रों में कुछ स्थानों पर हमें गलतियां मिलती हैं जैसे एक स्थान पर औरंगजेब के चित्र को जहाँगीर का चित्र बताया गया है।

साधारण गुणों में मुगल चित्रकला परम्परागत मानी गई है विशेष रूप से आकृतियों के शोधन (treatment) में, परन्तु पृष्ठभूमि (background) की बारीकियों में यदि वह दृश्यचित्र है तो उसमें पेड़ो एवं फूलों को दिखाया गया है। जो इस शैली का सर्वदा मुख्य गुण रहा है।

मुगल चित्रों में पहनने के वस्त्र सफेद या हल्के हरे या हल्के लाल रग के बनाये गये हैं जिन पर सोने के छोटे-छोटे फूलों के नमूने बनाये गये हैं। मुगल चित्रो में तेज रंगो का प्रयोग नही किया गया है। पृष्ठभूमि (background) एव कपड़ो पर सोने के रग का स्वतन्त्रता से प्रयोग किया गया है।

मुगल चित्रो में छोटी-छोटी बारीकियो का भी ध्यान रखा गया है एवं ये चित्र बहुत सुन्दर बनाये गये है। चित्रों में छोटी एव महीन बाहरी रेखाओं का प्रयोग किया गया है। परतु जब मुगल चित्रों में भारतीय प्रभाव अधिक दिखने लगा तब मोजैक (Mosaics) का प्रभाव प्राय समाप्त हो गया और कला ने एक नया ही रूप ले लिया। इसके बाद ही मुगल चित्र अधिक स्वतन्त्रतापूर्वक बनने लगे और इनमें स्वाभाविकता पहले से अधिक चित्रित होने लगी। जैसे-जैसे शैली में प्रगति हुई वैसे ही वैसे इसका स्वतंत्र स्वभाव चित्रों में निश्चित होने लगा।

मुगल कला में हाशियो के नमूने अपने में एक अलग चित्रकारी को दिखाते हैं। इसे जैन कला का मुगल कला पर प्रभाव कहा गया है। जहाँगीर के समय में इनमें फूलों तथा पत्तियों के नमूने विशेषकर बनाये गये जो आगरा के ताजमहल

में स्पष्ट दिखते हैं। जहाँगीर के युग में सचित्रकला (Pictoral Art) बहुत उन्नत थी। इन चित्रों में शिकार के दृश्य एवं मनुष्य के रोमांचित क्षणों का चित्रण किया गया है जो इनके प्रिय विषय थे। जहाँगीर के समय में शेरों को कई चित्रों में चित्रित किया गया है।

मुगल चित्रों के मुख्य विषय जीवन के रोमांचित क्षणों के दृश्य, शिकार एवं लड़ाई के दृश्य, ऐतिहासिक घटनायें, दरबारी दृश्य, धर्म की कथायें (केवल अकबर के समय बनी), पशु, पक्षी, पेड, सुलिपिक (Calligraphic) अलंकरण, कविताओं के विवरण, इत्यादि थे। 1680–1720 ई० में इनमें लड़ाई के दृश्यों का चित्रण हुआ जिनमें हिन्दू तथा मुस्लिम साधु, संस्कार सबंधी एवं धार्मिक क्रिया-पद्धति का चित्रण हुआ। 1710–1760 ई० में मुख्यत. दरबारी दृश्य बने साथ ही घर के दृश्य तथा भावात्मक प्रेम के दृश्य हिन्दू नमूनों के साथ बनें जो भारतीय हिन्दू कला का प्रभाव था। 18वी शताब्दी में अवध के नवाबों के अंतर्गत मुगल चित्रो के संयोजन घने होने लगे तथा तेज रंगों का प्रयोग होने लगा। इस समय दृश्य चित्रों (Landscapes) को महत्व दिया जाने लगा जो ब्रिटिश चित्रो से प्रभावित थे। बाद में मुगल शैली में निकृष्ट कोटि की नकलें एव बिना मतलब की आकृतियाँ बनने लगी। आकार तथा अनुपात फीके रगों द्वारा व्यक्त किया जाने लगा साथ ही चित्र निकृष्ट हो गये।

मुगल चित्रो में अधिकतर हमें छबिचित्र देखने को मिलते हैं इसी कारण मुगल लघुचित्रों को दो मुख्य भागो में बाँट गया है पहला मुगल छबिचित्र तथा मुगल चित्र जिनके विविध विषय हैं। छबिचित्रो के बनने का प्रचलन अकबर के समय से मुगल कला में प्रारभ हुआ जिनमे बादशाहो के चित्रों को विशेषरूप से बनाया गया, साथ ही मुगल युग के छबिचित्रों को उस समय के मुख्य चित्र माना गया। प्रारंभिक मुगल छबिचित्र भी मुगल लघुचित्रो के समान ही अपने में अधिक ईरानी प्रभाव को दिखाते हैं जो सोलहवी शताब्दी मे तैमूर शैली के सुलतान मुहम्मद के द्वारा उन्नत हुई। परंतु मुगल छबिचित्रो के बहुत से कलाकार हिन्दू थे जैसे भगवती तथा हुनर। भगवती की शैली ईरानी थी तथा हुनर की राजपूत हिन्दू शैली थी इससे हमे सोलहवी शताब्दी के छबिचित्रों की मिश्रित उत्पत्ति का ज्ञान होता है जिसका कारण बादशाह अकबर की रुचि थी। इन छबिचित्रो में प्रकाश एव छाया को नही दिखाया गया है केवल चित्रों में उभार को दिखाने के लिये थोडा-सा रगो के विभिन्न स्वरो (Tones) का प्रयोग किया गया है तथा प्रतिमाकन (Modelling) भी किया गया है। इन छबिचित्रों में तेज रगो का प्रयोग सहानुभूतिपूर्ण बाहरी रेखांकन तथा साथ ही निरंतर चित्र का भाव दिखाने के लिये अलकारिता का प्रयोग किया गया है।

इनमें हाथों तथा सिर का चित्रण बहुत सुंदर किया गया है जिसे बारीकियों से समाप्त किया गया है। व्यक्ति (Model) तथा उसके छविचित्र में समानता दिखती है। ये चित्र यथार्थ अधिक है। एक झलक में ये चित्र कुछ स्थिर तथा नियमानुसार लगते हैं परंतु कोमल रेखांकन एवं प्रतिमांकन की समानता अपने उन्नत स्थल पर दिखती है। इसी गुण के कारण हम छविचित्र में बनाये व्यक्ति के स्वभाव को भी देख सकते हैं। मुगल छविचित्र अधिकांश में पूरे चश्म (Profile) में बने हुए हैं। अच्छे छविचित्र अपने में अपनी सुंदरता तथा आकर्षण को दिखाते हैं। इनमें हाथों का स्वाभाविक ढंग से बनना अपनी उत्तमता पर है जो कि अजन्ता के बौद्धभित्ति चित्तों का गुण है। इनमें हाथों की मुद्रायें सर्वदा बहुत सुंदर की गई है जो भाव युक्त हैं। साथ हो ऐसा भास होता है कि ये अन्तःकरण से प्रभावित होकर बनाये गये हैं। इन कलाकारों को आकृति का अच्छा ज्ञान जान पडता है। मुखमुद्रा का प्रदर्शन सबसे प्रथम जहाँगीर के युग में प्रारम्भ हुआ जो कि पश्चिमी कला का प्रभाव था। चित्रों के समान ही मुगल छविचित्र भी परंपरागत हैं। ये कुछ नियमों द्वारा प्राचीनता से बँधे चित्र हैं। ये दरबार के रूप के साथ बदलते हैं, इसी कारण इन छवि-चित्रो में धीरे-धीरे स्थिर तथा जड दोनों ही प्रकार के चित्र बनने लगे। मुगल राज्य के अन्त में निकृष्ट स्वरूप के छविचित्रों का प्रचलन हुआ साथ ही छवि-चित्रो की नकले भी बनने लगी।

मुगल चित्रो के पीछे कही-कही पर कलाकारो का नाम भी लिखा मिला है जिसके कारण इन्हे राजपूत चित्रों से भिन्न माना गया है। मुगल चित्रों को हम कई शैलियो (कलमों) में विभाजित कर सकते है जो कि बनाने के कौशल (Technique) में एक दूसरे से भिन्न है वे इस प्रकार है—

1. दिल्ली कलम

यह उस समय की सबसे अधिक प्रचलित कलम थी। यह दिल्ली और दिल्ली के पास के प्रातो में प्रचलित थी। इसे मुगल शैली के विख्यात ज्ञान का प्रभाव भी कहा जाता है। यह बनाने के ढग में निकृष्ट थी। इनमे आकृतियों का बाहरी रेखाकन स्पष्ट बनाया जाता था जिससे इसे जयपुर कलम से भिन्न माना गया है। इस कलम पर ईरानी प्रभाव सबसे अधिक दिखता है।

2. जयपुर कलम

यह राजपूत हिन्दू शैली के अधिक निकट थी तथा राजपूताने में प्रचलित थी। यह बनाने के कौशल में कोमल थी। इसमें आकृतियाँ गोलाई लिये बनायी गई है। यहाँ पर छाया (Shading) के द्वारा सतह के प्रतिमांकन (Modelling) को चित्रित किया गया है।

3. लखनऊ कलम

यह बहुत कुछ दिल्ली कलम के समान थी परन्तु गुणों में उससे निकृष्ट थी। यह बनाने के कौशल में भी दिल्ली कलम से भिन्न थी। इस कलम के चित्रों का शोधन (Treatment) कम अपारदर्शित था। इसमें विशेषकर अल रंगों का ही प्रयोग किया जाता था। इनमें आकृतियो के शरीर का रंग अधिकतर पृष्टभूमि (Background) में सफेद बनाया जाता था। इसमें संयोजन घने बनते थे साथ ही तीव्र रगों का प्रयोग किया जाता था। इसमें दृश्यचित्रों (Landscapes) को भी महत्व दिया जाने लगा था। यह अंत की मुगल शैली थी।

4. दक्षिणी कलम

इसमें कला की आश्चर्यजनक उन्नति हुई। इस शैली के चित्र अपनी छोटी आकृति के कारण पहचाने जाने लगे जिसमें कलाकार का असली नाम तथा शोधन स्पष्ट दिखने लगा। इन चित्रों में सुनहले रग का प्रयोग स्वतंत्रतापूर्वक किया जाने लगा। इनमें दिल्ली कलम के चित्रों से अधिक तेज रंगों का प्रयोग किया गया जिससे इसका दिल्ली कलम से बहुत निकट का सबंध दिखता है। 18वी शताब्दी के अत में इस शैली के अंतर्गत कुछ अच्छे चित्र बने।

5. पटना कलम

19वी शताब्दी में यह शैली बगाल तथा बिहार में उन्नत हुई। यह अंत की मुगल शैली थी। इसमें रेखाकन अच्छा किया गया परंतु स्वाभाविक प्रभाव बहुत कठोर बनाया गया। यहाँ पर रगों का प्रयोग बहुत छिछला हुआ है, परंतु बनाने के कौशल में यह दिल्ली कलम के अच्छे गुणो को बहुत सुदर ढग से अपने में दिखाती है।

6. काश्मीरी कलम

यह विशेषकर काश्मीर में बने चित्रों में दिखती है। बाद में यह लाहौर, अमृतसर तथा पंजाब के दूसरे शहरो में भी प्रचलित हुई क्योंकि इन स्थानों पर बाद में काश्मीरी कलाकार आकर बस गये। इसमें मुगल शैली के साथ थोड़ा-बहुत पहाडी शैली का भी प्रभाव दिखता है।

7. ईरानी कलम

इसका प्रभाव प्रारंभिक मुगल चित्रो में सबसे अधिक स्पष्ट दिखता है जो मुख्यत विदेशी ईरानी कलाकारो द्वारा बनाये गये थे।

8. रुमी या योरोपियन कलम

यह दूसरी विदेशी शैली थी जिसका प्रभाव गोवा द्वारा योरोपीय लोगों के भारत में आने के कारण मुगल राज्य के अंत में चित्रों में प्रचलित हुआ। इस

शैली के चित्र पूर्वी विदेशी प्रभाव को दिखाते हैं। इस कलम के कुछ चित्र अवध के कलाकारों द्वारा भी बनाये गये। इन चित्रों में योरोपियन विषयों को महत्त्व दिया गया है जैसे ईसाई धर्म से संबंधित चित्र बने एवं इन्हें दिल्ली तथा जयपुर कलम में चित्रित किया गया।

पानीपत के तीसरे युद्ध के बाद अंग्रेजों के राज्य में सुलतानों की चित्रकला तीन भागों में बंट गई—

(क) दिल्ली शैली की परंपरा से संबंधित चित्र जो जौनपुर, नागौर एवं मालवा में प्रचलित हुए।

(ख) हिंदू परंपरा के चित्र जो काश्मीर, गुजरात एवं बंगाल में प्रचलित हुए।

(ग) दक्षिणी शैली दक्षिण भारत में प्रचलित हुई।

इस समय मुख्य कला के विद्यालयों की स्थापना हुई जो मुर्शिदाबाद, बनारस तथा हैदराबाद में थे। मुगल चित्रों को हाथीदांत तथा कपड़ों पर भी बनाया गया। हाथीदांत पर बने लघुचित्र योरोपिय व्यक्तियों के छविचित्र जान पड़ते हैं। मुगल लघुचित्र विशेष प्रकार से तैयार किये हुए कागज जिसे वस्ली (Wasli) कहते हैं बनाये जाते थे। यहाँ पर मिट्टी, पत्थरों तथा जड़ी बूटियों से बनाये रंगों का प्रयोग किया जाता था।

मुगल चित्र शैली का महत्त्व

भारतीय चित्रकला के इतिहास में मुगल शैली को कई कारणो से महत्त्व दिया गया है। इसमें नयी साज-सज्जा, नये भाव, नये सविधानों तथा विषयों के मिश्रण द्वारा चित्रकला का विकास हुआ, साथ ही देश में सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक क्षेत्रों में भी कार्य हुआ। मुगल शैली में भारतीय परंपरा, भारतीय साहित्य की कृतियों का चित्रण तथा उनके दृष्टांत चित्र बनाये गये। मुगल शैलियों से ही पहाडी शैलियों का जन्म हुआ। पहाडी शैली यद्यपि राजपूत शैली से ही जन्मी परंतु मुगल शैली के द्वारा ही लोकप्रिय हुई। पहाड़ी शैली की लोकप्रियता का कारण मुगल दरबारी कलाकारों को ही दिया जाता है क्योंकि औरंगजेब का कला के प्रति प्रेम न होने के कारण उसके दरबार के कलाकार राजस्थान एव पहाडी प्रदेशो में जाकर बस गये इस प्रकार से पहाड़ी शैली का जन्म हुआ। ठीक इसी प्रकार भारतीय चित्रकला की उन्नति एवं पतन मुगल शैली के उन्नति एवं पतन पर निर्भर करती है। मुगल शैली के द्वारा ही मुगल राज्य के उत्थान तथा पतन के इतिहास का पता चलता है। जितना सुंदर समाज की सौंदर्यप्रियता तथा शासन का चित्रण इस शैली में मिलता है उतना कहीं भी नहीं।

मुगल वास्तुकला (Architecture)

मुगलों के राज्यकाल में वास्तुकला को भी बहुत महत्त्व दिया गया। मुगल बादशाह भारतीय वास्तुकला से बहुत प्रभावित हुए थे साथ ही इन्हें इमारतें बनवाने का बहुत शौक था, इसी कारण भारत में मुगल राज्य के समय में बहुत-सी इमारतों का निर्माण हुआ। इन इमारतो में ईरानी एव भारतीय हिंदू वास्तु-कला का मिश्रण स्पष्ट दिखता है। अकबर के काल से ही मुगल इमारतों का भारत में बनना प्रारभ हुआ। इसके समय की इमारतें बहुत कुछ हिंदू शैली की बनी, इनमें इस समय मोजैक (Mosaic), रगीन चूनेदार बलुआ पत्थर (Sandstone), संगमरमर तथा एक विशेष प्रकार की चट्टान (Schist) का प्रयोग इमारतों मे प्रारभ हुआ। यही मुगल चित्रकला के भी साथ हुआ।

प्रारंभिक मुगल वास्तुकला केवल ईरानी शैली से प्रभावित थी परतु समय के साथ हिंदू शैली के मिश्रण से एक नई आदर्श भारतीय वास्तुकला की शैली का जन्म हुआ। सबसे प्रथम कला मे लोदी सूर की भारतीय मुस्लिम शैली का प्रचार हुआ उसके बाद राजपूत शैली का प्रचार हुआ जो हमें आगरे के किले में (1565–1573 ई०) तथा फतहपुर सीकरी (1573–1580 ई०) में दिखाई पड़ता है साथ ही यहाँ की सलीम चिश्ती की मजार उस समय की नई साम्राज्जियक (Imperical) वास्तुकला को अपने मे स्पष्ट दिखाती है। चिश्ती के मजार के खंभे हिंदू शैली के बने हुए हैं परतु शेष सभी स्थानो पर जौनपुर की मुगल शैली पुराने किले के मिस्र के मोजैक (Mosaic) में स्पष्ट दिखती है। इस मजार का प्रवेशद्वार पूर्णतया प्रारभिक मुगल शैली में बना है। फतहपुर सीकरी का जोधाबाई का किला सरल हिंदू शैली मे बना हुआ है परंतु बादशाह अकबर का विश्रामगृह लोदी शैली से प्रभावित लगता है। इस किले में मुगल एवं राजपूत हिंदू नमूनो का प्रयोग साथ ही किया गया है। हिंदू तथा मुगल वास्तु कलाओं के मिश्रण की इमारते कुछ इस प्रकार हैं जहाँ सुदर अलंकरण भी किये गये है वे लाहौर का किला (1580–1618 ई०) इलाहाबाद का किला, अजमेर का किला (1572 ई०) इत्यादि हैं। इस वास्तुकला की विशेषतायें जहाँगीर के समय की इमारतो तक (1605–1627 ई०) निरंतर दिखाई पड़ती हैं जिसका अच्छा उदाहरण काश्मीर का शालीमार बाग है। इसके बाद की इमारतें अधिक सुंदर तथा उनका आकार पतला एव बड़ा होने लगा और वे अलकारिक हो गई। बाद की मुगल शैली का सब से अच्छा इमारतों का उदाहरण "अकबर का मकबरा" है।

शाहजहाँ (1628–1658 ई०) के साथ ही मुसलमानों की धर्म परायणता फिर से प्रचलित हुई, साथ ही हिंदू शैली के मिश्रण से इमारतों तथा चित्रकला

का बनना बंद हो गया और फिर से ईरानी वास्तुकला में इमारतों का निर्माण होने लगा, इसमें इमारतों के किनारे एक ही रंग के टाइल्स (Tiles) के मोजैक (Mosaic) से भरे जाने लगे और बाद में इन्हें चौकोर टाइल्स (Tiles) से भरा जाने लगा जिनके ऊपर अधिकांशरूप में अलंकरण किया गया। इन्होंने कई भारतीय वस्तुओं को ईरानी प्रभाव के साथ इन अलंकरणों में दिखाया। इस युग में वास्तुकला की बहुत उन्नति हुई जिसका उदाहरण "ताजमहल" है।

इस नई मुगल शैली का उद्गम तीन भिन्न स्थानों से प्रारंभ माना गया है—

1 गुजरात एव मालवा की सफेद संगमरमर की वास्तुकला।

2. बंगाल की भारतीय तथा मुस्लिम वास्तुकला जैसे कमल के खंभे।

3. अंत में दक्षिणी शैली जिसमें काश्मीर के फूलों का अलंकरण किया गया है।

अट्ठारहवी शताब्दी मे लाल चूनेदार बलुआ पत्थर (Red Sandstone) का प्रचलन इमारतों में हुआ परतु इस समय भी इमारतें मुगल शैली की ही बनाई गईं। (1648–1658 ई०) तक मुगल वास्तुकला अपनी चरम सीमा पर रही। इस समय मुगल महलों का बहुत सुंदर निर्माण हुआ परंतु प्रारंभिक भारतीय मुस्लिम वास्तुकला तथा दक्षिणी महलों की वास्तुकला के विपरीत ये केवल एक ही मंजिल की इमारतें बनाई गईं जिनमें संगमरमर के गुबजो, पानी की निकास नालियाँ बनाई गईं। इस समय अरबस्क (Arabesques) पर अलकरण भी किया गया। कुछ अभ्युचित्रो (Reliefs) में भी अरबस्क पर अलंकरण किया गया, परंतु अधिकतर यहाँ पर जडत का काम हुआ। कुछ अरबस्क सुनहले रगो से भी रंगे गये साथ ही नीले तथा बैंजनी रंग का भी प्रयोग किया गया। इस समय शीशे के कमरे बनाने का भी प्रचलन हुआ।

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि चित्रकला एवं वास्तुकला दोनों को ही मुगल युग में महत्त्व दिया गया है तथा दोनो ही की उन्नति हुई। इसने जहाँ चित्रकला को एक नया मोड दिया वही साथ ही वास्तुकला को भी एक नया मोड दिया। इन्ही सब कारणों से मुगल शैली को भारतीय कला में बहुत महत्त्व दिया गया।

राजपूत लघुचित्र (1550–1900 ई०)

भारतीय चित्रकला के इतिहास में राजपूत चित्रों का अपना एक अलग स्थान है। इसमें कई प्रकार की शैलियों का सम्मिश्रण है ये भारतीय बौद्ध शैली, मुगल शैली, जैन शैली एवं लोक कला मुख्यत: हैं। भारत में हिंदू कला का पुनरुत्थान सब से प्रथम १४वीं शताब्दी में हुआ। यह पुनरुत्थान पूर्णरूप से पुरातन था परंतु

मुगलों के कारण यह बाद में सुधार की प्रेरणा बन गया जिसकी मध्यकाल में पहले से ही आवश्यकता थी। मुगलों के प्रभाव के कारण हिंदूकला को भारतीय मुस्लिम सभ्यता तथा उनकी शैली को अपनाना पड़ा। मुगल चित्रों की जैन तथा हिंदू चित्रकला में लघुचित्रों के रूप में नकल की गई और इन्होंने अपने मध्यकालीन युग में अपना स्वतंत्र रूप बना लिया। इस प्रकार से एक नई शैली का जन्म हुआ, जिसमें मुगल आकार तथा सरल हिंदू आकारों का प्रयोग किया गया। चित्रकला प्राचीन परंतु भावों के अच्छे ढग से व्यक्त करने की शैली बन गई।

भारत में मुगल तथा राजपूत शैली दोनो ही एक समय में प्रचलित थी इसी कारण दोनो ही शैलियो में बहुत अधिक समानता दिखती है तथा इनका एक दूसरे पर बहुत प्रभाव पडा। राजपूत शैली राजस्थान तथा पंजाब के पहाड़ों में प्रचलित थी परतु मुगल शैली दिल्ली तथा दिल्ली के पास के प्रातों में प्रचलित थी। दोनों ही प्रकार की शैलियों के चित्रों के विषय में भिन्नता थी राजपूत चित्र मुख्यत. हिंदू विषय के थे परतु मुगल चित्र धर्म से बहुत अलग थे।

राजनीतिक गडबडियों के कारण नवी शताब्दी के बौद्ध स्कूल के चित्र भारत में कही नही दिखते हैं परंतु फिर भी ये राजपूत चित्रों के जन्मदाता माने गये हैं। सोलहवी शताब्दी के अंत मे राजपूत शक्तिशाली हो गये और तब ही राजस्थान तथा हिन्दू धर्म के प्रचार के स्थानों पर (बनारस तथा मथुरा) कला का प्रचार आरभ हुआ। मुगल आक्रमणों के समय में भी ये चित्र राजपूताना में सुरक्षित रहे। ये चित्र अपनी परंपरा को स्पष्ट दिखाते हैं। इस प्रकार से यह प्रतिष्ठित बौद्धशैली से अपना सबंध दिखाते है। इन्ही शताब्दियों में हिंदू धर्म का पुनर्जागरण बौद्धधर्म में हुआ और एक नया हिंदू धर्म, नये अनुष्ठान तथा नये विचारों से प्रारंभ हुआ हॉलाकि यह बहुत कुछ कला से भिन्न था, परतु बाद में धर्म तथा धार्मिक सिद्धातों को इन चित्रो में लिया गया और इस प्रकार से कोमल कला (Plastic Art) को महत्व मिला। बाद में राजपूत कला को जयपुर कला के नाम से भी पुकारा गया। यह चित्रकला मुख्यत: अलंकृत थी एवं अपने में ईरानी तथा चीनी प्रभाव को लिए हुए थी। इसमें समतल, तीव्र रंगों का प्रयोग, मिस्र की आकृतियों के समान आकृतियाँ बनी तथा ये लाखों के समूह में बनाई गईं। आकृतियो के मुख भावरहित तथा आँखे उभरी हुई भावयुक्त बनाई गईं। सारा भाव आकृति की आँखों द्वारा दिखाया गया। भावों को व्यक्त करने के ढग को मुद्राओं में केंद्रित किया जाने लगा। इस युग की अलकारिक हिंदूकला बहुत सरल एवं साधारण थी। चित्रो के हाशियों में

लताओं के नमूने खोकाई में बनाये गये, साथ ही देवताओं की आकृतियाँ तलवार किए बनाई गईं। इसमें महान पशुओं को कपड़ों पर तीव्र रंगों द्वारा चित्रित किया गया। राजपूत कला में सर्वप्रथम खिड़की के दृश्यों का चित्रण किया गया।

16 वीं शताब्दी में राजपूत शैली पूर्ण उतरी, पूर्वी भारत में विकसने लगी जिसमें जौनपुर की शैली भी थी परंतु 1620 ई० में राजपूत कला मध्यकालीन पुनर्जागरण से अलग हो गई और यह 17 वीं शताब्दी में मुगलकला से पीछे रह गई। इस हिंदू वास्तुकला के नमूने ग्वालियर के किले में उन्नत हुए परंतु इसकी झालरों में इस्लामिक टाइल्स (Tiles) तथा लकड़ी की कटाई में इन्हें बनाया जाने लगा।

राजस्थान के प्रमुख नगरों मे इस शैली की भिन्नता के कारण उनकी अपनी अलग-अलग शैलियाँ हुईं। यह कला राजस्थान में हिंदूधर्म के प्रचार के कारण धार्मिक विषयों में हिंदूत्व से भरी हुई थी। राजपूत चित्रकला को दो भागों में बाँटा जा सकता है—

1. राजस्थानी चित्र या राजपूत हिंदू शैली।

2. पहाड़ी चित्र (पंजाब हिमालय के) या डोगरा स्कूल के चित्र। पहाड़ी चित्रों को हम फिर दो भागों में बाँट सकते हैं—

(क) प्रारंभिक जम्मू चित्र शैली।

(i) जम्मू शैली।

(ii) चम्बा शैली।

(ख) 18 वी शताब्दी के अंत की काँगड़ा शैली जो कि राजा समसेर चन्द्र के कामों में स्पष्ट है।

(i) कल्लू शैली।

(ii) बसोली शैली।

राजस्थानी चित्र या राजपूत शैली

राजस्थानी शैली 1550–1900 ई० में राजस्थान में प्रचलित रही। परंतु 18 वीं शताब्दी में यह उन्नति के शिखर पर पहुँच गई। 18 वी शताब्दी के प्रारंभ में राजस्थान में मुगलशैली के चित्रों का प्रचार हो चुका था जिसका भावनात्मक तथा विषयात्मकरूप हिंदू चित्रों से एकदम अलग था। यह राजाओं की रुचि पर निर्भर था। परन्तु 18 वीं शताब्दी के अंत तक राजपूतकला मुगल-कला से एकदम अलग हो गई, फिर भी उस पर थोड़ा बहुत मुगल शैली का प्रभाव रहा परंतु इनके विषय हिंदूधर्म तथा घरेलू जीवन के विषय हो गये।

भारत में मुगल चित्रों के साथ ही राजपूत चित्र भी चल रहे थे। राजपूत

चित्रकला के करीब-करीब सब उदाहरण मुगल चित्रकला के समय में ही भारत में राजस्थान तथा पंजाब के पहाड़ों में देखने को मिलते हैं। राजपूत चित्रकला उस समय मौलिकरूप में भारत की पुरातन देशी कला पर ही आधारित थी और यह प्रतिष्ठित बौद्ध भित्ति चित्रों की निरन्तरता को दिखाती थी। भारत में मुगलों के आगमन के कारण (1680–1760 ई०) राजपूत चित्रकला बहुत कुछ मुगल चित्रों के समान हो गई। मुगलकाल से पहले के राजपूत चित्रों के उदाहरण आज हमें बहुत कम देखने को मिलते हैं, इस कारण हमें ये मानना पड़ता है कि मुगलकला का राजपूत कला पर काफी प्रभाव था। 18 वीं तथा 19 वी शताब्दी के कुछ कलाकारो के उदाहरण इस बात की पुष्टि कर देते हैं कि भारत की उस समय की आधुनिक कला पर प्रारंभिक भारतीय कला का प्रभाव था, चूंकि दोनो ही प्रकार की कलायें एक साथ ही भारत में भिन्न-भिन्न प्रदेशों में दिखती थी इस कारण दोनों ही कलाओं को अलग-अलग विशेषता दी गई है। पूर्ण उत्तरी भारत की कला को एक बड़े शीर्षक "मुगल शैली" का नाम दिया गया, धीरे-धीरे इन कलाओं का ज्ञान होने पर इन कलाओं के अलग-अलग उद्‌गम का भास हुआ तथा यह माना गया कि उनकी उन्नति भी अलग-अलग ही हुई। इस प्रकार दोनो समकालीन शैलियों को अलग-अलग किया गया। मुगल चित्रकला को अमीरों के विलास की वस्तु तथा प्रत्यक्षरूप मे स्वाभाविक या यर्थाथपूर्ण कहा गया एव राजपूत चित्रकला को हालांकि उनकी बनाने की विधि बहुत कुछ मुगलशैली के चित्रो के समान थी परंतु फिर भी इन्हे प्रजातात्रिक कहा गया, क्योंकि यह कला विशेषकर साधारण जनता की कला थी न कि दरबारी लोगो की। यह कला मुगलकला के विपरीत गहन थी। बाद मे राजपूतकला ने धर्म का अनुमोदन अजंता के भित्ति चित्रो के समान किया, परतु इनमें बौद्धधर्म की उदासीनता के स्थान पर हिंदूधर्म के देवताओं की अशात शक्ति का प्रदर्शन किया गया एव यह इस धर्म का मौलिक विचार माना गया। साथ ही इस कला में समस्त भारतीय जीवन के भिन्न रूपो को चित्रित किया गया। इसमें ग्राम्य जीवन का बहुत सुन्दर चित्रण किया गया है। इस प्रकार से राजपूत चित्रकला में जीवन की सभी घटनायें हमें देखने को मिलती हैं। इसी कारण राजपूत चित्रकला को लोककला भी कहा जा सकता है। ये स्वाभाविक रूप से मनुष्य की अपनी प्रसन्नता तथा उपदेशो पर निर्भर करती थी। यह कला सबसे प्रथम धार्मिक श्रद्धा को दिखाती है। इस कारण इस कला को दो भागों में विभाजित किया गया है। एक ओर इसमें साधारण भारतीय दैनिक जीवन का चित्रण है वही दूसरी ओर धर्म एव पौराणिक कथाओं का चित्रण किया गया है।

पहले हम दैनिक जीवन के विषयों के राजपूत चित्रों का वर्णन करेंगे। कोई भी दैनिक जीवन की घटना राजपूत कलाकारों की तूलिका से अलग न थी। इनके चित्र स्पष्ट बाहरी रेखांकन के चित्र हैं। इनके चित्रों के विषयों में बाजार के दृश्य तथा वहाँ के काम करने वालों को बहुत साधारण एवं सजीव ढंग से चित्रित किया गया है जिसका उदाहरण 'कालीन बुनने वाला' शीर्षक चित्र है। जिसे सहज भाव से बहुत सुंदर बनाया गया है। इस चित्र में जुलाहे को रंगीन ऊन में गाँठ बाँधते एवं कालीन पर नमूना बनाते चित्रित किया गया है। उसके चारों ओर काम करने के औजार बिखरे पड़े हैं। चित्र के एक ओर उसका उतारा हुआ जूता रखा है एवं रंगों का विशिष्ट रूप से यहाँ पर ठीक प्रयोग किया गया है। इस चित्र को देखकर ऐसा भास होता है कि जब कलाकार इस चित्र को बना रहा होगा उस समय यह व्यापार उसकी आँखों के सामने हो रहा होगा, क्यों की चित्र के विषय की बारीकियों का ध्यान चित्रकार ने बहुत अच्छे ढंग से किया है। इसी चित्र में एक स्थान पर जुलाहा अपने लड़के को काम सिखा रहा है, इसके निकट ही इसका छोटा भाई बड़े भाई को काम करते देखता चित्रित किया गया है। इसकी पृष्ठभूमि मे दो स्त्रियाँ खडी हैं एक अपने बच्चे के साथ खेल रही हैं। यह चित्र इतना सजीव है कि बच्चे का चिल्लाना भी सुनाई-सा पडता है। बच्चा माँ के चाँदी के बाले को खीचता चित्रित किया किया है तथा दूसरी स्त्री बडे बच्चे का हाथ पकडे खडी दिखाई गई है, परतु वह ममत्व के भाव से ओत-प्रोत दिखती है। राजपूत कलाकारो द्वारा सुनार, कढ़ाई करने वाला, छापने वाला इत्यादि का बहुत सहज तथा सजीव चित्रण किया गया है। छोटी-छोटी घटनाओं का इन चित्रों में चित्रण करना कलाकार की सूक्ष्मदर्शिता तथा सहज भावो को व्यक्त करता है। राजपूत्र चित्रो में घरेलू जीवन का जितना सुदर तथा स्वाभाविक चित्रण इस शैली मे हुआ है वैसा कही नही हुआ है। चित्रों में गाँव के बाजार, पनघट, घरेलू काम धंधे, खेत, खलिहान सभी इनकी तूलिका से मानो सजीव हो उठे हैं।

राजपूत चित्रों का दूसरा महत्त्वपूर्ण विषय सडक के किनारे के दृश्यों का चित्रण करना है। इस विषय को कई चित्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार से चित्रित किया गया है। जिससे हमें उस समय के मनुष्यों के यात्राप्रेम का पता चलता है। उस समय यात्रायें बैलगाडियों पर की जाती थी। इनके चित्र "दोपहर का आराम" "Campfire" इत्यादि शीर्षक के चित्र इस विषय पर बने हैं। ये चित्र प्रकृति की सहजता के साथ बनाये गये हैं, जिससे इन चित्रों में सुंदरता लाई गई है। आराम के दृश्य उनके अपने साधारण स्वभाव के कारण उन्हें प्रसन्नता देते हैं। छोटी-छोटी सड़क की घटनाओं द्वारा संयोजन (Compoition)

को बहुत रुचिकर बनाया गया है, इसके उदाहरण कांगड़ा शैली के विशेष चित्रित विषय हैं, जो कि राजपूत शैली के ही एक अंग हैं।

राजपूत चित्रों में दोहरी रोशनी का प्रयोग दिखाना कोई नई बात न थी जैसे एक रात के दृश्यचित्र (Landscape) मे चन्द्रमा तथा अग्नि दोनो ही की रोशनियों को साथ दिखाया गया है। इसमें कलाकार ने इस कठिन प्रभाव को बहुत सरल ढग से चित्रित किया है, परछाइयों का पारस्परिक संबंध तथा चित्र के गहन भाव को बहुत सुदर ढग से चित्रित किया गया है। चित्रों को बनाने से पहले राजपूत कलाकार कागज के उपरी भाग पर सुनहले रग का लेप लगा देते थे और फिर दूसरे रंगों का प्रयोग करते थे, इस प्रकार से प्रकाश तथा छाया के गुण को बहुत सुंदर एवं सहज ढंग से प्रकट करते थे। ये चित्र इतने सुंदर बने हैं कि इनकी बराबरी दुनियाँ के दूसरे कलाकार नही कर पाये हैं। जापानी कलाकारो ने इस प्रकार के चित्र बनाने का प्रयत्न किया था परतु राजपूत कलाकारों की बराबरी वे भी नही कर पायें हैं। राजपूत कलाकारो ने इस कौशल को अपने सुदर चित्रों में अपनाया है। कई स्थानों पर इन्होंने चाँदी का भी लेप लगाया है विशेषकर पानी के चित्रण में जिनमें कमल तथा दूसरे पानी के पौधों को बनाया गया है, परतु ये सुनहले रग के बराबर सफल चित्र नही हुए हैं।

राजपूत कला जन साधारण की वस्तु थी तथा रहस्य एवं धार्मिकता इसके प्रधान अग थे। इनमें हिंदू धर्म के चित्रो की भरमार है जिसका केंद्र जयपुर था। राजपूत चित्र पौराणिक भी बनाये गये है जिनका विषय रामायण तथा महाभारत था। विशेषकर राजपूत चित्र धर्म के विचार को दिखाते है जिसमें कृष्ण को विष्णु का अवतार माना गया है। इस प्रकार इन्होने कृष्ण को ईश्वर माना है। यही कारण है कि राजपूत कलाकारों ने कृष्ण भगवान के जीवन की घटनाओ को चित्रित किया है। राजपूत चित्रों का दूसरा क्षेत्र शिव का चित्रण करना है जिसका उदाहरण "शिव का तांडव नृत्य" चित्र है। इस प्रकार के चित्रों में वे सर्वदा फीके रगों का ही प्रयोग करते थे। राजपूत चित्रों में शिव तथा पार्वती के विषयों के चित्रो को विशेष महत्त्व दिया गया है। बहुत से चित्रों मे 'प्रेमी एव प्रेमिका' का स्थान 'राधा एव कृष्ण' द्वारा दिखाया गया है जिसके द्वारा इन कलाकारों ने प्रेम, उत्कंठा एव धर्म का संकेत किया है।

राजपूत कला को बौद्धकला से उत्पन्न माना गया है इस कारण राजपूत चित्र भी रेखाओं की ही कला मानी गई है। इनकी रेखायें पतली, स्पष्ट तथा नोकीली हैं और ये कला के उच्च नियमों का पालन करती हैं। ये चित्र भावमय, कोमल तथा सुदर है। यहाँ पर भारतीय जीवन के प्रशान्त भाव को बहुत सुंदर

ढंग से व्यक्त किया गया है। एक झलक में इन चित्रों तथा अजंता के चित्रों में समानता नहीं दिखती है, अजंता के बड़े भित्ति चित्र राजपूत लघु चित्रों से भिन्न सतह पर दिखते हैं परन्तु पास से निरीक्षण के बाद ये अजंता के भित्ति चित्रों के छोटे नमूने मालूम होते हैं। हालांकि ये कई गुणों में अजंता के चित्रों के समान नहीं हैं परंतु धर्म एवं कला के क्षेत्र में एक ही गुणों पर निर्भर करते हैं। दोनों ही प्रकार के चित्रों में गहरा बाहरी रेखांकन तथा साधारण शोधन (Treatment) एक-सा दिखता है। इन दोनों ही प्रकार के भावों को दिखाने में ये स्वाभाविक से अधिक आभासी हैं। देश की राजपूत कला नये वातावरण में भारत में बौद्ध-कला के पतन के बाद जन्मी थी इस कारण इसकी परिस्थिति एकदम भिन्न थी। 'रज्मनामा' (महाभारत) के रंगीन चित्र भी इसी शैली में महाराज जयसिंह ने बनवाये थे। नल तथा दमयन्ती की कथा, मारकण्डेय पुराण की कथा को भी कई चित्रों में बनाया गया है। राजपूत चित्रों में पशुओं का जितना सुंदर एवं स्वाभाविक चित्रण हुआ है वैसा केवल हमें जापानी चित्रों में ही देखने को मिलता है।

राजपूत चित्रों के विषय अपने आप में पूरे हैं एवं ये लघु चित्रों के रूप में हैं परन्तु 17 वी शताब्दी के बने राजपूत भित्ति चित्र भी कही-कही से प्राप्त हुए हैं विशेषकर बीकानेर, उदयपुर, जयपुर, पल्टिना इत्यादि से। जयपुर से जीवाकार चित्र भी प्राप्त हुए हैं।

राजपूत चित्रो के पीछे अधिकतर उनका शीर्षक तथा विषय का उल्लेख मिलता है। इस गुण से ये चित्र मुगल चित्रों से भिन्न है क्योंकि मुगल चित्रों के उल्लेख तथा चित्र मे बहुत भिन्नता होती थी।

राजपूत चित्रों में काव्य की कोमलता अपनी चरमसीमा पर है जिसके कारण ही इन चित्रो को महत्त्व दिया गया है। राजपूत कलाकारों ने कविता एव नाटकों का भी सुदर चित्रण किया है। बहुत से चित्रो का विषय भारतीय शास्त्रीय लेखो से लिया गया है। इनमें कृष्ण एवं राधा की लीलायें, शिव तथा पार्वती के विषय लिये गए हैं जिन्हे बनाने में कलाकार ने अपनी कल्पना को चित्रों में व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। इन्हें काल्पनिक चित्र भी कहा गया है। इनमें कविता तथा काव्य पर आधारित चित्र भी बने हैं। ये चित्र 17 वी से 18 वी शताब्दी के कलाकारों द्वारा बनाये गए जो इस कला के रोमांचित क्षणों को दिखाते हैं। इस शैली में राग-रागिनी, राधाकृष्ण, कवियों की कल्पनाओं पर अनेक चित्र बने हैं। राजपूत शैली के रंग तथा रेखाओं का प्रभाव, सुदर आलेखन एवं विषय को चित्रित करने का सुंदर ढग विशेप महत्त्व का है। इनमें चटकीले, चमकदार तथा दीप्तियुक्त रंगों का प्रयोग है। नारी शरीर को

भी राजपूत कलाकारों ने बहुत सुंदर ढंग से चित्रित किया है। ईश्वरसिंह जी तथा प्रतापसिंह जी के समय में मुक्ता, माणिक एवं स्वर्ण के अलंकरणों से युक्त चित्र बने। राजपूत लघुचित्र पाल लघुचित्रों के समान छोटे नहीं होते थे परंतु फिर भी ये लघुचित्र ही माने गये हैं। रामसिंह एवं रावल शिवसिंह के समय के चित्र पाश्चात्य प्रभाव को दिखाते हैं। रामसिंह के समय के चित्र आकार में बड़े बने हैं। 18 वीं सदी के मध्य के राजपूत चित्र तथा मुगल चित्र समान ही दिखते हैं, इनमें छाया का प्रयोग नाम मात्र को किया गया है, रेखांकन चिपटा तथा इनमें पृष्ठभूमि (background) का अभाव है परंतु 18वीं शताब्दी के अंत के चित्रों की रेखाओं में लय, चटकीले रंगों की प्रधानता तथा सुगठित रेखाओं का प्रयोग स्पष्ट दिखता है। इनमें ऐश्वर्य तथा शृंगार को प्रधानता दी गई है। 17 वी शताब्दी के राजपूत चित्र शृंगारिक, ऐन्द्रिक तथा सस्ती रुचि के बने। 17 वी शताब्दी के बाद एक बार राजपूत चित्रकला में पतन का प्रारंभ हुआ क्योंकि ईरानी कला के कोमल गुणों पर मुगलों का उग्र प्रभाव पड़ने लगा, साथ ही भारत का स्वदेशी गुण अपनी स्थिति को पक्का करने लगा। इस प्रभाव के कारण दो प्रकार के चित्र विशेषकर बने वे इस प्रकार हैं—

1 व्यक्ति चित्र या छबि चित्र—जिन पर विदेशी प्रभाव अधिक था।

2. काल्पनिक चित्र—जिनकी भावभूमि स्वदेशी थी इनके विषय राधा-कृष्ण, शिव-पार्वती, काव्य पर आधारित चित्र थे।

राजपूत चित्रों की एक शाखा भारतीय ईरानी चित्रों को भी माना गया है जिन्हें 'प्राचीन मुगल चित्र' भी कहा गया है। इस प्रकार के चित्र जहाँगीर के समय तक बने।

राजपूत शैली के मुख्य कलाकार साहिबराम, लक्ष्मणदास, हुकुमचंद, सालग राम, मुरली, गंगाबख्श इत्यादि हैं।

राजपूत चित्रकला में छबि चित्रो की कमी दिखती है। ये मुगलों के समान छबि चित्रों के कलाकार न थे। परंतु फिर भी इन्होने दो शैलियों मे छबि-चित्र बनाये हैं।

1 कांगड़ा शैली के छबि-चित्र।

2. जयपुर शैली के छबि-चित्र।

दोनो ही प्रकार की शैलियो के छबि-चित्रों में मुगलों के चटकीले रंगों का प्रयोग तथा उनकी ओजस्वी भावना नही दिखती है परंतु वे अपने गुणों के कारण छबि-चित्रों के क्षेत्र में अपना महत्त्व रखते हैं।

कांगड़ा शैली के छबिचित्र

ये छबिचित्र रंगों में अधिक चमकीले हैं। इनमें कुछ प्रतिमाकन (Mode-

lling) का भाव भी दृष्टिगोचर होता है जिसे प्रकाश एवं छाया के द्वारा दिखाया गया है। ये शोधन (Treatment) में अधिक कोमल हैं। इन छवि-चित्रों में जयपुर शैली के गुण कहीं पर भी नहीं दिखाई पड़ते हैं। उस समय के राजाओं एवं विख्यात व्यक्तियों के छविचित्र सुंदर खिड़कियों एवं कीमती कालीनों की पृष्ठभूमि में इस शैली में बनाये गये हैं। कही-कहीं पर छविचित्रों में व्यक्ति विशेष को हुक्का पीते हुए भी चित्रित किया है। कांगड़ा शैली के छविचित्रों का विषय राजाओं तथा उनसे संबंधित व्यक्ति के ही चित्र बनाये गये हैं न कि साधु इत्यादि के। ये चित्र बहुत कुछ मुगल शैली के समान ही बनाये गये हैं। इसका कारण उस समय की प्रचलित स्थानीय माँग थी जिसमें राजाओं के छविचित्रो में समानता दिखाने को विशेष महत्त्व दिया गया था।

जयपुर शैली के छविचित्र

ये चित्र अपने में परंपरागत थे। ये विशेषकर आधे चश्म (half profile) के चित्र बने हुए हैं। इस शैली के छविचित्र जड़ चित्र हैं, रंग सादे तथा करीब करीब दबे हुए हैं। जयपुर शैली के बहुत से छविचित्र केवल बाहरी रेखांकन में ही है और ऐसा जान पड़ता है कि वे पूरे नहीं किये गये है, फिर भी इन ढाँचों (Sketchs) के चित्रों का महत्वपूर्ण गुण उनके बाहरी रेखांकन में है जो स्पष्ट है। ये रेखायें बालों के समान महीन है परन्तु ये भाव एवं रस से युक्त हैं।

पहाड़ी चित्र शैली या पहाड़ी लघुचित्र

राजपूत शैली के महत्त्वपूर्ण चित्र पजाब हिमालय के प्रांत से प्राप्त हुए हैं, जहाँ से भिन्न-भिन्न प्रकार की शैलियों के चित्र मिले हैं। इस पहाड़ी राजपूत शैली के चित्रों को "कांगड़ा शैली" के नाम से भी पुकारा जाता है। क्योंकि पहाड़ों का मुख्य राज्य कांगड़ा ही था। हिंदूकला में पहला स्थान राजस्थान से प्राप्त चित्रों को दिया गया है एवं दूसरा स्थान पहाड़ी प्रांतो के चित्रों को दिया जाता है, इसे 'डोगरा स्कूल' के चित्र भी कहा जाता है, जो नूरपुर, बसौली, चंबा तथा जम्मू में प्रचलित थी। ये सभी चित्र काँगड़ा से संबधित थे। यहाँ के चित्र औरंगजेब के दरबार से भाग कर आये कलाकारों तथा स्थानीय कलाकारों द्वारा बनाये गये थे। 17 वी शताब्दी में यहाँ पर छविचित्रों का भी प्रचलन होने लगा था। कांगड़ा चित्र शैली ने कुछ राजाओं के समय में विशेष उन्नति की, विशेषकर संसारचंद के समय में जिसका राज्यकाल 18 वी शताब्दी के अंत में था। कांगड़ा या पहाड़ी कलम भारत की चित्रकला के इतिहास में एक अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। यह पहाड़ियाँ अलग से स्थित घाटियाँ थी एवं यह भारत के बड़े नगरों से दूर बसी हुई थीं, साथ ही

इनका दूसरे नगरों से उस समय संपर्क न था। इस कारण इन पर विदेशी प्रभाव अधिक न पड सका। यहाँ पर कुछ कलाकार घरानों द्वारा ही कला जीवित थी जिसका पता केवल चित्रों द्वारा ही चलता है। इस समय पहाड़ी कलाकारों ने चित्र केवल स्थानीय माँग के आधार पर ही बनाये। इस कारण इस समय के चित्र पहाडी राजाओं की इच्छाओं पर ही निर्भर हुए। इन्हीं राजाओं की इच्छाओं पर इन्होंने छविचित्र भी बनाये तथा बहुत सी पौराणिक कथाओं एव हिंदूधर्म की कथाओं पर भी चित्र बनाये। छविचित्र बनाना पहाड़ी कलाकारो का विशेष गुण था। अधिकाश छविचित्र आधे चश्म (Half profile) में बने मिलते हैं जिसका कारण वहाँपर मुगल दरबार के कलाकारों का आना था। चंबा से एक बहुत ही सुंदर चित्र प्राप्त हुआ है जिसमें राजा अपनी रानियों के साथ चित्रित किया गया है। यही पर पहाडी चित्रकला में सबसे पहले घरेलू दृश्यों को चित्रित किया गया, इसके पहले भारतीय चित्रकला के इतिहास में घरेलू दृश्यों का चित्रण नही मिलता है। ये पहाडी शैली के चित्र लघुचित्रो के रूप में है। इन चित्रो को मुगल लघु चित्रों से बहुत समानता दिखती है।

19 वी शताब्दी में पहाडी कलाकारों ने अपने क्षेत्र को बढ़ाया तथा उनके राजाओं के छबिचित्रों, ऐतिहासिक दृश्यों, धर्म के चित्र, एवं पुराणों के विषय के चित्रों ने इन्हे देश के बडे नगरों में लाया। तब लाहौर तथा अमृतसर के सिख दरबारो एव महाराणा रणजीतसिंह (1803 ई०–1839 ई०) ने भी इस कला को बहुत महत्त्व दिया। इस प्रकार से रणजीतसिंह के समय में कुछ सिख व्यक्तियों के चित्र इन पहाडी कलाकारों द्वारा बनाये गये। जो शैली में काँगडा शैली के थे। बहुत से पजाब के घरानो में अभी भी अच्छे पहाडी चित्रों का संग्रह मिलता है, जिससे पता चलता है कि कुछ पहाडी कलाकार वापस आकर अपने देश में बस गये होगे जिन्होंने इन चित्रों को बनाया होगा।

पहाडी चित्रकला प्रेरणा या किसी विशेष भाव को अपने में नही दिखाती है। यह धैर्ययुक्तश्रम तथा प्रकृति के सुंदर चित्रण की कला है। पहाडी चित्रकला के मुख्य गुण रेखाओ का भावमय होना, रगों की तीव्रता एवं अलंकरण की बारीकियाँ है।

राजपूत चित्रों की विशेषता उनके लंबे मोडों की अलंकृत शैली, तीव्र रंगों का भेद दिखाना, हिंदूधर्म के विषय इत्यादि गुणों का दृश्यों में चित्रण करना है, केवल उन चित्रो की प्रचलित भावना में भिन्नता दिखती है। कृष्ण के बचपन की लीलायें इस समय के इन पहाडी चित्रों में एकदम भुला दी गई थी परंतु राधा और कृष्ण का प्रेम उनका प्रिय विषय बन गया था, तथा पहाड़ी

शैली में ऋतुओं तथा रागमालाओं का विषय विशेषकर चित्रित होने लगा था।

राजपूत शैली में भारतीय संगीत के संयोजनों के विषय को लघुचित्रों में प्रिय माना है जिन्हें 'रागमाला' के नाम से पुकारा गया है। यह विषय पहाड़ी चित्रों में सोलहवीं से सत्रहवी शताब्दी में बहुत प्रचलित था। इन्हें चित्रित करने में कलाकार की पूर्ण कुशलता दिखती है। यहाँ कला के दो पहलुओं को चित्रित किया गया है एवं संगीत के विषयों को विशेष महत्त्व दिया गया है। हो सकता है कि इन कलाकारों को खुले हुए मैदानों में रहने के कारण उनका संगीत बोध बढ़ गया और इस प्रकार इन विषयों का प्रचार चित्रकला में हुआ। इन चित्रों से हमें मनुष्य की सभ्यता का भी पता चलता है। ये चित्रकला के विभिन्न पहलुओं का घनिष्ठ संबंध दिखाते हैं। 'रागमाला' में 42 रागों का संग्रह है, इन चित्रों को देखते ही हर विद्वान हिंदू को इन चित्रों के विषय का पता चल जाता है। हर चित्र एक विशेष राग की रंगीन व्याख्या है जिससे वह राग संबंधित होता है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि गाने वाला चित्र के साथ खेलता है और कलाकार रंगों के द्वारा चित्रण करता है। इन रागों की धुनों को राग एवं रागनियाँ कहते हैं। ये चित्र कविता के समान विवरण देते हैं। इनमें भावों को भावनात्मक रंगों द्वारा व्यक्त किया गया है या गाने के भाव (राग एवं रागिनियों) को व्यक्त किया जाता है। इन चित्रो में राग का निश्चित समय रात या दिन, मौसम इत्यादि का भी चित्रण उस वातावरण को दिखाने के लिए चित्रित किया गया है। हर राग का इन चित्रों में निश्चित संयोजन है, जैसे भैरवी राग को व्यक्त करने के लिए सर्वदा स्त्रियों को शिवलिंग की पूजा करते दिखाया गया है, राग आसावरी को चित्रित करने के लिए स्त्री को सपेरन के रूप में व्यक्त किया गया है, टोडी राग के लिए स्त्री को वीणा लिए दिखाया गया है जिसके स्वर से जंगली हिरन मुग्ध होकर खिंच आया चित्रित किया गया है, देश राग को नट संबधी चित्रो द्वारा व्यक्त किया गया है, हिंडोल राग में झूले का चित्रण किया मिलता है इत्यादि। 'रागमाला' पहले राजपूत कलाकारों का विषय था परंतु बाद में यह कांगडा शैली के चित्रकारों का प्रिय विषय हो गया। इन चित्रो में केवल रंगों द्वारा भी कई स्थानों पर रागों को व्यक्त किया गया है जैसे मालकौंस राग रात का राग है, इस कारण इस राग को दिखाने में रंगों द्वारा रात के दृश्य का चित्रण किया गया है जिससे मालकौस राग का पूरा भाव चित्र में व्यक्त हो सकें।

पहाड़ी कलाकारों का दूसरा प्रिय विषय "बारामासा" था जिसमें भिन्न-भिन्न ऋतुओं का चित्रण किया गया है। 'माध-माधवी' रागिनी की कविताओं में वर्षा का दृश्य, बादलों को, बिजली की चमक एवं ध्वनि को चित्रों में दिखाने

का प्रयत्न किया गया है, जिससे वर्षा होने का भाव व्यक्त होता है। इस चित्र वातावरण को मोरों के नाचने इत्यादि से व्यक्त किया गया है, इस चित्र में राजकुमारी को अपने प्रियतम की प्रतीक्षा करते चित्रित किया गया है। इस शैली में चित्रों के संयोजनों की स्थिरता तथा कला की प्रकृति से इस शैली की उन्नति का हमें पता चलता है, जैसे जैन हस्तलिपियों (Manuscripts) में प्राचीन तथा अच्छे प्रकार से स्थापित परंपरा के नियमों की व्याख्या मिलती है। इन नियमों को हम कुछ उदाहरणों द्वारा इन चित्रों में प्रमाणित कर सकते हैं जो बादल, वर्षा, पहाड़ो तथा बिजली के चित्रण में स्पष्ट दिखता है। पहाड़ों की नोकीली श्रेष्ठता को साधारण प्रकार से छोटी वस्तुओं के द्वारा बनाया गया है जिन्हें चित्र में फूलों एवं घास से ढक दिया है। यहाँ पर चित्रों में रात एवं दिन की भिन्नता को पृष्ठभूमि (background) की विभिन्नता के द्वारा व्यक्त किया गया है परंतु यहाँ पर प्रकाश में कोई परिवर्तन नही किया गया है। एक दृष्टि से इन चित्रों को हम विशुद्ध भारतीय परंपरा के चित्र कह सकते हैं। ये पहाड़ी चित्र हर दृष्टि से ईरानी शैली से भिन्न हैं।

इन पहाड़ी चित्रों के चमकीले रगों का गुण केवल मीने के कामों से तुलना के योग्य है, हालाँकि प्रत्यक्षरूप में ये चित्र निर्जीव सतह पर बने हुए हैं। इनमें शुद्ध लाल, पीले, गुलाबी, हरे तथा भूरे रगों को शुद्ध श्वेत तथा मखमली काले रंगों द्वारा निकाला गया है। अतिम पहाड़ी राजपूत चित्रों में कही-कही पर सोने का भी प्रयोग किया गया है जिसे हम विदेशी (ईरानी) प्रभाव कह सकते हैं। इनमें बड़े-बड़े रगो के पिंडों से चित्र को भरा गया है एव इनके विपरीत पेड़, पौधे, मनुष्य आकृतियाँ तथा इमारतों का साथ ही चित्रण किया गया है। ये रंग अपने आप ही समतल एव आकृतियों या आकारों की भिन्नता दिखाते हैं। इन चित्रों का संयोजन वास्तुकलात्मक है। राजपूत चित्रों के संयोजनों में आकृतियों की भीड़ नही होती थी, परतु इन चित्रों मे एक विशेष प्रकार की व्यवस्था हमें देखने को मिलती है। इनमें जैन चित्रो के समान सुलिपि (Calligraphy) नही है। इनका रेखाकन (Drawing) आकार युक्त एवं सुंदर है। यहाँ पर तूलिका का स्वतत्र प्रयोग रेखाकन में नही किया गया है। ये रखायें भी सुलिपिक (Calligraphic) नही है परंतु यहाँ पर रेखांकन रंगो से कम महत्त्व का है। इन चित्रों को रगों के बिना सोचा नही जा सकता है। इन चित्रो में सचित्र कला (Pictorial Art) की प्रकृति का रेखांकन नही है। परंतु वह पूर्णरूप से सांकेतिक है। अत के राजपूत चित्रों मे बाहरी रेखाओं को महत्त्व दिया गया है एव उनकी निरतरता को सुधारा भी गया है, इस कारण इन चित्रों में रेखाओ की शक्ति कम हो गई है परंतु साथ ही रेखाओं में अधिक

वास्तविकता तथा मिठास आ गई है। इनमें प्रारंभिक राजपूत रेखांकन की अपूर्व शैली स्पष्ट दिखती है जिसे हम अभी भी बीकानेर के ताश के पत्तों पर देखते हैं। इनमें ताजे एवं तीव्र चमकीले रंगों का प्रयोग है। इन कलाकारों की तूलिका के प्रयोग का ढंग भी करीब-करीब निश्चित होता था। इसके रंग एवं तूलिका स्वयं ही बनाये होते थे। ये अपने चित्रों में तीन प्रकार के रंगों का प्रयोग करते थे—

1. खनिज रंग (Mineral Colours)

ये पत्थरों से बनाये जाते थे जैसे नीले रंग को लाजव्रत पत्थर से बनाया जाता था इत्यादि।

2. जैव रंग (Organic Colours)

ये लाह या चपडे द्वारा बनाये रग होते थे, इन्हें पेडों तथा उनकी जडों से भी बनाया जाता था।

3. रासायनिक रंग (Chemical Colours)

ये रग रासायनिक ढंग से बनाये जाते थे।

इन सब ही प्रकार के रंगों में एक विशेष प्रकार की चमक होती थी जो राजपूत एव पहाडी चित्रों में सर्वदा हमें देखने को मिलती है।

पहाडी चित्र शैली को हम दो मुख्य शैलियों में विभाजित कर सकते हैं (क) प्रारभिक जम्मू शैली तथा (ख) कागडा शैली

(क) प्रारभिक जम्मू शैली	(ख) कागडा शैली
(i) जम्मू शैली	(i) कुल्लू शैली
(ii) चम्बा शैली	(ii) बसौली शैली

(क) (i) जम्मू चित्र शैली

जम्मू शैली को भारतीय चित्रकला में विशेष महत्त्व दिया गया है, क्योंकि इनके ही द्वारा पहाड़ी शैलियों तथा समस्त मध्ययुगीय शाखाओं को पनपने की प्रेरणा मिली। इस शैली के चित्र अब बहुत कम मिलते है, परंतु जो भी चित्र इस शैली के प्राप्त हुए हैं उनसे पता चलता है कि इन्होंने ही दक्षिणी एवं पश्चिमी शैलियों को मध्यकालीन शैलियों मे जोड़ने में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इसका युग सोलहवी से अट्ठारहवी शताब्दी का माना गया है। यह शैली स्वतंत्र तथा समृद्ध थी जिसने विशेष लोकप्रियता प्राप्त की। बहुत से विद्वानों के मत से मुगल शैली को भी इसी काश्मीरी शैली ने मार्ग दिखाया था। बसौली एवं गढ़वाल की शैलियों पर इस शैली का प्रभाव उनके चित्रों के मुकुट, दुपट्टे इत्यादि में स्पष्ट दिखता है। कांगडा शैली के चित्रों के भाव-भंगिमाओं, मुद्राओं, वस्त्रों की सज्जा एवं अलंकरणों में भी इस शैली का प्रभाव स्पष्ट दिखता है।

यह जम्मू शैली जम्मू एवं काश्मीर में प्रचलित थी। चम्बा चित्रों को भी जम्मू के चित्रों के साथ लिया गया है हालाँकि बहुत से कांगड़ा के चित्र चम्बा के संग्रह में मिलते हैं। सभी पहाड़ी शैलियाँ एक दूसरे से बहुत मिलती हैं क्योंकि सभी स्थानों के कलाकारों की उत्पत्ति औरंगजेब के दरबार से आये कलाकारों द्वारा हुई थी। इस कारण चित्रों की शैलियाँ, चित्रों के शोधन (Treatment), चित्रों का कौशल (Technique), रंगों का प्रयोग एवं विषय इत्यादि सब बहुत कुछ एक से है। अतएव इन्हे अलग-अलग करना बहुत कठिन है।

सत्रहवी तथा अट्ठारहवी शताब्दी के जम्मू चित्रो पर टकारी (Takāri) के ढग से शिलालेख लिखे मिलते है, जो कि डोंगरा की पहाड़ियों की विशेषता थी इनके उदाहरण रामायण के बड़े चित्र है जो अब बॉस्टन (Boston) तथा न्यूयार्क (New-York) के संग्रहालयों में रखे हैं। ये नाप एवं संयोजन में भित्ति चित्रों के समान है। प्रारभिक राजपूत चित्रों से इन चित्रों में कम रंगो का प्रयोग किया गया है। इन चित्रों की जमीन का रंग करीब-करीब चित्र के ऊपरी भाग तक फैला होता है, यहाँ पर विशेषकर तीव्र लाल रंग का प्रयोग किया गया है। इन चित्रो में लका के किले को सुनहले रग का बनाया गया है जो कि विदेशी प्रभाव दिखाता है।

(क) (ii) चम्बा चित्र शैली

चम्बा चित्रों को भी जम्मू की पहाड़ी शैली के साथ ही लिया गया है। आज तक चम्बा शैली के बहुत कम चित्र प्राप्त हुए है। परतु एक समय में इस चम्बा शैली को बहुत महत्त्व मिला था। इस शैली के चित्र अपने अनूठेपन के लिये विख्यात हैं। इस कारण पहाड़ी शैली में चम्बा शैली का अपना अलग स्थान है। ये भित्ति चित्रो के रूप में अभी भी चम्बा के रग महल में देखने को मिलते हैं। इनके विषय रामायण, महाभारत, भागवत, दुर्गा सप्तशती, शिव-पार्वती एवं नायिका भेद हैं, हालाँकि इन विषयो पर पहाड़ी शैली में बहुत से चित्र बने हैं। 'भागवत' के आधार पर एक चित्र में सखियो को झूला झूलते हुए दिखाया गया है जो बहुत सुन्दर चित्र है। इन चित्रों की पृष्ठभूमि (background) एवं वृक्ष का चित्रण भावमय है। चम्बा शैली में हमे मुख्यत. धार्मिक विषयों का चित्रण देखने को मिलता है।

(ख) कांगड़ा शैली

पहाड़ी शैली की कांगड़ा शैली की शाखा विशेष महत्त्वपूर्ण मानी गई है। इसका मध्ययुगी कलाओं में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इसके ही प्रभाव

प्रसार के कारण कई शैलियों का कला में जन्म हुआ और तभी पहाड़ी शैली को भारतीय कला के इतिहास में एक स्वतंत्र स्थान प्राप्त हुआ । कांगड़ा शैली में जीवन के अनेक रूपों का दर्शन मिलता है जिसके कारण इस शैली को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है । पहाड़ी शैली की सभी शाखाओं में एक दूसरे से मिलते-जुलते चित्रों का चित्रण किया गया है । जब हम एक शाखा का वर्णन करते हैं तो साथ ही हमें दूसरी पहाड़ी शैली की शाखाओं का भी वर्णन करना अनिवार्य हो जाता है ।

कांगडा की शात पहाड़ियों से वहाँ के कलाकारों ने प्रेरणा प्राप्त कर चित्र बनाये जिन्हें चित्रकला के इतिहास में अलग महत्त्व दिया गया । यह राज्य कृषिजीवि राज्य था । यहाँ का मुख्य राजवश कटौच राजाओं का माना गया है । जिनका राज्य कई सौ वर्षों तक कांगडा मे रहा । राजा घमण्डचंद्र ने 1758 ई० में इस वंश की समृद्धि को पुन. जीवन प्रदान किया और इनके पौत्र राजा संसारचंद (18 वी शताब्दी के अंत में) को इस वंश का प्रमुख राजा माना गया क्योकि इसके ही युग में कला, सस्कृति इत्यादि की बहुत उन्नति हुई । इसका कलाप्रेम आज भी ससार में विख्यात है । यह चित्रकारों को बहुत मान देता था । 'नमदेश्वर' का मंदिर इसकी रानी के कलाप्रेम का प्रमाण है । इस मदिर की सारी दीवारें भित्तिचित्रो से भरी हुई है जिनमें कागडा के लघुचित्रो का इतिहास सुरक्षित है ।

हालाकि कागडा शैली का जन्म 18 वी शताब्दी में हो गया था परंतु कांगडा शैली के उदाहरण 18 वी शताब्दी से अंत से पहले के नही प्राप्त हुए है। कांगड़ा शैली के चित्रों की ताल-सुर-सबधी रेखायें, सामान्य प्राकृतिक सुंदरता, नारी का चित्रण, काल्पनिक कथायें इत्यादि पश्चिमी कला से अपनी समानता को दिखाते है परंतु इसके बावजूद कागडा शैली की अपनी स्वतत्र परपरा मिलती है और यह कभी भो नही कहा जा सकता कि कांगडा शैली ने पश्चिमी कला से प्रेरणा ली होगी ।

कागडा शैली के चित्रों पर तथा समस्त हिमालय की पहाड़ियों के चित्रों पर सबसे प्रथम मुगल प्रभाव दिखता है इसके अच्छे उदाहरण बसौली के सत्रहवी शताब्दी के अंत के चित्र है । उस समय की कांगडा शैली भारतीय कला शैलियों में महत्त्वपूर्ण शैली मानी गई है । कांगड़ा शैली के चित्र राजस्थानी चित्रों के प्रभावपूर्ण रंगों एवं गूलर शैली के कोमल अनुग्रह का मिश्रण है । कांगडा शैली के चित्रों का जीवन, गति एवं कोमल अनुग्रह बहुत प्रभावशाली है । बसौली के कलाकारों द्वारा ही इस कांगडा शैली का प्रचार हुआ एवं इसे लोकप्रियता प्राप्त हुई । गूलर कलाकारों ने राजा गोवर्धनसिह की मृत्यु के बाद

कांगड़ा राज्य में आकर शरण ली और तभी गूलर शैली का प्रभाव कांगड़ा शैली पर आया। बसोली शैली का जो प्रभाव कांगडा शैली के चित्रों में दिखता है वह भी गूलर शैली का ही प्रभाव है।

कांगडा शैली पर मुगल शैली का भी प्रभाव माना जाता है। परंतु यह कुछ हद तक सही नही है क्योंकि बारीकी से देखने पर पता चलता है कि कांगड़ा शैली के चित्र भित्ति चित्रों पर आधारित हैं। ऐसा भी कहा जा सकता है कि मुगल चित्र लघु चित्रों के बडे रूप है और कागडा चित्र भित्ति चित्रों के छोटे रूप। कागडा शैली के प्रारंभिक चित्रो पर मुगल शैली का प्रभाव स्पष्ट दिखता है विशेषकर रंगों की शोखी एवं रेखाओं की मुटाई में। मुगल चित्रों का प्रभाव रात के दृश्यों में जब दो प्रकाशो का साथ ही चित्र में चित्रण किया गया है इन चित्रों में स्पष्ट देखने को मिलता है जिसे भारतीय परपरा पर विदेशियों का प्रभाव माना गया है। जब हम ऐतिहासिक दृष्टि से देखते हैं तो हमें पता चलता है कि कागड़ा शैली का प्रारंभ भी मुगल राज्य से आये हिंदू कलाकारों द्वारा ही हुआ था, इस कारण थोडा बहुत मुगल शैली का प्रभाव कांगडा शैली पर आना स्वाभाविक ही था। हालांकि मुगल शैली सामतो के विचारो के कारण एक व्यक्तिप्रधान कला है परतु कागडा शैली धार्मिक, पौराणिक विषयों को चित्रों मे दिखाती है जो जन सामान्य के विषय हैं।

कागडा शैली मे कुछ प्राचीन कलाकारो के भी चित्र मिले हैं जैसे मोलाराम और संसार चद जो बहुत भावात्मक एव कलात्मक चित्र हैं। इनमे हल्के रंगो का प्रयोग एव तूलिका का रेखाकन बहुत स्पष्ट है। कागडा शैली के चित्र जम्मू तथा राजस्थानी चित्रों से एकदम भिन्न हैं। इनमें कृष्ण भगवान के विषय विशेषकर चित्रित किये गये है और 'प्रेम सागर' कृष्ण के चित्रों से भरा हुआ है। कृष्ण एव गोपियो की लीलायें आत्मा एव ईश्वर के सयोग को दिखाती है, परंतु ये चित्र लौकिक भाव भूमि पर आधारित चित्र है। इन चित्रों में अभिनय का भाव विशेष महत्त्व का है जो इन चित्रों की विशेषता है। यह अभिनय का भाव कागडा शैली के चित्रों मे हर स्थान पर दिखाई पडता है। यहाँ पर यथार्थता एवं आदर्श के अभिनय का भाव वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित है। केशवदास का 'रसिक प्रिया' आठ नायको के विषय के चित्रण से भरा हुआ है। इनमें कुछ अलकारिक चित्र भी हैं जो शृगार के अलग-अलग भावों को व्यक्त करते है। इस शैली में 'नल तथा दमयती' एव 'हम्मीर हठ' को विस्तार पूर्वक चित्रित किया गया है। इसमें 'शिव तथा पार्वती' की कथायें, कृष्ण भगवान की लीलाओं का चित्रण, रामायण, महाभारत, दुर्गा सप्तशती, गीत गोविंद, भागवत, हरिवश और 'शिव पुराण' इत्यादि सभी चित्रों की

पृष्ठभूमि आध्यात्मिक विचारों पर आधारित है और उन्हें मानवीय.
के माध्यम से व्यक्त किया गया है। कांगड़ा शैली में धार्मिक, लौकिक एवं पौराणिक विषयों को मुख्यतः लिया गया है। इस प्रकार से ये चित्र जन साधारण की वस्तु बन गई है। कागड़ा शैली में 'रागमाला' के चित्रों का पूर्ण रूप से अभाव मिलता है। कुछ फल एवं फूलों का कागड़ा शैली के चित्रों में स्वाभाविक चित्रण भी हमें देखने को मिलता है। इस शैली में कुछ ऐतिहासिक चित्र भी बने हैं जो विशेष महत्त्व के हैं।

इस शैली की चित्रकला बाहरी रेखाकन की कला है। यह शैली अत्यंत उत्तम मानी गई है। इस शैली के चित्रों में केवल रेखांकन के द्वारा महत्त्वपूर्ण वस्तुओ को सफलतापूर्वक व्यक्त किया गया है। इसमें बाहरी रेखाकन निरंतर तथा तूलिका की लबी रेखायें स्पष्ट दिखती हैं जो कि अजंता के चित्रों से अपनी समानता को दिखाते हैं। जब हम इन चित्रों को प्राचीन राजपूत चित्रों से मिलाते है तो कांगडा के चित्रों का रेखाकन रूप की भाषा को बदलकर शब्दों में प्रकट करने का माध्यम हो जाता है जो यहाँ पर बहुत स्पष्ट है।

इस शैली के चित्रो में रग कोमल एव सुदर है इसका अच्छा उदाहरण "गोधूलि बेला" (Hour of Cowdust) शीर्षक चित्र है जो आज बॉस्टन (Boston) के सग्रहालय में रखा है। इन चित्रों में रगों का प्रयोग एवं तूलिका का प्रयोग इन्हे प्राचीन चित्रों से भिन्न अपने अस्तित्व को दिखाती हैं। साथ ही रग एव तूलिका में भड़कीलापन नही है। कागडा शैली के चित्रों मे मिट्टी के लाल रग, पीले, काले, सफेद एवं हरे रंग का प्रयोग हमें देखने को मिलता है।

इन चित्रो में आकृतिया पतली एव लचीली बनाई गई हैं। साथ ही इनमें स्त्रियो के चित्रो की प्रमुखता है। इन चित्रो में आकृतियो की आँखों को बड़ी आँखों के स्थान पर लबी एव धनुष के आकार की आँखें बनाई गई हैं, उंगलियाँ कोमल एवं लय से भरी बनाई गई है। इन्होंने नारी के भारतीय आदर्श रूप को ध्यान में रख कर चित्रण किया गया है। इनमें शरीर रचना बहुत सुंदर की गई है।

कागडा के चित्रों की शिल्पकारिता अधिक स्वाभाविक एवं स्पष्ट है। ऐसा भास होता है कि उस युग के चित्रकारो को प्रकृति का पूरा ज्ञान था और इसको व्यक्त करने के लिए यदि उन्होंने किसी नियम का पालन किया है तो वह इनका स्वय बनाया हुआ है न कि पैतृक। इस शैली में दृश्यों को प्रधानता दी गई है तथा इनके चित्र प्रेम चित्र हैं। इस शैली के छवि चित्रों का भी अपना अलग महत्त्व है। ये छवि चित्र सजीव एवं वेगवान है जिनसे आंतरिक भाव स्पष्ट प्रकट होता है।

कांगड़ा शैली के चित्रों में काव्यात्मक चित्र भी देखने को मिलते हैं जो देखने वाले को संगीत एवं नृत्य का भाव दिखाते हैं। ये चित्र एक ओर धार्मिक है तथा दूसरी ओर मानवीय-उद्वेगों का अनुभव कराते हैं। कांगड़ा के चित्रों की सुंदरता सभी मानते हैं विशेषकर उनके भावात्मक एवं लयात्मक विषयों के कारण।

कलाकार मोलाराम ने कांगडा शैली के गढवाल में बहुत से चित्र बनाये। यह पहले शाहजहाँ के दरबार का कलाकार था परंतु बाद में यह कांगडा तथा गढ़वाल में आकर बस गया था। कुछ चित्रों में इसके हस्ताक्षर भी हैं। कांगड़ा शैली के मुख्य कलाकार फत्तू, कुशनलाल, पुरखू, बसिया (ससारचंद के दरबार का कलाकार), दोखू, गुलाबराम इत्यादि थे।

कागडा के भित्ति चित्र कनखल में सुरक्षित है जिन्हे 18 वी एवं 19 वी शताब्दी का बना माना गया है। इन चित्रों के विषय मानवीय है साथ ही कुछ पौराणिक एव आधुनिक भी है।

(ख) (i) कुल्लू शैली

कुल्लू शैली कागडा शैली की ही एक शाखा मानी गई है। इन दोनो ही शैलियों में बहुत समानता है क्यो कि गढवाल के राजा की शादी कागडा राज्य की राजकुमारी से हुई थी और उसकी शादी में कुछ कागड़ा के कलाकार गढ़-वाल जाकर बस गये तथा कुल्लू मे उन्होने कागडा शैली के चित्र बनाने प्रारंभ कर दिये इस प्रकार से गढ़वाल स्कूल या कुल्लू शैली का जन्म हुआ। गढ़वाल स्कूल का मोलाराम महत्त्वपूर्ण कलाकार माना गया है। इस शैली के चित्रो के विषय कृष्ण, प्रेमसागर, नायक, नल दमयंती, हम्मीर हठ इत्यादि है। इस शैली के चित्रो के गुण बहुत कुछ कागडा शैली के ही चित्रों के गुण हैं।

(ख) (ii) बसौली शैली

बसौली राज्य की राजधानी बालौर थी। चंबा से प्राप्त एक अभिलेख से पता चलता है कि बलौर एक स्वतत्र रियासत थी। आजकल यह बसौली जम्मू राज्य के अंतरगत एक गाँव के रूप में स्थित है, परंतु इसके खंडहरों से इसके गौरव एव वैभव का पता चलता है। बसौली शैली के जन्म देने मे कागडा तथा चंबा शैलियों का मुख्य हाथ है, इसे काश्मीर शैली से प्रेरणा प्राप्त हुई। इसकी पुष्टि बसौली शैली के चित्रो की निजस्वता से होती है। इस शैली को भी कांगडा शैली की शाखा ही माना गया है। इससे पता चलता है कि पंजाब के पहाड़ी प्रदेशों की चित्रकला मे काश्मीर शैली (जम्मू शैली) का बहुत बड़ा हाथ है। बसौली के चित्रों का पीला, लाल एवं सिंदूरी रग तथा पुरुषोचित ओज

भरा स्त्रियों का रूपांकन काश्मीर शैली की ही देन है। बसौली के चित्रों के पुरुष को धोती तथा चादर पहनाये चित्रित किया गया है, पुरुषों के शरीर का ऊपरी भाग सर्वदा वस्त्र रहित चित्रित किया गया है एवं शरीर को सुनहले रंग का बनाकर अलंकरणों से सुसज्जित किया गया है, यह रूप विधान भी काश्मीर शैली का ही प्रभाव माना गया है। पंजाब के पहाड़ी शैली के चित्रों से यह स्पष्ट हो गया है कि जम्मू की कोई चित्र शैली न थी बल्कि वह बसौली चित्र शैली ही थी। इस बात की पुष्टि श्री नानालाल चमनलाल मेहता के कथानुसार हुई है।

बसौली के चित्र सत्रहवी शताब्दी के बने बताये गये हैं। इस शैली के सबसे प्राचीन चित्र 'गीत-गोविन्द' पर आधारित हैं जिसे सत्रहवी शताब्दी में बना माना गया है, परंतु बसौली शैली के चित्रों का समय उन्नीसवीं शताब्दी तक रहा।

बसौली शैली अपने युग की प्रभावशाली एवं लोकप्रिय शैली थी। इसका प्रचार पजाब, गढ़वाल, तिब्बत, नेपाल इत्यादि देशों में हुआ। इसको सुलिपि, चित्रों का कोमल भाव तथा रंग विधान के कारण यह बहुत प्रचलित हुई और इसके चित्र लोक दृष्टि से बनाये गये।

बसौली चित्रों को पहले तिब्बतीय या नेपाली या मुगल शैली के ही चित्र कहा जाता था परंतु श्री कुमारस्वामी ने इन चित्रों के अलग विधान एवं परंपरा के कारण इन्हें अलग स्थान दिया। उन्होंने इन चित्रों को मुगल शैली से भिन्न बताया तथा इन्हे अजता के भित्ति चित्रों पर आधारित चित्र सिद्ध किया।

'गीत-गोविन्द' पर आधारित इस शैली के चित्रों के पीछे श्लोक लिखे हैं। इनसे मिलते जुलते चित्र गंगोली राजपूत चित्रकला में भी पाये गये है, इनसे यह पता चलता है कि बसौली के चित्रों से राजपूत शैली अधिक प्राचीन है। बसौली शैली के चित्रों के समान ही चित्र राजपूत शैली के 'रागमाला' के चित्रों में भी मिलते हैं। इनमें वस्त्रों के अंकित करने का भी ढंग एक-सा है, इसके अच्छे उदाहरण 'रसिकप्रिया', 'राधाकृष्ण', एवं 'गीत-गोविन्द' के चित्र हैं। इन सबको देखने से बसौली शैली के अपने स्वतंत्र अस्तित्व का पता चलता है।

हिन्दू चित्रकला के सभी प्रधान गुण बसौली शैली के चित्रो में मिलते हैं। बसौली शैली के समकालीन शैलियों में 'राग-मालाओं' को चित्रित करने की उदासीनता थी परंतु बसौली के कलाकारों का प्रिय विषय ही 'रागमाला' था।

इनमें दृष्टांत चित्रों की प्रमुखता है। इनके ग्रंथों की लिपि भी विवरण के योग्य है।

बसौली शैली के चित्रों में विशेषकर लाल, पीले, नीले एवं सादे रंगों का प्रयोग किया गया है, इनमें हिन्दू शैली के चित्रों के बराबर कोमलता नहीं है परंतु तीव्रता पर्याप्त मात्रा में है। ये चित्र सीधी सादी, फड़कती हुई रेखाओं एवं रंगों द्वारा बने है। इन चित्रों में रंगों का प्रयोग आनन्ददायक है एवं पृष्ठभूमि समतल एवं हल्के रंगों द्वारा दिखाई गई है।

बसौली शैली के चित्रो की विशेषता उनकी आँखो की बनावटों मे हैं, इसे चित्रों में मुख्य स्थान दिया गया है। इन चित्रों का समस्त भाव भावपूर्ण आँखों की बनावट में ही केंद्रित हैं एवं ये बहुत सुंदर बनाई गई हैं। इन चित्रों में आकृतियों की मुद्रायें भी बहुत सुदर की गई हैं। बसौली के कलाकारों ने अजता की हस्तमुद्राओ से प्रभावित होकर ही अपने चित्रों में भावों को दिखाने के लिये हस्तमुद्राओ को चुना और वे भावो को व्यक्त करने मे सफल भी हुए। इन चित्रों में नाक, कान, मुँह, ललाट, कपोल, वस्त्र सज्जा, शरीर की बनावट इत्यादि सफलता से चित्रित की गई है। बसौली के चित्रो मे ललाट पीछे को दबा हुआ बनाया गया है, नाक लबी एव झुकी हुई, मुंह छोटा, भरे हुए कपोल एव ठोढ़ी अदर को धसी हुई बनाई गई है। स्त्रियों के कुछ बाल कपोलों पर लटके चित्रित किये गये है। झीने वस्त्र की ओट मे शरीर का चित्रण करना इनका विशेष गुण है। इस शैली की समानता बहुत कुछ जैन शैली से है परतु यह मुगल शैली से एकदम भिन्न है। कही-कही पर इन चित्रो म स्वर्णकीट के पखों का उपयोग भी किया गया है। बसौली शैली के चित्रों के विषय पौरा-रिक कथायें एव छबिचित्र (Portraits) हैं, इसमें कुछ धर्म पर आधारित एव सामाजिक चित्र भी मिलते है। ये चित्र अजता के भित्ति चित्रो पर आधारित होने के कारण हिन्दू सस्कृति एव परपरा को भी दिखाते हैं।

कुल्लू के सुलतानपुर के महल के भित्ति चित्र भी बसौली शैली ही के चित्र हैं क्योंकि कुल्लू की कोई अपनी स्वतंत्र शैली न थी। ये चित्र 1206–1810 ई० के बने बताये जाते है। इन भित्ति चित्रों के वर्णन में श्री जगदीश मित्तल का कथन है कि 'उनकी लबी, सुडौल आकृतियो, चेष्टाओ के द्वारा भाव व्यक्त करने का ढंग, जोरदार रेखायें, चटक रगो का प्रयोग, रंगों का संमिश्रण, पेड़ों का सुंदर चित्रण, वस्त्रालंकार, एव चूने के सफेद पलस्तर पर चित्रों का बनना—ये विशेषतायें इन चित्रो के महत्त्व को प्रकट करती हैं।"

19वीं शताब्दी में इस राज्य को जम्मू के राजाओं ने अपने राज्य में मिला

लिया और इसके साथ ही बसौली शैली का भी अपना अलग अस्तित्व न रह गया एवं यह शैली समाप्त हो गई।

हिमालय में कला की क्रांति बहुत अंत में पहुँची। 19 वीं शताब्दी के अंत में पहाड़ी कला का पतन प्रारंभ हुआ और इस समय कोमल एवं आदर्श गुणों का स्थान कठोर शोषण ने चित्रों में ले लिया। इन घाटियों का संबंध सड़कों द्वारा बाहरी संसार से स्थापित होने लगा, साथ ही कलाकारों के परिवार के लोग दूसरा व्यवसाय करने लगे। इस प्रकार से कला का अपना अस्तित्व न रह गया और उसका विध्वंस होने लगा। कांगड़ा शैली पूर्णरूप से 4 अप्रैल, 1905 ई० मे धर्मशाला के भूकम्प में समाप्त हो गई और कांगड़ा नगर खंडहरों में बदल गया। इस प्रकार से विख्यात राजपूत कला का पूर्ण अंत हो गया। बाद में ये भारतीय चित्र केवल देशी कला के नाम से पुकारे जाने लगे, साथ ही हिंदू कला भारत में समाप्त हो गई।

●

अध्याय 11

आधुनिक भारतीय चित्रकला

(19 वीं शताब्दी के अंत से–आज का युग)

आधुनिक भारतीय चित्रकला पर विश्व की कला शैलियों का प्रभाव स्पष्ट दिखता है। इस कारण हमें उन परिस्थितियों का अध्ययन करना आवश्यक है जिनके कारण आधुनिक भारतीय कला प्रभावित हुई। 19 वीं शताब्दी के समाप्त होने के साथ ही कला के भारतीय स्कूलो की परपरा का अंत प्रारभ हो गया। अट्ठारवी शताब्दी में मुगल एव राजपूत कला की अवनति हो गई थी साथ ही इस समय भारतीय कला पूर्णत. समाप्त हो चुकी थी, क्योंकि इस समय तक मुख्य भारतीय कला की शैलियो का पतन हो चुका था। इस समय कला में कुछ समय तक कोई भी परिवर्तन नही हुआ जो कला के परिवर्तन के सही समय का द्योतक था। ऐसे समय का योरोपियन लोगो ने लाभ उठाया और पाश्चात्य कला का प्रचार भारत में प्रारभ कर दिया, जिसके कारण अट्ठारवी शताब्दी के बाद भारतीय कला में योरोपियन कला का प्रभाव दिखने लगा। इस समय तक भारत में अग्रेजों का आगमन हो चुका था साथ ही विदेशी शिक्षण पद्धति का प्रचार पूरे भारत में प्रारभ हो गया एव यूरोपियन शैली के विद्यालयों की स्थापना भिन्न-भिन्न स्थानो पर की गई। इस युग में भारतीय कला को हेय मान कर उसे सीखना भी निंदा की दृष्टि से देखा जाने लगा, इसके विपरीत योरोपियन कला को उच्चकोटि की कला माना जाने लगा, साथ ही उसे सीखना एक गौरव का कार्य समझा जाने लगा। इस कारण 19 वी शताब्दी के अंत में तथा 20 वी शताब्दी के प्रारभ में भारत में योरोपियन कला का अच्छा प्रचार हुआ एवं भारतीय कला का विध्वंस हुआ। इस युग में हमारा देश अंधकार की तह में चला गया और भारत की संस्कृति एवं धर्म का भी नष्ट होना प्रारंभ हो गया क्योंकि भारतवासियो ने योरोपियन प्रभाव के कारण अपने धर्म एवं संस्कृति को छोडना प्रारभ कर दिया। सबसे प्रथम भारत में पुर्तगाल कला का प्रभाव गोआ में उनके आगमन के कारण आया एवं कलकत्ते में 1787 ई० में अंग्रेजों के आने के कारण अग्रेजी एवं योरोपियन शैली का प्रारंभ हुआ, इसी कारण 19 वी शताब्दी की भारतीय कला पूर्णरूप से अग्रेजी शैली की दिखने लगी, विशेषकर भारतीय वास्तुकला (Architecture) में यह अभी भी हमें

स्पष्ट दिखती है। यह कला भौतिकता से भरी हुई थी। इस युग के विख्यात भारतीय कलाकार मैसूर राज्य के राजा रवि वर्मा थे। राजा रवि वर्मा ने सर्व-प्रथम भारतीय विषयों को पश्चिमी शैली में अपने चित्रों में बनाया। ये मुख्यतः छविचित्रों के कलाकार थे परन्तु इनके एतिहासिक, धार्मिक चित्र विशेष महत्त्वपूर्ण हुए।

इस समय दक्षिण भारत में मुगलकला भी अपने पतन में थी। परंतु यहाँ के ऐतिहासिक दृश्यों के चित्रों में अभी भी सजीवता तथा गति थी हालाँकि यह पतन का युग था। इस युग में कहीं-कहीं पर उत्तरी एवं दक्षिणी शैली के मिश्रण के भी चित्र बने। इस समय दक्षिण भारत की तनजाबूर एवं मैसूर शैलियाँ उन्नत होने लगी। तनजाबूर शैली का उद्‌गम राजपूत शैली से माना गया है। इस शैली के चित्र तनजाबूर तथा पुट्‌टूकोटै के महलों में सुरक्षित हैं। इसमें महत्त्वपूर्ण तैल छविचित्र भी बनाये गये, जो कि इस समय मैसूर के महलों में है। कुछ समय के बाद इस शैली का अंत हो गया। इस शैली में धार्मिक विषयों के लघुचित्र भी बने, जो भावयुक्त एवं सजीव हैं। राजा कृष्ण एवं राजा बुडेकर के समय में (19 वी शताब्दी) मैसूर शैली की उन्नति हुई।

उन्नीसवी शताब्दी के अन्त में भारत मे कुछ प्रातीय राजधानियों में कला के विद्यालयों की स्थापना हुई परन्तु उनका उद्देश्य केवल भारत में विदेशी कला का प्रचार करना था। इन विद्यालयों के प्रधानाचार्य अंग्रेज कलाकार ही हुए, जिन्होंने भारत में अंग्रेजी पद्धति की शैक्षिक (Academic) कला का प्रचार किया। यह कला प्रारम्भ से ही स्वाभाविकता से पूर्ण थी जो विवरणात्मक आकृतियों के चित्रण में स्पष्ट दिखती है। इस समय केवल भारत के गाँवों की ही लोककला में कुछ काल्पनिकता एवं भारतीयता दिखाई पडती थी। परन्तु ये लोग गाँव के समाज की आवश्यकताओ को ही पूरा करते थे साथ ही इन्होंने कला की एक लम्बी परंपरा को भी जीवित रखा जो बहुत समय तक कला में विद्यमान रही। इस लोक कला में खिलौने, पटचित्र, हाथ के छपे कपडे, धातु का काम, गहने इत्यादि बहुत सुन्दर नमूनों के बनाये गये। साथ ही यह लोक कला आने वाले युग की कला की प्रेरणा भी बनी।

भारतीय कला की जागृति (Revival)

उन्नीसवी शताब्दी के अंत में भारत के समाज में चेतना और जागृति का प्रारंभ हुआ। उनकी कला, राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों में भी परिवर्तन होने लगे, इसी कारण इस युग को कला का पुर्नरुत्थान काल भी कहा गया। इसका श्रेय भारतीय अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त युवको को दिया गया है, क्योंकि इन्होंने उस हेय विचार को कि 'भारतीय कला ग्रहण योग्य नहीं है'

निकाला और फिर से भारतीय कला पर अध्ययन प्रारंभ किया, जिस भारतीय कला का करीब करीब अंत हो चुका था। साथ ही ये उसकी सुंदरता से प्रभावित हुए एव प्राचीन भारतीय कला निधियों से प्रेरणा लेनी प्रारंभ की। इसीसे लोगों के विचारों में परिवर्तन हुआ और जागृति की भावना का प्रचार हुआ। इन कलाकारों ने सर्वप्रथम प्राचीन विख्यात कलाकारों (Old Masters) की कृतियों की नकलें की परन्तु बाद में इन लोगों ने कला में एक नई प्रेरणा का प्रचार किया। तब ही भारतीय चित्रकला एव वास्तुकला पर अध्ययन प्रारंभ हुआ जिससे इस पर अधिक प्रकाश पड़ा। इस समय श्री ई० बी० हैवल ने लोगों का ध्यान अजंता, एलोरा, राजपूत एवं मुगल कला की ओर आकृष्ट किया साथ ही डा० अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के परिवार ने कला में सौंदर्यात्मक एव कल्पनात्मक अनुभूतियो को दिखाया। गुजरात के श्री रविशंकर रावल, कनु देसाई इत्यादि ने भी इन नये विचारों मे सहयोग दिया और उन्होंने कहा कि 'हमारी भारतीय कला की परपरा अधिक मान्य है और किसी भी दृष्टि से वह योरोपियन कला से हेय नही है।' साथ ही श्री गगनेन्द्रनाथ ठाकुर के चित्रों में उनकी मौलिकता का परिचय मिलता है, आपने योरोपियन क्यूबिज्म (Cubism) को भारतीय साँचे में ढाला और उसे एक नया ही रूप दिया। इस समय कला की क्रांति के कारण श्री कुमारस्वामी द्वारा भारतीय कला का नया विचार लोगो के सामने आया। इन्होंने दो महत्त्वपूर्ण कार्यों को किया, पहला भारतीय कला के उच्च आदर्शों एवं उसकी सुदरता की रक्षा की तथा दूसरी ओर कलाकारो को पाश्चात्य दासता के भाव से मुक्त किया। इसके साथ ही भारतीय कला को एक सतुलित नया मार्ग मिला।

बीसवी शताब्दी के प्रारभ मे आधुनिक भारतीय चित्रकला के युग का प्रारभ हुआ। इन बीसवी शताब्दी के कलाकारो को चार वर्गों में बाँटा जा सकता है—

1. कलकत्ते के कलाकार—जो 'बगाल स्कूल' से सबंधित थे। इस वर्ग के मुख्य कलाकार अवनीन्द्रनाथ ठाकुर, गगनेन्द्र नाथ ठाकुर, नन्दलाल बोस, धनराज भगत, कनु देसाई, देवीप्रसाद राय चौधरी, विनोद बिहारी मुकर्जी यामिनी राय इत्यादि हैं।

2 बम्बई के कलाकार—जो 'बम्बई स्कूल' से संबंधित थे। ये इस प्रकार थे अमृता शेर गिल, रविशंकर रावल, कनु देसाई इत्यादि।

3 स्वतंत्रता के बाद के कलाकार—इनके मुख्य कलाकार नन्दलाल बोस, अवनीन्द्रनाथ ठाकुर, कनु देसाई, विनोद बिहारी मुकर्जी, ज्योतिष भट्टाचार्य द्विजेन सेन इत्यादि हैं।

4. आज के युग के कलाकार—इसके मुख्य कलाकार बीरेन दे, श्री कृष्ण खन्ना, जार्ज कीट, के० एस० कुलकर्णी, एम० एफ० हुसैन, रामकुमार, रजा, सतीश गुजराल, दिनकर कौशिक, तैयब मेहता, सुब्रह्मण्यम, बेन्द्रे, राम किंकर, हैब्बार इत्यादि हैं।

1. 'बंगाल स्कूल'

आधुनिक भारतीय चित्रकला के क्षेत्र में 'बंगाल स्कूल' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि आधुनिक भारतीय चित्रकला का प्रारंभ ही 'बंगाल स्कूल' के कलाकारो द्वारा माना जाता है। 'बगाल स्कूल' के कलकार ठाकुर बंधुओं से संबंधित थे। इन लोगो ने अलग ही दिशा में काम किया, इसी कारण 'बंगाल स्कूल' की अपनी विशिष्ट परपरा मानी गई गई। इस वर्ग के महत्त्व-पूर्ण कलाकार अवनीन्द्रनाथ ठाकुर, गगनेन्द्रनाथ ठाकुर, नन्दलाल बोस, धनराज भगत, देवी प्रसाद राय चोधरी, असित कुमार हाल्दार इत्यादि हैं जिन्होंने चित्र-कला को ऊँचा उठाने का पूर्ण प्रयत्न किया। अवनीन्द्र नाथ ठाकुर के द्वारा चित्रकला के क्षेत्र की क्रांति को ही हम बगाली जागरण या कला के पुर्नरुत्थान के नाम से पुकारते हैं। इसे शांतिनिकेतन की क्राति भी कहा गया क्योंकि भारतीय कला की जागृति की क्रांति शांतिनिकेतन से प्रारभ हुई थी और ये सभी कलाकार 'बंगाल स्कूल' के कलाकार थे। यह स्कूल यर्थाथरूप में परंपरागत भारतीय चित्रकला का पुनर्जागरण माना गया है साथ ही चित्रकला का नवीनी-करण भी इसी स्कूल के द्वारा हुआ। इस स्कूल के कलाकार प्राचीन परंपरागत कला की महानता को मानते थे परंतु हम इनके कामों को कभी भी सत्यरूप से कला का जागरण नही कह सकते हैं क्योंकि उनके कामों में प्रतिष्ठित कला (Classical Art) के उदाहरणों की पुनरावृत्ति अपने सत्यरूप मे हमे देखने को नही मिलती है। इस समय श्री हैवल एव श्री आनन्द कुमारस्वामी द्वारा भारतीय कला के विवरण के लिये एक नया ही वातावरण बन गया। श्री हैवल के कथना-नुसार "इस फैलती हुई मानसिक और शासन-संबंधी अव्यवस्था के पीछे भारत में अब भी प्राचीन भारतीय संस्कृति पर आधारित कला की एक जीवित एव मौलिक परंपरा है, जो योरप की आधुनिक अकादमियों (Academics) एव कला सस्थानों के संचित ज्ञान की अपेक्षा अधिक सम्पन्न और शक्तिशाली है। यह परंपरा केवल उस आध्यात्मिक प्रबोध की प्रतीक्षा कर रही है, जिससे उसकी पुरानी सृजनशील प्रवृत्तियां जागृत हो उठें।" इसलिये ऐसा विश्वास किया जाता है कि इन प्रवृत्तियों का जागरण श्री हैवल एवं श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के द्वारा ही हुआ। इसी समय बंगाल के ऐशियाटिक (Asiatic) समाज की स्थापना कलकत्ते के पूर्वी समाज में श्री अबोनेन्द्र बाबू द्वारा हुई। जहाँ पर भारतीय

प्रतिष्ठित चित्रों की नकलें छवी जिससे हमें भारतीय कला के ज्ञान को प्राप्त करने में सफलता मिली। इसी समाज के द्वारा कला का पुर्नजागरण संपूर्ण भारत में फैला।

इस समय भारतीय एवं योरपीय शैलियों के मिश्रण से एक नई शैली का जन्म हुआ जिसे 'पटना शैली' का नाम दिया गया। इस समय चित्र मुख्यतः कागज पर बनने लगे और उनमें वे सभी गुण पाये जाने लगे जो विद्वानों द्वारा एक श्रेष्ठ चित्र के परीक्षण करने के लिए नियत किये गये थे। इस युग के अधिकतर चित्र छवि चित्रों के रूप में हैं। इस वर्ग के सभी कलाकारों ने भारतीय परपरा के सृजन में रचनात्मक काम किये और विशेषकर अजन्ता, बाघ, एलौरा, राजपूत एवं मुगल शैलियों के चित्रों पर आधारित चित्र बनाये एवं दुनिया के सामने भारतीय कला के महत्व को प्रकट किया। इस कारण भारतीय कला परंपरा को व्यापक रूप देने में 'बंगाल स्कूल' का काम विशेष सराहनीय है।

इस समय बम्बई, कलकत्ता, लखनऊ इत्यादि स्थानों पर कला के विद्यालयों की स्थापना हुई जिनमें विद्यार्थियों को पाश्चात्य कला की शिक्षा दी जाने लगी, किंतु अवनीन्द्र बाबू ने बगाल में अलग एक नये विद्यालय की स्थापना की जिसमें वे अपने शिष्यों को भारतीय कला की शिक्षा दिया करते थे एवं श्री असित कुमार हाल्दार की नवीन जागृति को कार्य में परिवर्तित करने का प्रयास वे करने लगे। जिस समय अवनीन्द्र बाबू ने यह प्रयास करना प्रारंभ किया था उस समय वे यह कभी नही जानते थे कि वे एक नई क्राति को प्रारभ कर रहे हैं। अवीनेन्द्र बाबू ने अपनी विशिष्ट स्वाभाविक योग्यताओ, क्रांति वृत स्वभाव एव पाश्चात्य तथा जापानी सूत्रों (Formulae) के आधार पर प्रयोगों के द्वारा इस क्राति को बढावा दिया। श्री हैवल, अवीनेन्द्र बाबू एवं नन्दलाल बोस ने चित्रकला को राष्ट्रीय शैली में लाने का प्रयास किया। ये सभी जल रंगो के चित्रकार थे जिनके विषय भारतीय थे। इन सबों के चित्रों के बनाने की विधि मुगल एव राजपूत लघुचित्र, अजन्ता के भित्ति चित्र, चीनी एवं जापानी स्याही के चित्रों का मिश्रण था। अवीनेन्द्र बाबू को मानने वाले सभी कलाकारो ने देशभक्ति तथा साहित्य दोनों ही विषयों पर चित्र बनाये। इस समय की यह नई कला कई विचारों में भिन्न थी। इस समय कला में कलाकारों के व्यक्तित्व को पहली बार महत्व दिया गया। इसमें दूसरी शैलियों के समावेश से कला की एक नई शैली एवं कौशल (Technique) का जन्म हुआ जिसका रूप बिलकुल ही नया था।

श्री अवनीन्द्र नाथ ठाकुर

अवनीन्द्र बाबू का जन्म 7 अगस्त 1871 ई० में कलकत्ता में हुआ था। आपके परिवार के लोगों को कला से बहुत प्रेम था। आपने पश्चिमी, जापानी वॉश कौशल (Wash technique), तैल रंग, जल रंग, राजपूत, मुगल, अजन्ता के भित्ति चित्र लोक कला सभी कौशलों की शिक्षा प्राप्त की थी तथा उनसे प्रभावित होकर चित्र बनाये। आपके शिक्षक श्री गिरहारडी (Prof. Girhardy) के, आपने इनसे तैल चित्रों का ज्ञान प्राप्त किया था साथ ही आपने कुछ विदेशी कलाकारों से भी शिक्षा प्राप्त की थी। लेडी कनिंघम (Lady Kanighum) ने इन्हें एवं असित कुमार हाल्दार को अजन्ता के चित्रों का अध्ययन करने भेजा था।

आप सबसे प्रथम कलाकार थे जिन्होंने पूर्णरूप से सौन्दर्यानुभूति के आदर्शों को अपने चित्रों में दिखाया। आपकी क्रांति ने एक सच्ची कला के सौन्दर्यानुभूति के पुनर्जागरण को देश में आरंभ किया, जिसमें आपने प्राचीन स्कूलों की योग्यतायें एवं पाश्चात्य शैली की यथार्थता का बहुत सुन्दर ढंग से प्रयोग किया। आपका कार्य प्रभावशील एवं गौरवपूर्ण है। आपने सभी आकार के चित्रों का चित्रण किया है। आपका 'अभिसारिका' शीर्षक का चित्र विशेष महत्त्वपूर्ण है। इस चित्र में चित्रकला के छहों नियम स्पष्टरूप से दिखते हैं। आपके अन्य महत्त्वपूर्ण चित्र 'कूदता हुआ सियार' (Jumping Jackal), 'ऊँट की मृत्यु शय्या' (Camel on death bed), 'शाहजहाँ के अंतिम दिन' इत्यादि हैं। 'ऊँट की मृत्युशय्या' चित्र में ऊँट की भावना को बहुत सुन्दर ढंग से व्यक्त किया गया है एवं मृत्यु की विभीषिका का भाव रंगों द्वारा सफलता पूर्वक इस चित्र में व्यक्त किया गया है। साथ ही 'शाहजहाँ के अंतिम दिन' चित्र में करुणा के भाव बहुत सफलता से व्यक्त किये गये हैं। इसका संयोजन और संतुलन पूर्णरूप से व्यवस्थित है। आपने कृष्ण एवं राधा की लीलाओं पर भी चित्र बनाये हैं। इन चित्रों में आपने छाया एवं प्रकाश के द्वारा भावों को व्यक्त करने में बहुत सफलता प्राप्त की है। ये चित्र राजपूत एवं पहाड़ी लघुचित्रों से प्रेरणा लेकर बनाये गये हैं। आपने प्राकृतिक दृश्य के चित्र भी बनाये जो उच्चकोटि के माने गये हैं। आपने कुछ व्यंग चित्र भी बनाये। आपने धार्मिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, छविचित्र, हास्य चित्र, वॉश चित्र, भित्ति चित्र, लोक कला इत्यादि सभी प्रकार के चित्र बनाये।

अवनीन्द्र बाबू के चित्र भावपूर्ण, कोमल एवं कल्पनात्मक होते थे जिनमें अधिकांशतः फैला हुआ वातावरण एवं भाव पूरे चित्र में फैलाकर चित्रित किया जाता था। यह गुण हमें अन्त के भारतीय रफेल (Raphaelism) पर आधारित

चित्रों में स्पष्ट दिखता है। साथ ही श्री नन्दलाल बोस ने तीव्र प्रयोगात्मक शैली को जन्म दिया था। वे आकृतियों को चित्रों में भाषा के समान प्रयोग कर के दिखाना चाहते थे परंतु इसको दिखाने में वे कई बार अजीब-अजीब आकृतियों को बना जाते थे। इन कमजोरियों के होते हुए भी इन दोनों ही कलाकारों ने एक नया रास्ता निकाला जिसका कारण उनकी अपनी महानता थी, जिससे इनकी विशेष उन्नति हुई एवं उनके शिक्षण पद्धति से 'बंगाल स्कूल' की भी उन्नति हुई। इन्ही सब कारणों से श्री अवनीन्द्र बाबू को आधुनिक कला का पिता भी कहा जाता है। आपके मुख्य शिष्य जिन्होंने आपकी शिक्षा पद्धति का प्रचार किया वे नन्दलाल बोस, मुकुल डे, वीरेश्वर सेन इत्यादि थे।

असित कुमार हाल्दार

आप भी 'बंगाल स्कूल' के ही कलाकार थे एवं अवनीन्द्र बाबू के मुख्य शिष्य थे। कला की शिक्षा समाप्त करने के बाद कुछ समय तक आपने शांतिनिकेतन में काम किया तत्पश्चात् आप जयपुर चले गये एवं अंत में लखनऊ गवर्मेंट कॉलेज ऑफ आर्टस एंड क्राफ्टस (Govt. College of Arts & Crafts, Lucknow) के आप प्रधानाचार्य बने।

आप भारतीय चित्रकला को पाश्चात्य चित्रकला के सामने निम्नश्रेणी की कला समझने वाले कलाकारों के मत के नही थे। आपने प्राचीन भारतीय चित्र-कला का पूर्णरूप से अध्ययन किया था और उसके बाद आपने अपने शिष्यों को अजंता, राजस्थानी एव मुगल शैलियो का अध्ययन करने एव उनसे प्रेरणा ग्रहण करने को कहा। आपने अजंता एव बाघ के गुफा चित्रों की प्रतिलिपियां बनाई। आपके चित्रों के रग प्राचीन भारतीय चित्रो के ही रंग थे। ऐसा जान पड़ता है कि आप भारतीय प्राचीन चित्रों से बहुत प्रभावित थे विशेष कर मुगल एव राजपूत चित्रों से। आपके चित्रों में राष्ट्रप्रेम की भावना स्पष्ट दिखती है। इसी समय आधुनिक कला को एक नया स्थान दिया गया जहाँ से राष्ट्रीय चित्रकला का पुनरुत्थान प्रारंभ होता है। इसका केंद्र शातिनिकेतन हुआ। यहाँ पर श्री रवीन्द्र नाथ ठाकुर के सरक्षण मे कला में राष्ट्रीयता के भाव को विशेष प्रोत्साहन मिला। श्री हाल्दार के ही द्वारा भारतीय कला का पुनर्जागरण हुआ। आपके चित्रों में पुनरुत्थान, संघर्ष एव परंपरा स्पष्ट दिखती है। आपके चित्र सुकुमारता एव मधुरता से युक्त है आपके चित्रों मे रेखा, रंग, मुद्राओं का अंकन एवं सयोजन बहुत सु दर किये गये हैं जिसके कारण आपके चित्र अद्वितीय माने गये। आपके चित्र समस्त ससार में सराहनीय हुए। आपने कागज के अतिरिक्त अन्य माध्यमों पर भी चित्र बनाये जैसे लड़की, रेशम, लाख इत्यादि। आप चित्रों में प्रयोग करना पसंद करते थे। आपने कुछ पौराणिक चित्रों का भी चित्रण किया जैसे 'राम

बौद्ध गृह', 'मेघ दूत', 'ऋतु संहार', 'महाभारत' इत्यादि, साथ ही आपने कुछ ऐतिहासिक चित्र भी बनाये जो विशेष प्रशंसनीय हुए। आपका विख्यात चित्र 'The Flame of Music' है। आपके चित्रों के प्रिय विषय ग्रामीण वातावरण, प्रणय एवं 'उमर खैयाम' थे। आपके बनाये प्रकृति चित्र (Landscapes) भी बहुत सराहनीय हुए हैं। आप कलाकार के साथ एक अच्छे लेखक भी थे।

श्री नंदलाल बोस

आपका जन्म 3 सितंबर 1883 ई० में मुंगेर जिले में हुआ था। आपका बाल्यकाल से ही कला की ओर झुकाव था। आपने कलकत्ता गर्वनमेंट आर्ट स्कूल (Calcutta Govt Art School) में प्रवेश लिया और इस प्रकार से आप अबीनेन्द्र बाबू के शिष्य हुए। शिक्षा ग्रहण करने के बाद आप 'विचित्र' नामक कला शिल्प केंद्र के प्रधानअध्यापक हुये और 1922 ई० में शांतिनिकेतन में अध्यक्ष के रूप में नियुक्त होकर प्रधानाध्यापक तक बने। शांतिनिकेतन की क्रांति के समय आप शांतिनिकेतन के कला विभाग के प्रधानाध्यापक थे। आपका समय भी भारतीय चित्रकला में पुनरुत्थान का युग माना जाता है। आपने अबीनेन्द्र बाबू के चित्रकला के विचारों को सफलता पूर्वक ससार में फैलाया। आपको भी 'बंगाल स्कूल' से प्रेरणा प्राप्त हुई साथ ही आपने भारतीय कलाकारों का पथप्रदर्शन किया। आपको प्रसिद्ध आधुनिक चित्रकार भी माना गया है।

आपने बाघ एव अजता के चित्रों की प्रतिलिपियाँ बनाई जिसका श्रेय लेडी कनिंघम को है। आपका विचार था कि प्राचीन भारतीय चित्रकला से प्रेरणा लेकर हमें चित्र बनाने चाहिए, इसीसे आपके चित्रों मे हमें अजंता के चित्रों की आत्मा स्पष्ट दिखती है। आपने श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के साथ 1924 ई० में चीन की यात्रा की। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने आपकी कला शैली की बहुत प्रशंसा की है; उन्होंने कहा है कि "मैंने नंदलाल के कलाकार एवं उसके व्यक्तित्व को बहुत पास से देखा है। बुद्धि, हृदय, उदारता, अनुभव एवं सूत्र का उनमे अद्भुत समन्वय है।"

आपने अपने चित्र भिन्न-भिन्न भारतीय परपरागत कौशलो (Technique) में बनाये जो भारतीयता के भाव से भरे हुए हैं, इनमें अभिकल्पित (design) भाव विशेषरूप से दिखता है। आपने भारतीय विचारों, सिद्धातों एवं कौशल (Technique) को अपने चित्रों में विशेष महत्त्व दिया एवं आकृतियों को एक नया रूप देकर चित्रित किया। आपके चित्रों में जातीय परंपरा एवं पौराणिक विषय मुख्यतः मिलते हैं। जिनमें रेखाओं को प्रधानता दी गई है। भिन्न रेखाओं से आपने भिन्न-भिन्न भावों को व्यक्त करने का प्रयास किया है। आपकी रेखायें

एवं रंग भाव को व्यक्त करने में बहुत सफल हुए हैं। आपके अधिकांश चित्र धार्मिक भाव तथा विषयों के हैं जैसे 'शिव-सती', 'दुर्गा', 'अर्जुन', 'वीणा-वादिनी', 'उमा की तपस्या', 'विरहिणी ऊमा', 'मेघ', 'राम-सीता', 'विष्णु', 'शिव', 'कृष्ण' इत्यादि। आपके कुछ चित्र लोक कला से भी प्रभावित दिखते हैं। आपके कुछ चित्रों में पाश्चात्य प्रभाव भी स्पष्ट दिखता है जिसका उदाहरण 'शिव का पार्वती जी के प्रति शोक प्रकट करना' विषय का चित्र है। आपके मुख्य चित्र 'भीष्म-प्रतिज्ञा', 'सुजाता', 'सती', 'ऊमा' इत्यादि हैं। आपकी 'रुपावली व शिल्पकला' नाम की पुस्तक से पता चलता है कि आपको तूलिका एवं लेखन दोनो पर ही समान अधिकार प्राप्त था। आपके भिन्न-भिन्न विषयों के 'कार्ड चित्र' भी बहुत प्रचलित है। आपसे ही 'कार्ड चित्रों' का भारत में आरंभ हुआ जिनमें स्याही एवं रंग दोनों का ही प्रयोग किया गया है। इन 'कार्ड चित्रों को' वे कभी-कभी तुरंत एवं कुछ को काफी दिनों के प्रयत्न से बनाते थे। इन 'कार्ड चित्रो' को ये अपने परिचितों एवं शिष्यों को भेजा करते थे। इस प्रकार के आपने अनगिनत कार्ड चित्र बनाये थे।

श्री गगनेन्द्रनाथ ठाकुर

श्री नंदलाल बोस के बाद श्री गगनेन्द्रनाथ ठाकुर का नाम आधुनिक कला में लिया जाता है। आपके चित्रों मे ठाकुरवाद, प्रतिबिंबवाद (Impress-ionism) एवं घनवाद का दर्शन होता है। आपने भी बगाल के लोक-जीवन से प्रभावित होकर चित्र बनाये जिसका उदाहरण 'चैतन्य-चरित्र' शीर्षक चित्र है। आपके व्यक्ति चित्र, दृश्य चित्र तथा व्यग्य चित्र (जिन्होंने विशेष ख्याति प्राप्त की) ठाकुरवाद के अतर्गत आते हैं, इनमें आपका व्यक्तित्व एव आपका अपना दृष्टिकोण स्पष्ट दिखता है। आपके चित्रो में प्रतिबिंबवाद (Imprsse-ionism) पश्चिमी फ्रास के चित्रों का प्रभाव है जिनमें वातावरण का प्रभाव भी दिखाया गया है तथा इनमें नदी एवं पवर्तों को प्रमुखता दी गई है। आपके घनवादी चित्रों को दो भागों में बाँटा जा सकता है—

1 जिन चित्रों में विराट पौरुष का चित्रण किया गया है, साथ ही इनमें रहस्य को सूक्ष्म या अस्पष्टरूप से चित्रित किया गया है।

2. नारी को लालित्य एव लज्जा से युक्त बनाया गया है जिसका उदाहरण 'वधु-प्रवेश' शीर्षक चित्र है।

ये चित्र ज्यामितीय (Geometrical) आकारों में विभाजित किये गये हैं जिनको भिन्न-भिन्न रगों से भरा गया है। आपका 'स्वप्नलोक' चित्र घनवादी चित्रों का अच्छा उदाहरण है।

आपने "रवीन्द्रबाबू की आत्मकथा" में बहुत से चित्र बनाये जो विशेष

प्रभावशाली है। आपने अवीनेन्द्र बाबू के साथ मिलकर कलकत्ते में 'भारतीय पूर्वी कला संघ' (Indian Society of Oriental Art) की स्थापना कराई जिसके द्वारा आधुनिक कला जगत में कलाकारों ने काम किया और इस संघ से कलाकारों तथा समाज का संपर्क स्थापित करने में बहुत योग दिया।

श्री विनोद बिहारी मुकर्जी

आप भी 'बंगाल स्कूल' के ही कलाकार थे। आपका प्रभाव इस स्कूल के शिष्यों के कामों पर स्पष्ट दिखता है। चित्रों एवं कला की क्रांति का ज्ञान आकृतियों की अमूर्त (Abstract) व्यवस्था पर निर्भर करती थी जो कि आपकी प्रेरणा का केंद्र था। 'बंगाल स्कूल' को मानने वाले कलाकार भारत के दूसरे नगरों में भी धीरे-धीरे फैलने लगे जिन्होने भारतीय राष्ट्रीय क्रांति में अपना योगदान दिया। लाहौर, गुजरात तथा लखनऊ में बहुत से कलाकारों का जन्म हुआ जिनकी शिक्षा 'बगाल स्कूल' पर निर्भर करती थी। ये गिनती में कलकत्ता स्कूल से कम न थे। जैसे-जैसे क्राति ने जोर पकड़ा वैसे-वैसे यह कला अधिक भावात्मक एवं कोमल हो गई।

2. बंबई स्कूल

भारतीय कला के पुनर्जागरण के प्रयोग बबई के कला विद्यालय में भी हुए। ये प्रयोग श्री ग्लास्टोन सोलोमन (Gladstone Soloman) के निरीक्षण में हुए। अहमदाबाद में रसिक रावल एवं कनुदेसाई द्वारा इस प्रकार के काम अपना लिये गये, परतु जल्दी ही 'बगाल स्कूल' मे बहुत से क्रांति के संयोजनों, अमूर्त आकृतियाँ (Abstract Figures) बिना किसी रचना के चित्रों में बनाये जाने लगे जिससे वहाँ के चित्र निकृष्ट श्रेणी के चित्र हो गये। इन चित्रों की बारीकियाँ भी नकल की हुई होने लगी साथ ही इन चित्रों के मनोभावनात्मक भाव को गलती से आध्यात्मिक भाव समझा जाने लगा। बंबई के 1930 ई० के कलाकारों का लक्ष्य भिन्न था साथ ही उनकी शैली उच्च-कोटि के व्यक्तित्व को दिखाती थी। इसमें 'बंगाल स्कूल' की कमजोरियाँ एवं उनका स्वप्नलोक का बंधन न था, इसी कारण इस संप्रदाय के कलाकारों का काम बंगाल स्कूल से भिन्न हुआ। इस स्कूल के काम मौलिकता एवं भिन्नता के दोनों ही गुणों को अपने में दिखाते हैं। इस स्कूल के मुख्य कलाकार यामिनी राय, अमृताशेरगिल एवं श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर इत्यादि थे।

श्री यामिनी राय

आपका जन्म 1887 ई० में बांकुड़ा जिले में हुआ था। आपकी प्रारंभिक शिक्षा पाश्चात्य यथार्थ शैली के व्यक्ति चित्रों (Portraits) एवं दृश्य चित्रों (Landscapes) से हुई।

अमृता शेरगिल के समान आपने 'बगाल स्कूल' से अलग होकर काम किया। ये भारत की स्वतंत्रता के पहले के एव कला के पुनरुत्थान काल के कलाकार थे। आपने अकैदमिक परंपरा (Academic Tradition) में शिक्षा प्राप्त करने के बाद एक नई शैली को जन्म दिया। आप विशेष कर बंगाल की लोक कला से प्रभावित जान पड़ते हैं। आपने हिंदू विचार धारा पर आधारित चित्र बनाये। आपने बंगाल लोक कला के चित्रों में हिंदू संस्कृति एव सम्यता को दिखाने का प्रयास किया है। आपने अपने चित्रो में सर्वदा लोक कला के तीव्र रेखीय लयों से एक नये संक्षिप्त सकेत को दिखाने का प्रयास किया है जो आपकी अपनी उत्पत्ति थी। 30 वर्ष की शिक्षा के बाद आप अपने गाँव बाकुड़ा में वापस आये। आपने बांकुड़ा जिले के पट शिल्पी, लोक कलाकारों एवं कुम्हारों की आकृतियों की शक्ति को पहचाना एव उन्हे अपने चित्रों मे बनाया साथ ही आकृतियों को अपने चित्रो मे सुंदर तथा सरल रूप दिया। आपने बगाल लोक कला के चित्रों से प्रभावित होकर एक नई शैली को जन्म देकर कला के पुनरुत्थान मे महत्त्व दिया। आपने भारतीय कला को जीवन एव गीत दोनो ही प्रदान किया। आपके चित्र विशेष कर अलकारिक चित्र है साथ ही ये अपने ढग के अच्छे चित्र माने गये है। आपने चित्रो मे रगो को अपने प्रारभिक रूप मे प्रयोग किया है। ये ही रग आपकी अपनी स्वतत्रता का इच्छा एव एक नये मार्ग की उत्पत्ति के कारण हुए। आपने अपने अध्ययन का कार्य तब तक जारी रखा जब तक आपने पूर्णरूप से अपने को अकादमिक (Academic) बंधनो से मुक्त न कर लिया और तब आपने आकृतियो (Forms) के भावों को उन्नत किया जो आधुनिक ढंग का था। यह एक ओर कालीघाट के लाक चित्रो की साहसीय सरलता को दिखाता है तथा दूसरी ओर इनका हर संयोजन अधिक से अधिक उपहास को व्यक्त करत है। आपके चित्रों में एव कालीघाट के लोक चित्रो में समानता न थी, केवल उनका भाव आपके चित्रो मे दिखता है। जिस प्रकार से पिकासो ने नीग्रो मूर्तिकला से प्रभावित हो कर घनवाद (Cubism) को जन्म दिया उसी प्रकार से आपने कालीघाट के चित्रो से प्रभावित हो कर एक नई शैली का प्रारंभ किया। आपने चित्रो में शैली के नियमो को भी अपनाया। इस प्रकार से भारत में चित्रकला के एक नये मार्ग का आरभ हुआ। ये गुण आपके प्रारंभिक धार्मिक चित्रों के प्रतिमाकन (Iconography) मे स्पष्ट दृष्टिगोचर होते है। इसके उदाहरण 'गोपिनी' एवं 'कृष्ण' की आकृतियां हैं, जिनमें आकृतियो का एकाकीपन कला की प्रतिष्ठित पहुँच से भिन्न है यह आपके अतिम चित्रों में स्पष्ट दिखता है जिसके उदाहरण सथाल विषयो के चित्र है। आपके चित्रों का माध्यम मुख्यत अमिश्रित रंगों (Tempra Colours) का है। आपने अपने चित्रो के

रंग मिट्टी, जड़ी-बूटी, पत्थर इत्यादि से बनाये हैं, जैसे काले रंग को आपने कालिख से बनाया है। आपने कई बार कैन्वस (Canvas) के स्थान पर पुराने कपड़ों का भी प्रयोग किया है। कैन्वस के ऊपर लेप का ढंग इनका अपना है। आपकी कला को लोक कला की शाखा कहना उचित नहीं है क्योंकि आपके चित्रों की आकृतियाँ तथा रग प्रारंभिक विचारों पर निर्भर थे यह आपके चित्रों में स्वदेशी एवं मिश्रित दोनों ही प्रकार केरंगों के प्रयोग से पता चलता है। ऐसा जान पड़ता है कि इन्हें जो कुछ भी मिल जाता था उस पर ही आप अपनी कला की अनुभूतियो को व्यक्त करने लगते थे। आप अपने काम को रोकते न थे। आपके चित्रों की आकृतियों की वेशभूषा एवं पहनावा बंगाली पन से भरा हुआ है।

आपने व्यक्ति चित्र, लघु चित्र एवं भित्ति चित्र बनाये है। आपके चित्रों की रेखायें सजीव एवं अलंकरण से युक्त है, साथ ही चित्रो की आकृतियाँ भी अलंकारिक हैं। इनमें आँखे बडी एवं कानों तक खिंची बनाई गई है, लंबी व पतली नाक, आकृतियों के अंगो मे सरलता, सादगी एवं स्वाभाविकता दिखती है। आप पूरे कागज़ को ही आकृति से भर देते हैं, इस प्रकार से आपके चित्रों में पृष्टभूमि का स्थान नही रह जाता है। कुछ चित्रों में पृष्टभूमि काली बनाई गई है जो आपकी अपनी विशेषता है, तथा चित्रों में आपका व्यक्तित्व पूर्णरूप से दिखता है। आप भी अबीनेन्द्रबाबू के प्रमुख शिष्य थे। आपकी मृत्यु 1972 में हुई। आपके चित्रो को जिस व्यापकता से समाज को अपनाना चाहिए उससे नही अपनाया है परंतु इनकी पूर्ति अमृता शेरगिल के चित्रों ने बाद में कर दी।

अमृता शेर गिल

अमृता शेरगिल का जन्म 1913 ई० में बुडापेस्ट में हुआ था। आपका 1938 ई० मे विवाह हुआ परतु 1941 ई० में ही आपका निधन अल्प आयु में ही हो गया। आप सिख पिता एवं हंगेरियन माता की पुत्री थी जिसका प्रभाव आपके चित्रों में स्पष्ट रूप से पश्चिमी एवं भारतीय दोनों ही कला की पद्धति के कारण दिखता है। आपने आठ वर्षों तक कला की शिक्षा योरप में ग्रहण की। आपका कला प्रेम आपकी माता ने पहचाना और तब आपको शिक्षा ग्रहण करने के लिए पेरिस भेज दिया। इस प्रकार आपने आधुनिक कला का ज्ञान पूर्ण रूप से योरप में प्राप्त किया। यही शिक्षा आपकी कला का आधार हुई, इसी आधार पर आपने भारत आने पर चित्र बनाये जिनमें एक नई शैली एवं कौशल का जन्म हुआ जो भारतीय एवं आधुनिक दोनों ही थी। आधुनिक चित्र कला में अमृता शेर गिल के कार्मों ने युग के परिवर्तन को दिखाया है।

आपके चित्रों में विषय की नवीनता, रंगो का प्रयोग, कौशल एवं रेखाओं का प्रभाव बहुत ही सुंदर किया गया है। आपके चित्रों में भारत की बोलती हुई आत्मा का बोध होता है। आपने इतनी अल्प आयु मे ही भारतीय आधुनिक चित्रकला में अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया एवं उसमें बहुत योगदान दिया।

आप पाश्चात्य सांकेतिक कला (Western Impressionism) से प्रभावित हुई विशेषकर गोंगा (Gauguin) से। आपने पाश्चात्य लयात्मकता से प्रभावित होकर भारतीय दीनता से युक्त चित्रो को बनाया। आपके चित्र कौशल एवं शैली में पश्चिमी हैं परन्तु इनके विषय भारतीय दैनिक जीवन से लिए गये हैं, विशेषकर पजाबी जीवन से आप अधिक प्रभावित हुई। इस कारण आपके चित्रो मे पाश्चात्य एव भारतीय कला दोनो ही का मिश्रण दिखता है।

आप सेजाँ (Cezanne) से भी बहुत प्रभावित हुई थी जिसका प्रभाव हमे आपके चित्रो मे स्पष्ट देखने को मिलता है। आपने गोगा (Gauguin) के बारे मे कहा है कि "गोंगा मे कुछ ऐसे गुण है जो उन्हे सब योरोपियन कलाकारों में से अधिक भारतीय बनाते है" 1935 ई० मे भारत आने पर आपने भारतीय विषयो पर चित्र बनाये जिनकी शैली पेरिस शैली थी। आपने पहाडी विषयों को भी चित्रित किया क्योकि भारत में वापस आने के बाद आप शिमला में रही जहाँ आपने पहाड़ी रहन सहन को बहुत निकट से देखा। आप व्यक्ति (Model) को बैठा कर व्यक्ति चित्र (Portraits) भी बनाती थी आपने अपने पिता एव अपने व्यक्ति चित्र भी बनाये जो विशेष महत्त्व के है। 1936 ई० में आपने दक्षिण भारत का दौरा किया और उसके बाद आपने वहाँ के समाज से प्रभावित होकर कुछ विख्यात चित्र बनाये जो 'फल बेचने वाले', 'दुल्हन का शृगार', 'ब्रह्मचारी', 'दक्षिणी मनुष्य बाजार को जाते हुए' इत्यादि। आपके चित्रों में भारतीय ग्राम जीवन का बहुत सजीव चित्रण किया गया एव उसे आधुनिक भावों में समझने का प्रयत्न किया है।

इस प्रकार अमृता जी अधिक भारतीय हो गई। ऐसा जान पड़ता है कि आप अपने चित्रों में राजपूत चित्रो के रगों से भी प्रभावित हुई है। आपका 'हाथियों का नहाना' शीर्षक चित्र बहुत सुदर है, इसमें शोख लाल रग का प्रयोग किया गया है। 'ऊँटो का विश्राम' शीर्षक चित्र भी बहुत सुंदर है। आपकी कला साधारण एवं अलकारिक शैली की है परतु साथ ही यह बहुत भावयुक्त एवं अपने भावों में बहाने वाली है। आपके चित्रों की आकृतियों का दुःख का भाव उस समय के कष्टप्रद जीवन को दिखाता है। इस कारण हम यह कह

सकते हैं कि आपके चित्रों में भावों की सुंदरता, भावों की भाषा एवं रंगों को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है। आप सर्व प्रथम भारतीय कलाकार थी जो तैल रंगों में ही चित्र बनाती थीं। आपके चित्रों में नारी स्वभाव की सहज कोमलतायें, ममता एवं दया के भावों का बहुत सुंदर चित्रण किया गया है।

आप आधुनिक भारतीय चित्रकारों में सबसे अच्छी एवं सबसे अधिक अपने व्यक्तित्व को चित्रों में दिखाने वाली कलाकार मानी गई हैं। आपके चित्र पूर्णरूप से 'बंगाल स्कूल' से भिन्न हैं। आपके चित्रों में अभिकल्पितता (design) एवं घनत्व पर अधिक ध्यान दिया गया है एव इनमें अजंता के चित्रों की झलक दिखती है जिससे आपके चित्रों की आकृतियों के मुखो की मुद्राओं में सजीवता दिखती हैं। आपके चित्रों के विषयों में नवीनता, बनाने की शैली में विशिष्टता, रेखाओ में गति एवं रंगों के प्रयोग में स्वच्छंदता के कारण इन चित्रो को भारतीय चित्रकला में ऊँचा स्थान दिया गया है। श्री वाचस्पति गैरोला ने आपको चित्रकला मे वही स्थान दिया है जो साहित्य में प्रेमचन्द जी को दिया गया है। आपने अपने कला विधान को स्वतन्त्र रूप दिया है जिसके कारण आपके चित्रों में आकर्षक भूमिकायें दिखती हैं।

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

आपका जन्म दो मई 1861 ई० में कलकत्ता में हुआ था। हालाँकि आप माने हुए कवि थे फिर भी आपने अपने विचारो को तूलिका के माध्यम से प्रकट किया। आपके विचार से "भाषा के माध्यम को समस्त संसार के लोग नही समझ सकते हैं, इस कारण मैं तूलिका को अपनाना चाहता हूँ क्योकि तूलिका की भाषा समस्त ससार के लोग शीघ्र समझ लेते हैं।" इस प्रकार से आपने कला को अपनाया एवं इस क्षेत्र में आये।

हालाँकि आप अवीनेन्द्र बाबू से पहले के कलाकार थे परंतु आपको अबी बाबू के बाद कला में स्थान दिया गया, क्योंकि आपने अपने जीवन के अंतिम चरण में कला को अपनाया था। आपके कला के विचार अबी बाबू से भिन्न थे।

आपको भारतीय आधुनिक चित्रकला का प्रथम कलाकार भी माना जा सकता है क्योंकि आपकी शैली भारतीय कलाकारों के लिए नई थी। आपका चित्रकला का मानदण्ड भी अपना अलग था। आपके चित्रों में स्वतंत्र चिंतन एवं आपकी मौलिक सूझ स्पष्ट दिखती है। इस कारण आपके चित्रों में स्वतंत्र रचना का भाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। ऐसा भास होता है कि कलाकार ने

स्वान्तः सुखाय के लिए चित्रों की रचना की है। आपको कौशल (Technique), रंग एवं तूलिका का अकादमिक (Academic) ज्ञान न होते हुए भी आपके चित्र लय, गति और जीवन प्रदान करने में सफल हुए हैं। आपके चित्रों पर परंपरा का कोई भी प्रभाव नही दिखता है। श्री कुमारस्वामी के कथनानुसार "आपने अपने चित्रों की शैली का स्वय निर्माण किया था। आपके चित्रों में रेखाओं का अभिनव प्रयोग एवं रंगों का कुशल समिश्रण जिस ढग से किया गया है वह नितात मौलिक हैं।"

आपके चित्र सुलिपिक चित्रो (Calligraphic Pictographs) से समानता दिखाते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि आपने सुलिपिक चित्र लेखो (Calligraphic Pictographs) से प्रेरणा ग्रहण की होगी। आप अपने चित्रों में गहन एवं प्रत्यक्षरूप से अनुभव की हुई आकृतियो के द्वारा लयात्मक भावो को दिखाने में सफल हुए हैं। आपने चित्रो को कोई शीर्षक नही दिया है। आपके चित्र बच्चो के मुख से निकली भाषा के समान है जिनमे आपका चरित्र स्पष्ट दिखता है। आपने कुछ दृश्य चित्र (Landscape) भी बनाये जो बहुत आकर्षक हैं और ये योरोपीय शैली से प्रभावित लगते हैं। आपने बहुत ही कम समय में 2000 चित्र बनाये। आपके विख्यात चित्र "युगल", खिन्नावस्था", "वेदना", इत्यादि हैं।

3 स्वतंत्रता के बाद के कलाकार

स्वतंत्रता प्राप्त करने से पहले ही कला में स्वतंत्र विचारो को अपना लिया गया था परंतु स्पष्ट रूप से यह स्वतत्रता के बाद के चित्रों में दिखाई पडता है। इस वर्ग के मुख्य कलाकार कनु देसाई, नंदलाल बोस, अवीनेन्द्रनाथ ठाकुर इत्यादि है। इस वर्ग के कलाकारों के मन में देशप्रेम की भावना सबसे प्रमुख थी जिस पर आधारित उन्होने चित्र बनाये। देशप्रेम की भावना के बाद कलाकारों का उद्देश्य कला को सार्वदेशिक एव सार्वकालिन बनाना था और इस समय के कलाकारों ने इसी उद्देश्य को लेकर चित्र बनाये।

बहुत से विद्वानों के विचार से इस वर्ग के कलाकारों को दूसरे एव चौथे वर्ग के कलाकारो के साथ मिला दिया है। प्रारंभिक कलाकारों को दूसरे वर्ग से तथा अत के कलाकारों को चौथे वर्ग से मिला दिया है। इस कारण इस वर्ग के कलाकारों को एकदम अलग करना बहुत कठिन है।

4. आधुनिक स्कूल

"बंगाल स्कूल" के चित्रों का नवीनीकरण, मानसिक भाव एवं कोमल विचार आजकल के कलाकारो एव नवयुवकों को प्रभावित नही कर सका क्योंकि

देश में राजनीतिक, एवं आधुनिक क्रांतियाँ समाज में प्रारंभ हो गई थीं और देश में लोग उद्योगीकरण के विचार में सोचने लगे थे जिसका संबंध साधारण जनता से था। इस प्रकार धीरे-धीरे अंतर्राष्ट्रीय आधुनिक कला के भाव को प्रधानता मिलने लगी। इस प्रभाव से कला में सरल एवं प्रभावपूर्ण शैली का जन्म हुआ जो कि धनराज भगत के कामों में स्पष्ट दिखता है। साथ ही चित्र-कला में मनीषी डे, सैलोज मुकर्जी तथा यामिनी राय ने अपने चित्रों की परंपरा को फिर से लाने का प्रयत्न किया जो लोक कला या प्राचीन कला पर आधारित है परंतु उससे उन्नत है।

आज के समाज में हमें भिन्न-भिन्न प्रकार की कलायें देखने को मिलती हैं जिससे हमें आज के समाज का सही अनुभव नही होता है परतु यह कला कला-कारो के भिन्न-भिन्न व्यक्तित्व को दिखाती है साथ ही उसे महत्त्व दिया गया है। स्वतंत्रता के बाद भारत पर दूसरे देशों का प्रभाव हर क्षेत्र में बहुत पडा, विशेषकर कलाकारो का प्रेरणा जगत पेरिस हो गया जो आजकल दुनियाँ में कला का केंद्र माना जाता है। इसके प्रथम कलाकार श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर को माना गया है जिनके चित्रों में रूपनिरपेक्षता स्पष्ट दिखती है जो पेरिस शैली का प्रभाव है। दूसरे देशों की किताबो, कला को व्यक्त करने का ढग एवं कुछ प्राचीन पुस्तको के द्वारा कला के क्षेत्र मे कलाकारों में इस समय जागृति आई साथ ही कुछ कलाकारो की आदत विदेशी कलाकारो की नकल करना हो गया जो हमारे देश की परपरा न थी। आजकल चित्रों मे परपरा एव कौशल (Technique) को स्वतत्र रूप मे अपनाने का कारण भी विदेशी प्रभाव ही है।

भारत के आज के कलाकारो मे उत्सुकता, जिज्ञासा एव सजगता हमें स्पष्ट देखने को मिलती है। विदेशी प्रभाव पडने के कारण आजकल के कलाकारो ने सभी विदेशी शैलियो को अपना लिया है। प्रतिबिंबवाद (Impressionism), धन-वाद (Cubism), फॉवेज़म (Fauvism) इत्यादि सब ही वाद आज के कला-कारों के कामों में स्पष्ट देखने को हमें मिलते हैं जिसका कारण हमारा विदेशों से संपर्क है। भारत के प्रतिबिंबवादी (Inpressionist) कलाकर बेंद्रे, कल्याण सेन, डी० जे० जोशी, कँवलकृष्ण, पनिकर, हेब्बर, चावला, बी० सान्याल, क० स० कुलकर्णी, लक्ष्मण पाय तथा रथिन मित्रा हैं, जिन्होंने अपनी आधुनिक शैली को लोक कला के अध्ययन के बाद निकाला। सबसे आधुनिक कलाकार इस आधुनिक स्कूल के क० ह० आरा, सामंथ, ऑजकीट (भारतीय पिकासो), रसिक रावल, म० फ० हुसैन एवं अमीम अहमद को माना जाता है। इन लोगों के प्रतिबिंबवादिता एवं अलंकारिक अमूर्तता (Abstraction)

को अपने चित्रों में व्यक्त किया है। इस स्कूल के अन्य मुख्य कलाकार वीरेन दे, श्री कृष्ण खन्ना, राजकुमार, रजा, सतीश गुजराल, दिनकर कौशिक, तैयब मेहता, सुब्रह्मणयम्, रामकिंकर, विनोद बिहारी मुकर्जी, ज्योतिष भट्टाचार्य, द्विजेन सेन इत्यादि हैं।

आजकल की चित्रकला में भावात्मकता, अमूर्त कला तथा दूसरी यथार्थ शैलियाँ अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई है। कुछ कलाकार जो आधुनिक नियमों पर काम करने लगे हैं उन्होंने अपनी भारतीय कला के मूल सिद्धांतों को जागृत रखा है। हालांकि आजकल कोई राष्ट्रीय स्कूल नही रह गया है परंतु आज की उन्नत कला में हमें स्पष्ट प्राचीन भारत का भाव देखने को मिलता है। साथ ही इस समय के समाज के विचार भी स्पष्ट दिखते है। आज की कला में आधुनिकता एवं भारतीयता साथ ही हमें देखने को मिलती है क्यों की यह समय हमारे जीवन के परिवर्तन का युग है। आजकल के कलाकारों को सभी उत्तम चित्रकला की सामग्रियाँ प्राप्त हैं इस कारण उनके लिये चित्र बनाना बहुत आसान हो गया ही साथ ही कला के प्रयोगों में भी वृद्धि हो गई है। इसी कारण आज की कला अपनी परपरा से हट कर विभिन्न प्रयोगों पर निर्भर करने लगी है तथा कला ने एक नया मोड ले लिया है। अब कला परिजन सुखाय न होकर स्वात. सुखाय हो गई है। इसके अपने पुराने बंधनों को तोड दिया है। इन पर भारतीय कला के नियम नही लागू होते हैं। इस प्रकार से भारतीय कला अतर्राष्ट्रीय कला की धारा से मिल गई है। इस पर आधार कर के हम भविष्य की कला का अनुमान लगा सकते हैं परंतु भविष्य की कला के रूप के बारे में निश्चित रूप में हम कुछ नही कह सकते हैं क्यों कि किन-किन शैलियों एव प्रयोगो का इस कला पर प्रभाव पडेगा यह कहना बड़ा ही कठिन है; हो सकता है कि इस कला का रूप विकृत हो जाये। यह विषय कला समालोचकों के लिये सोचने का विषय बन गया है।

आज के युग में आधुनिक प्रचलित वास्तुकला को भी प्रधानता मिली है जिसका उदाहरण चडीगढ़ का नगर है। इसी प्रकार से कला के दूसरे क्षेत्रों में भी काम हुए हैं जैसे शिल्प कला में रोदां (Rodin) एवं एपस्टाइन (Epstein) के प्रतिबिम्बवाद का प्रभाव प्रदोश दास गुप्ता, रामकिंकर, खास्तगीर, इत्यादि के कामों में स्पष्ट देखने को मिलता है। शंकुचौधरी ने बहुत सरल एवं प्रभावपूर्ण शैली को जन्म दिया है।

आजकल भारत में ललित कला अकादमियों की स्थापना हुई है जिसका उद्देश्य देश की कला का प्रचार करना है। अभी हमारे आधुनिक भारत की

कला की लड़ाई समाप्त नहीं हुई है यह तब तक चलती रहेगी जब तक आधु-निकता अपनी चरम सीमा पर नहीं पहुँच जायेगी, भूत एवं वर्तमान का मिलाप नहीं हो जायेगा तभी जाकर हमारी भविष्य की कला अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचेगी। ऐसा विचार है कि यह केवल भूतकाल का नवीनीकरण नहीं होगा बल्कि सब पुरानी शैलियों के मिलाप से एक नई शैली का जन्म होगा परंतु क्या होगा यह तो समय ही बतायेगा अभी कुछ निश्चित रूप से कहना कठिन है।

●

अध्याय 12

लोक कला

लोक कला का मानव जीवन के इतिहास से घनिष्ठ संबंध रहा है। इसका विकास एवं पतन मानव जीवन के विकास एवं पतन के साथ ही हुआ है। किसी समय की लोक कला अपने युग की सभ्यता का प्रतीक होती है। लोक कला की परंपरा प्राचीन काल से भारत में दिखाई पडती है। इसी के द्वारा आज भी हम समाज की परपरा, सभ्यता एवं भावना इत्यादि का इतिहास क्रमबद्ध रूप में पाते है।

कला मानव जीवन की सौदर्यानुभूति के आदर्शों को प्रकट करती है जैसे मोहनजोदाडो एवं हडप्पा से प्राप्त वस्तुओ से प्राचीनता के महत्त्व का पता चलता है। वैदिक काल से आज के युग तक मानव की सौदर्यानुभूति के आदर्शों का रूप बदलता ही गया है परतु प्रत्येक युग की कला पर उस युग की छाप हमें आज भी देखने को मिलती है। लोक कला के विकास को हम साहित्य के विकास के साथ देखें तो अधिक उचित होगा। जिस प्रकार साहित्य में दो रूप है, लोक भाषा एव संस्कृत भाषा, उसी प्रकार भारतीय चित्र कला के भी दो रूप हमे देखने को मिलते हैं लोक कला एव चित्र कला (जो शास्त्रीय रूप में है)।

लोक कला ने अपना विकास कई क्षेत्रो में किया है जिसका एक रूप परपरा गत् विश्वासो, सकेतों एव सस्कारो पर आधारित है एव दूसरे रूप में समाज के रीति रिवाजो का इस कला पर जो प्रभाव पडा है उसका चित्रण है, साथ ही इसमें कलाकारों की अनुभूतियो की स्वतत्रता भी हमें देखने को मिलती है।

शास्त्रीय (Academic) चित्रकला का विकास राजाओ पर आश्रित कलाकारो द्वारा हुआ, जो स्वतत्ररूप में काम नही कर सकते थे। इसके इतिहास का पता हमें अजता, एलोरा, बाघ, राजपूत, मुगल इत्यादि भारतीय चित्र कलाओं द्वारा चलता है, परतु लोक कला का विकास प्रचलित कला के रूप में हुआ जिसका व्यवाहारिक रूप हम समाज में उसके प्रचलन में देखते है जैसे लोक कला, लोकभाषा लाक बोलो, लोक कहानी इत्यादि। यह कलाकार की स्वतंत्र भावना पर आधारित होती है न की किसी दूसरे की इच्छा से बनाई जाती है। लोक शब्द से हम समाज की व्यावहारिक भावनाओ को समझते हैं और कला शब्द से शास्त्रीय कला का हमें अनुमान होता है। कला के अतर्गत सगीत, चित्रकला, काव्यकला, मूर्तिकला एवं वास्तुकला आती है। सभी का लोक एवं शास्त्रीय

रूप हमें देखने को मिलता है। इस कला का लोक स्वरूप भारतीय जीवन के साथ निरंतर बिना रोक के धीरे-धीरे बढ़ता रहा, क्योंकि इसका बहुत निकट का संबंध हमारे घरेलू जीवन से था।

हमारी लोक कला को परंपरा से आगे बढ़ाने का श्रेय हमारी ग्रामीण जनता को दिया जाता है जिसके कारण इसे विश्वकला की प्रगतिशील भावनात्मक धारा के साथ लिया गया है और साथ ही इसने उस ओर प्रगति भी की है।

लोक कला का उदय समाज के रीति रिवाजों पर अवलंबित है क्योंकि यह परंपरागत धाराओं, विश्वासों, आस्थाओं, संकेतों पर आधारित है। यह समाज के रीति रिवाजों, विवाह, धार्मिक पूजन इत्यादि पर घरों में चित्रित की जाती हैं। साथ ही इसका संबंध हमारी सांस्कृतिक भावनाओं से भी है। समाज के रीतिरिवाजों के बदलने पर लोक कला मे भी परिवर्तन दिखने लगता है। जन साधारण की भावनाओं एवं संस्कारों से मिलकर इसने अपने को समाज में स्थाई बना लिया है। परंतु समाज के परिवर्तनों के साथ यह भी बदलती गई एवं विकसित होती गई जिससे यह आज भी जीवित है तथा इसकी एक अपनी अलग आस्था है।

भारतीय चित्रकला का पतन अंग्रेजों के राज्य से प्रारभ हुआ। इस समय कला थोडी बहुत हिमालय की पहाडियो में सुरक्षित रह गई परतु मैदानी प्रदेशों में करीब करीब यह समाप्त हो गई साथ ही चित्र निर्जीव बनने लगे। कोई भी नई शैली या नया काम उस समय लोक कला के अतिरिक्त नही रह गया। साथ ही इस समय पूज्य प्रतिमाओं के चित्रण में कलाकारों ने तंजावूर शैली का सहारा लिया जिसमें सुनहले पत्तों पर चित्र बनाये गये एव शीशे पर चित्र बनाये गये जिससे हमें लोक कला के प्रचलन का पता चलता है। जिसके मूल में धार्मिक एवं मनोरंजन की भावना रहती है जिसके कारण यह भारत के भिन्न-भिन्न प्रातों में अभी भी सुरक्षित है तथा इसका आज भी हमारे जीवन से घनिष्ट संबंध है। इसमें मनुष्य जीवन के सभी रूपों को सांकेतिक रूप से चित्रित किया गया है। लोक कला भारतीय लोगों के हृदय स्थलों पर अंकित है जो हमें पैतृकरूप से प्राप्त हुई है। लोक कला का नाम भिन्न-भिन्न प्रातों में भिन्न-भिन्न दिया गया है परतु इनकी मूल आत्मा सर्वत्र एक सी है जैसे महाराष्ट्र में 'रंगोली', गुजरात में 'साथिया', उत्तर प्रदेश में 'चौक-पूरना', राजस्थान में 'मांडवाँ', गढवाल में 'आपना', बिहार में 'अहपन' एवं बगाल में 'अल्पना' कहा जाता है। परतु इन सबों में एक ही देश के लोगों की आत्मा बोलती-सी जान पड़ती है। लोक चित्र विशेषकर भारत में पर्व के अवसरों पर

दीवारों एवं आँगनों में बनाये जाते हैं। दीवारों पर बने चित्रों को 'रंगोली' एवं आँगन में बने चित्रों को 'थापा' कहा जाता है। अलग-अलग अवसरों पर अलग-अलग 'रगोली' एवं 'थापा' बनाये जाते हैं जिनके द्वारा हमें भारत की विभिन्न जातियों, संस्कृतियो, एवं लोकाचार का पता चलता है। राजस्थान एवं उत्तर प्रदेश में घरों की दीवारों पर घोडा, तलवार, कदली, चक्र, सारस, हाथी इत्यादि के चित्रों को बनाने का प्रचलन है। उत्तर प्रदेश एवं राजस्थान में स्त्रियों के हाथों एव पैरों में मेहदी लगाने की प्रथा है। राजस्थान में 'संईयाँ, का पर्व पंद्रह दिनों तक चलता है जिसमें कुमारी कन्यायें प्रतिदिन भिन्न-भिन्न आकृतियाँ बनाती हैं जो लोक कला का ही रूप है, जिसके द्वारा बाल्यकाल से ही राजस्थान की नारियो में लोक कला के लिये आस्था जागृत हो जाती है। बंगाल में उत्सवो पर 'अल्पना' बनाई जाती है, जिन्हें वहाँ के लोग खड़िया के रंगो, फूलों, पत्तियों, दालों इत्यादि से बनाते हैं। दक्षिण भारत में 'अल्पना' प्रति दिन चावल के चूरे से घरों के द्वारों के सामने बनाई जाती है। 'अल्पना' को लोक कला की दृष्टि से बहुत महत्त्व मिला है। आधुनिक समाज में 'अल्पना' बहुत प्रचलित हो गई है। यहाँ फूलों के रंगों को विभाजित करके भी बनाया जाता है। इसके रंगों को कुछ समय तक स्थायी बनाने के लिए इसमें गोंद मिलाया जाता है। इसने अब राष्ट्रीय एवं अतर्राष्ट्रीय जगत में अपना स्थान बना लिया है। 'अल्पना' में विशेषकर ज्यामितीय (Geometrical) रेखाओं का प्रयोग किया जाता है। 'अल्पना' को अलग-अलग अवसरों पर भिन्न-भिन्न ढग का बनाया जाता है जैसे मृत्यु के अवसरों की 'अल्पना' केवल सफेद एवं काले रग की बनाई जाती है उसमें रंगों का प्रयोग नही किया जाता है। परतु शुभ अवसरो की 'अल्पना' मे विभिन्न रंगों का प्रयोग किया जाता है इससे हमारी संस्कृति का पता चलता है। राजस्थान में 'माडवाँ' का बहुत प्रचार है। जिसमें सफेद, लाल, भूरे या हरे रगो का प्रयोग किया जाता है। महाराष्ट्र मे 'रगोली' बनाने की प्रथा है जो कि अल्पना का ही एक रूप है इन्हें केवल सूखे रंगो के या चावल के चूर्ण से बनाया जाता। गुजरात में 'रंगोली' के स्थान पर 'कलोटी' का प्रयोग हमें देखने को मिलता है। इन सबों से हमें विभिन्न प्रदेशों की लोक कला का पता चलता है। बंगाल की लोक कला में 'पट चित्रों का भी अपना अलग स्थान है, जिनका निर्माण व्यावहारिक दृष्टि से किया जाता था। इन्ही "पट चित्रों" के कारण बंगाल की लोक कला उन्निसवी शताब्दी में उड़ीसा, आसाम एवं उत्तर भारत में प्रचलित हुई। इन्ही पटचित्रों के कारण बंगाल की लोक कला का भारत के बाहर भी प्रचलन हुआ जैसे नेपाल, इत्यादि स्थानों पर। बगाल की लोक कला का तीसरा रूप मिट्टी के बर्तनों एवं उनके ढक्कनों की

चित्रकारी में दिखाई पड़ता है, जिनमें पीले एवं सफेद रंगों का विशेषतया: प्रयोग किया जाता है। मिट्टी के खिलौनों का भी लोक कला में विशेष महत्त्व है। इनके रंग एवं बनाने का ढंग बहुत सुंदर है। कृष्ण नगर के खिलौने, मध्यप्रदेश और मिर्जापुर के खिलौने विशेष महत्त्व के हैं। इनको गीली मिट्टी से बनाया जाता है, जब ये पूर्णतया: सूख जाते हैं तो इन्हें भट्टी में पकाया जाता है, उसके बाद गीले रंगों से तूलिका के द्वारा इन्हे रंगा जाता है। इस प्रकार से ये खिलौने बनाये जाते हैं।

विषय की दृष्टि से इन लोक चित्रों का अपना महत्त्व है। इनमें पशु, पक्षी, मंगलमय संकेत, देवी देवताओं, पौराणिक कथाओ इत्यादि विषयों का ही चित्रण किया जाता है। लोक कला मे पशु पक्षियों का चित्रण मगल कामना से किया जाता है क्योंकि उनका हमारे प्रागैतिहासिक काल से घनिष्ठ संबंध रहा है। साथ ही इसका सबध आज के युग मे कृषि जीवन से भी हमे देखने को मिलता है। पक्षियों को उल्लास एव कोमलता का प्रतीक भी माना जाता है।

इन लोक चित्रों की रेखाओ में भावनाओ की प्रधानता दी जाती है, साथ ही बारीक एवं स्पष्ट रेखायें बनाई जाती हैं। इनके रगों एवं रेखाओं की अपनी मौलिकता होती है। इनकी पृष्ठभूमि के आधार पर ही चित्र मे रंगों का प्रयोग निर्भर करता है, जिनमें सफेद, पीले, नीले एव हरे रंगो का विशेषकर प्रयोग किया जाता है। इन रगो का विधान सरल एवं सूक्ष्म होता है जिसके कारण आकृतियाँ स्वाभाविक जान पडती है। इनमें अमिश्रित रगों का भी प्रयोग किया जाता है।

भारत में प्राचीन काल से ही घरों की दीवारों पर स्वच्छन्दरूप से इन्हें भावो एवं रेखाओं द्वारा बनाया जाता था। यद्यपि इसे लोक कला का विशेष प्रतिष्ठित भाव (Classical thought) माना गया है, परंतु यह विचार ठीक नही है क्योंकि यह भी लोक कला की ही अनुभूतियाँ हैं, जिसने बाद में भित्ति चित्रों का रूप प्रतिष्ठित (Classical) चित्रकला मे ले लिया। भित्ति चित्रों में चित्र आदिम काल के चित्रों के ढग के बनाये गये है जिसका अच्छा उदाहरण मारकण्डेय पुराण के चित्र हैं। दूसरी ओर इसमें राजाओं, दरबारियों एवं गायकों के छविचित्र (Portraits) भी बने मिले हैं। ये चित्र स्वाभाविक अवश्य हैं परतु व्यक्तिगत नही हैं। इनमें मुख्यत' आराध्य चित्र बनाये गये हैं जिस कारण इन चित्रों की आकृतियाँ मूर्तियों के ढग की बन गई है। लोक कला हमें साँची के तोरणों में अंकित जातक कथाओं के लोक चित्रों में एव अजन्ता के चित्रों में भी देखने को मिलती हैं। साथ ही लोक कला को हम दक्षिण भारत की अपभ्रंश

शैली के चित्रों में भी पाते हैं, जिससे हमें पता चलता है कि लोक कला का रूप समस्त भारत में भिन्न-भिन्न था।

उन्नीसवी शताब्दी में ये चित्र भिन्न-भिन्न वस्तुओं पर बनाये गये जैसे हाथी दाँत, अबरक, शीशा, सीप (जानवरो के), बाँस एवं लकडी इत्यादि। शीशे पर चित्र बनाने की प्रथा पाश्चात्य देशो से भारत में आई। अट्ठारहवी शताब्दी में पाश्चात्य देशों में ईसाई धर्म के चित्र शीशे पर बनाये गये क्योंकि उन देशों में शीशे का व्यापार प्रगति पर था साथ ही शीशे आसानी से उपलब्ध थे। वहाँ पर ये चित्र शीशे के लोक चित्रो के नाम से विख्यात हैं। शीशे के चित्रों की शैली प्रारंभिक एव गतिशील थी जिनसे हमे मध्ययुगी कला का पता चलता है। ऐसा भास होता है कि यह कला बैजनटाइन के ईसाई धर्म के चित्रों की कला से जन्मी थी। इसके कई धार्मिक विषयों के चित्र अभी भी सुरक्षित मिलते है जो घरो मे पूजा के कमरो को सजाने में काम आते हैं। भारत में भी इस प्रकार के चित्र पूजा के कमरो को सजाने मे प्रयोग में लाये जाते हैं।

शीशे पर चित्र कागज़ पर चित्र बनाने के ढग से एक दम विपरीत बनाया जाता है। इनमे बारीकियो को प्रथम बनाया जाता है एव बाद में समतल स्थानों को रगा जाता है जिसके कारण चित्र समाप्त होने पर बारीकियाँ सबसे प्रथम ऊपर दिखने लगती है। इन चित्रों मे विशेष कर अमिश्रित रगों का प्रयोग होता है, केवल मुँह एव शरीर पर थोडी-सी छाया दिखाई जाती है।

शीशे पर बने चित्रों का सयोजन (Composition) तजाबूर चित्रों के समान ही सकुचित एवं बहुत-सी आकृतियो से युक्त बनाया जाता है। यहाँ पर आकृतियाँ पूरे शीशे को भर देती हैं और बहुत ही कम स्थान रिक्त रह जाता है। अत इन चित्रो में पृष्ठभूमि (background) नही के बराबर रहती है, जैसे हम श्री यामिनी राय के चित्रों में पाते है। यदि चित्र पूज्य है तो इसे मन्दिरों की वास्तुकला (Architecture) के समान चित्रित किया जाता है जिस प्रकार तजाबूर शैली के चित्रों मे भगवान को बहुत बडा अकित किया गया है उसी प्रकार से इन चित्रो मे भी अकन किया गया है। इसी लोककला ने बाहरी कलाओ से बहुत कुछ लिया है जैस दरबारी छबिचित्रो से ये चित्र प्रेरित लगते हैं। इन चत्रो के विशेष गुण भारी परदों, झालरो, शीशे के चिरागे, भारी लकडी के घरों के समान इत्यादि को चित्रित करने मे दिखता है तूलिका के द्वारा इन चित्रों में आकृतियो की कोमलता को दिखाने का प्रयास किया गया है साथ ही सुनहले रग से समतल भागो को भरा गया है। इस कारण इन चित्रो में पूरा चित्र एक ही सतह पर बना जान पडता है साथ ही ये चित्र किसी न

किसी धार्मिक विचार की ओर संकेत करते हैं। कहीं-कहीं पर चित्रों में भावात्मकता को प्रधानता दी गई है जैसे 'माता तथा पुत्र' चित्र में। जिसमें कृष्ण भगवान यशोदा माता के साथ खेलते चित्रित किये गये हैं। इन चित्रों की शैली तंजावूर चित्रों की आध्यात्मिकता एव पौरोहितता को दिखाते हैं। इन चित्रों में भी आकृतियाँ सामने से बनाई गई है, साथ ही सब से मुख्य आकृति को नाप में भी सब से बडा बनाया गया है। आकृतियो के सिर भी आवश्यकता से अधिक बड़े चित्रित किये गये हैं, ये आकृतियाँ बहुत कुछ मूर्तियो के समान जड लगती हैं। इनमें बहुत अधिक बारीकियों से युक्त चित्र नही बने हैं साथ ही इनमें अलंकरण को विशेष महत्व दिया गया है। इन चित्रों में खाली स्थानों को अलकृत किया गया है साथ ही बिदुओं एव रेखाओ के द्वारा इन चित्रों में कर्ण आकारो (Texture) का भास भी कराया गया है। शीशे पर बनाये चित्र दक्षिण भारत मे विशेष प्रचलित थे जैसे मैसूर, महाराष्ट्र, आध्र प्रदेश इत्यादि में आज भी ये चित्र पाये जाते हैं। इन चित्रो में वैष्णव धर्म पर आधारित चित्र बने मिले हैं, साथ ही बालकृष्ण को मक्खन चुराते हुए तथा दूसरी बाल क्रीड़ायें करते हुये चित्रित किया गया है। इनमे कृष्ण भगवान को अधिकतर श्वेत रंग का बनाया गया है एवं उन्हे सोने के आभूषणों तथा फूलो से युक्त चित्रित किया गया है। इनमें सुनहले रंग का प्रयोग देवत्व को सकेत करने मे किया गया है। इन चित्रों का रेखांकन दक्षिणी शैली पर आधारित है साथ ही वह लय एवं ओज युक्त है। इनमे विषय को बहुत साधारण ढग से प्रस्तुत किया गया है। इनमें कुछ तजावूर राजाओ के छबिचित्र (Portraits) भी बने मिले है, जिससे पता चलता है कि शीशे पर भी छबिचित्र बनाने का उस समय प्रचलन था। इन चित्रों में लाल एव फाखताई रग का प्रयोग सुनहले रग के साथ किया गया है। इनमें राजा को राजत्व से युक्त दिखाया गया है। इन छबिचित्रों में रेखायें स्पष्ट एवं पुष्ट बनाई गई हैं। परदो पर छाया स्वाभाविक बनाई गई है। थोडा प्रतिमाकन (Modelling) छाया के द्वारा किया गया है। गहनों का चित्रण इन चित्रों में बहुत सुदर किया गया है।

शीशे पर कविताओ पर आधारित चित्र भी बनाये गये हैं जैसे 'कृष्ण यशोदा' का चित्र हैं। जिसमें कविता को प्रधानता दी गई है। इन चित्रों में भी समतल एवं सुनहले रग का खुलकर प्रयोग किया गया है। इसमें कृष्ण एव यशोदा दोनो की ही आकृतियाँ मोटी बनायी गइ है इनमें रेखायें लोक कला के चित्रों के समान स्पष्ट बनाई गई हैं, यद्यपि इन चित्रो में धार्मिक विषय को दिखाया गया है तथापि इसमें लोगों की आशाओं को दिखाने का भी प्रयत्न किया गया है। आज के युग में शीशे पर चित्र बनाने की प्रथा समाप्त-सी हो गई है क्योंकि ये चित्र जल्द टूट जाते हैं।

दक्षिण भारत में अभी भी सीप, बांस तथा लकड़ी के खिलौने बनाने का प्रचलन है जो लोक कला का ही एक रूप है।

लोक कला को हम स्थानीय कला भी कह सकते हैं। यह परजन सुखाय के उद्देश्य से बनाई जाती है जिससे दूसरे का मनोरंजन होता है। लोक कला अपने भाव में स्वच्छंद होती है साथ ही यह जन साधारण के व्यवहार की भी कला है।

लोक कला के इतिहास का भी अपना निजी महत्त्व है। यद्यपि लोक कला एव चित्रकला की परंपरा बिलकुल भिन्न है फिर भी इनका उद्देश्य जन कल्याण, राष्ट्रजागरण, सुख-समृद्धि एवं वैभव प्रदान करना है। इनका विकास अपनी भिन्न-भिन्न परपराओं के आधार पर ही हुआ है।

आज के युग में लोक कला का महत्त्व बढ़ गया है। इसे चित्रकला में मिलाया जाने लगा है जो उचित नही हैं क्योंकि जब दोनों ही परंपरायें अलग है एव उनके विकास का क्षेत्र भी अलग-अलग है, इस कारण हमें अपनी लोक कला को इस ओर जाने से रोकना चाहिए। इसके संरक्षण से हमारे रीति रिवाजों एवं मस्कृति का भी सरक्षण होता है।

•

आधार ग्रन्थ-सूची

A

Abstract—सूक्ष्म, अमूर्त

Abstraction—अमूर्तता

Abstract Figures—अमूर्त आकृतियाँ, सूक्ष्म आकृतियाँ

Abacus—बरगा

Academic—विद्वत्परिषद्, शैक्षिक, शास्त्रीय, विद्या संबंधी

Academies—अकादमियों

Academic Tradition—अकादमिक परंपरा

Active Force—क्रियात्मक शक्ति

Aerial—वायवीय, आकाशी, हवाई

Aesthatic—सौंदर्यबोध, सौंदर्यानुभूति, विषयक

Alternate—वैकल्पित

Anatomy—शरीर विज्ञान, शरीर रचना

Applied Art—व्यावहारिक कला, प्रयुक्त कला

Apsidal Plan—स्तम्भिका का आयोजन

Arabesques—अरबस्क

Archaeologists—पुरातत्त्वज्ञों

Archaic Painting—आद्य चित्र

Arch—मेहराब

Archery—धनुष विद्या

Architecture—वास्तुकला, गृह शिल्प

Aristrocratic—अभिजातीय

Ascenticism—आरोहण, यतित्ववाद, यतित्व

Asiatic—ऐशियाटिक

B

Background—पृष्ठभूमि

Balustrade—जंगला, वेदिका, तोरण

Banners—रोक पताका, टंकायें, पताकायें, ध्वजायें

Bas reliefs—बास अभ्युचित्र
Bell capital—घंटीनुमा स्तंभ
Bold Foreshortening—तीव्र अग्रसंक्षेपण
Bold Relief—गहरे अभ्युचित्र, गहरे उभार के चित्र
Book-Illustration—पुस्तकों के दृष्टांत चित्र
Brackets—कोष्ठकों
Bronze Age—धातु युग, काँसे का युग

C

Calligraphic—सुलिपि
Calligraphic Pictographs—सुलिपिक चित्र लेखा
Canons—नियमों, अंगों
Canvas—कैन्वस, चित्र बनाने का विशेष कपडा
Capital—स्तंभ
Cave Temple—गुफा मंदिर
Chemical Colours—रासायनिक रग
Classical Art—प्रतिष्ठित कला
Classıcal Thought—प्रतिष्ठित भाव
Classical—प्रतिष्ठित
Column—स्तंभ
Composition—सयोजन, संघटन
Concave—अवतल
Conception—विचार
Cosmologies—विश्व विज्ञानों
Cosmological Diagram—विश्व विज्ञानी आरेख
Cubısm—घनवाद, क्यूबिज़म
Curvilınear—वक्ररेखीय

D

Design—नमूना, अभिकल्पित
Diagrams—आरेखों
Drawing—रेखाचित्र, रेखाकन

E

Eclectic—रविमार्ग, क्रांतिवृत्ति, कांतिवृत

F

Fauvism—फॉविज्म वाद, फॉविज्म
Foreshortening—स्थिति जन्य लघुता
Form—आकृति, आकार
Formulae—सूत्र, नियम, विधि
Frescoes—भित्ति चित्र जो गीली सतह पर बनाये जायें

C

Geometrical—ज्यामितीय, रेखागणित संबंधी
Graphic—लेखा चित्रीय
Graphically—रेखा चित्रीय, लेखा चित्रीय रीति
Gravity—गुरुत्वाकर्षण, आकर्षण शक्ति
Ground colour—भूमि रंग

H

Half Prafile—आधे चश्म
Harmonious Praport ion—समन्वय अनुपात
High Relief—ऊँचे डौल के अभ्युचित्र

I

Iconography—प्रतिमांकन, प्रतिमाविज्ञान
Imperical—राज्य संबंधी, साम्राज्जिक
Impressionist—सांकेतिक, निशानात्मक, प्रतिबिंबवादी
Impressionism—प्रतिबिंबवाद
Indian Red—ईंटों का लाल रंग
Individualistic—व्यक्तिगत
Indo-aryan—भारतीय आर्य
Indo-sumarian—भारतीय सुमेरियन
Inlay work—जड़ाऊ काम, जड़त का काम, जड़ाऊ
Intaglio-Technique—उत्कीर्ण आकृति की प्रविधि
Intellectualism—बुद्धित्व
Involution—घातकरण, घातक्रिया, प्रत्यावर्तन

L

Landscape—दृश्य चित्र, प्रकृति चित्र
Law of Fruntality—मूर्तियों को सामने से बनाने का नियम
Linear—रेखाकार, रेखीय, रेखिक, अनुवैर्ध्य
Lime stone—चूनादार पत्थर
Low-reliefs—चिपटे डौल के अभ्युचित्र

M

Manuscripts—हस्तलिपियाँ
Massive Hemispherical Structure—स्थूलकाय गोलभि विन्यास
Mineral Colours—खनिज रग
Miniature—लघु चित्र, छोटे आकार के चित्र
Model—व्यक्ति जो अपना बैठ कर चित्र बनवाता है।
Modelling—प्रतिमाकन
Monolithic Column—एक दिष्ट स्तभ
Mosaic—मोजैक
Mural—भित्ति चित्र जो सूखी सतह पर बनाये जाते हैं
Mystic—गहन, दैवी, गुप्त
Mysticism—दैविशक्ति, जादुई रूप

O

Octagonal Pavillions—अष्टपार्श्वीर्य भवन
Old Masters—प्राचीन विख्यात कलाकार, प्राचीन गुरुओ
Organic Colours—जैव रग, जीवकृत रग
Oriental—पूर्वी
Oriental Art—पूर्वी कला, पाश्य चित्रकला

P

Pagoda—मेरु मदिर, शकु के आकार का मूर्ति मदिर
Painting—चित्रकला
Panal—दिल्हा
Passive Force—निष्क्रिय शक्ति, निश्चेष्ट शक्ति, अकर्मण्य शक्ति
Perforated Boss—छेददार बूटे
Perspective—प्रत्याशिता, समपरिमाण, भावी दृश्य

Philosopher—दार्शनिक
Philosophy—दर्शन शास्त्र
Pictorial Art—सचित्र कला
Plastic—कोमलता, लचीला
Plastic Art—कोमल कला, मूर्ति कला
Polish—पॉलिश
Portrait—छवि चित्र, व्यक्ति चित्र
Pre-Historic—प्रागैतिहासिक
Productivity—उत्पादिता, उत्पादनता
Prototype—आदि रूप
Pyramid—शंकु, सूचिस्तंभ

R

Radial—चक्रीय
Raphaelism—रफेलवाद
Realistic—यथार्थवाद
Record—अभिलेख
Red sandtone—लाल चूनेदार बलुआ पत्थर
Reliefs—अभ्युचित्रों, उभरा
Relief Modelling—उभरे हुए साँचे, उभरा पतिमाकन
Renaissance—पुर्नजागरण
Replica—प्रतिकृति
Representations—समरुपता के प्रतिदर्शनों
Restoration—पुन. स्थापना, पुर्ननवीकरण, प्रत्यावर्तन
Revival—चेतना, जागृति, उद्धार
Roundels—चक्रों

S

Safavit—सफ़ावित
Sand Stone—चूनेदार बलुआ पत्थर
Schist—एक प्रकार की चट्टान
Sculpture—शिल्पकला, मूर्तिकला
Secular—लौकिक, ऐहिक, धर्म निरपेक्ष, चिरकालिक
Semicircle—अर्धवृत

Sense—ज्ञान, इंद्रियाँ
Sensuous—इंद्रियजनित
Shading—छाया
Shaft—डंडियाँ
Sketch—ढाँचा
Spiritual Power—आध्यात्मिक शक्ति
Spiritualism—आध्यात्मिकता
Steatite Seal—सेलखड़ी की मुद्रा
Stone Age—पाषाण युग, पाषाण काल
Stucco—गचकारी
Surface Modelling—सतह का प्रतिमांकन
Symbolism—सांकेतिक

T

Takāri—टंकारी
Tamitrad—तमितत्र
Technique—कौशल, तरीका, प्रविधि
Tempra Colours—अमिश्रित रंगों
Terracotta—पक्की मिट्टी के खिलौने
Tesserae—घनों की पद्धति
Texture—गठन, कण आकार, बयन
Tiles—टाइल्स
Tone—स्वरो, प्रकृति, चित्र में हल्के एव गाढे रंगों द्वारा छाया एवं प्रकाश को चित्रित करना
Towers—अट्टारिकायें
Treatment—शोधन, व्यवहार

V

Value—मूल्य, महत्त्व, योग्यता, प्रभावोत्पादकता
Viualisation—दृष्टिमूलकता
Volume—घनफल, परिमाण, आयतन

W

Wash Technigue—वॉश कौशल

Wasli—एक विशेष प्रकार का कागज़ जो मुगल चित्रों को बनाने में प्रयोग में लाया जाता है।

Western Impressionism—पाश्चात् सांकेतिक कला

Whcel of causation—कारणता का चक्र

Whcel of Law—धर्मचक्र, ज्ञानचक्र

World Axis—पृथ्वी की अक्षरेखा

●

सहायक साहित्य

1. कुमार स्वामी, ए० के०	"इंट्रोडक्शन् टू इंडियन आर्ट"
2. कुमार स्वामी, ए० के०	"द आर्ट एंड क्राफ्ट ऑफ इंडिया ऐंड सीलोन"
3. आरचर, डब्लू० जी	"इंडियन मिनियेचर"
4. आरचर, डब्लू० जी	"इंडियन पेंटिग फ्राम पंजाब हिल्स"
5. दास गुप्ता, स० न०	"फनडमेंटलस ऑफ इडियन आर्ट"
6. ब्राउन, परसी	"इंडियन पेंटिग अन्दर द मुगलस"
7. हेवल, ई० बी०	"द आर्ट हेरिटेज ऑफ इंडिया"

●